धारा...86 ग्रंथांक...299

स्वधर्म-सुधर्म गीताञ्जली

(गद्य-पद्यमय)

आचार्य कनकनन्दी

पुण्य-स्मरण

ज्ञान पर्व (श्रुत पञ्चमी) सागवाड़ा के उपलक्ष्य में...

स्वैच्छिक अर्थ सौजन्य (ज्ञानदानी)

1. श्रीमती निर्मला देवी नरेन्द्र जी खोड़निया सागवाडा (दश लक्षण व्रत उद्यापन के उपलक्ष में),
2. श्रीमती सुरेखा यशवन्त जी खोड़निया, सागवाड़ा
3. श्रीमती काजल सुनील जी पिता धनराज जी पुत्र-पुत्री निशि, राशि, हेरील गोवाड़िया, सागवाड़ा,
4. श्रीमती दीपिका नगीन जी शाह ग.पु. का. सागवाड़ा (स्व. श्री जीतमल जी शाह की दशवी पुण्य स्मृति में)

ग्रंथांक-299 संस्करण-प्रथम 2018

प्रतियाँ - 500 मूल्य - 101/-

प्राप्ति स्थान एवं सम्पर्क सूत्र

आचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव द्वारा आशीर्वाद प्राप्त

(1) धर्म-दर्शन सेवा संस्थान

द्वारा-श्री छोटूलाल जी चित्तौड़ा

चन्द्रप्रभ दि. जैन मन्दिर, आयड़, आयड़ बस स्टॉप के पास,

उदयपुर (राज.)-313001/मो. 097832-16418

(2) डॉ. नारायणलाल कछारा

सचिव-धर्म-दर्शन सेवा संस्थान, 55, रवीन्द्रनगर, उदयपुर (राज.)-313001

फोन नं. 0294-2491422/मो. 092144-60622

E-mail:nlkachhara@yahoo.com

''गुणगण कथा दोष वादे च मौनं'' मैं क्यों करता हूँ!?

(सद्वृत्तों का सुजस कहके दोष ढाकूँ सभी का)

(गुण-प्रशंसा-प्रोत्साहन-अनुमोदना-कृतज्ञता-पूजा-प्रार्थना-आरती-वन्दना-विनय-सहयोग-समर्थन आदि से लाभ व इन से विपरीतता से हानियाँ)

(चाल :- आत्मशक्ति.....)

-आचार्य कनकनन्दी

गुण गुणी प्रशंसा व अनुमोदना से करो जिया अन्य को प्रोत्साहित।
इससे स्व-पर का होगा उपकार क्योंकि पुण्य होता है नवधा प्रकार।।1.

शुभाशुभ होते नव कोटि से मन-वचन-काय-कृत-कारित अनुमत से।
गुणगुणी प्रशंसा व प्रोत्साहन से, पुण्य बन्ध तेरा होगा यथायोग्य से।।2.

जिनके गुणों की होती प्रशंसा जिससे वे होते प्रसन्न व प्रोत्साहित।
गुण बढ़ाते व दोष त्यागते अच्छे कार्य हेतु करते प्रयत्न।।3.

इष्ट प्रार्थना में आचार्यों ने कहा ''गुणगण कथा दोष वादे च मौनम्''।
पूजा विसर्जन में कहा ''सद्वत्तों का सुजस कह के दोष ढाकूँ सभी का''।।4.

''गुणीषु प्रमोदं'' भाव रखने वाले, गुण गुणी की करते प्रशंसा।
यह ही यथार्थ पूजा-वन्दना-आरती-विनय-कृतज्ञता-प्रार्थना।।5.

पंचपरमेष्ठी होते उत्कृष्ट गुणी, उनकी प्रशंसा होती उत्कृष्टतम।
अन्य गुणी की भी यथायोग्य प्रशंसा, करणीय ऐसा कहे आगम।।6.

आंशिक गुणी की भी प्रशंसा शास्त्रों में पाई जाती है अनेक विध।
शिकारी-सुअर-चाण्डाल-कुत्ता-चोर धीवर की प्रशंसा निबद्ध।।7.

''दोषवादे च मौनं'' शास्त्रों में कहा, ''दोष ढाकूँ सभी का'' माना।
इससे होते उपगूहन-स्थितिकरण व वात्सल्य तथा प्रभावना।।8.

दोष कथन में इसमें दोष लगे, जिससे भाव भी होता मलिन।
ईर्ष्या-द्वेष-घृणा-कलह होते जिससे होता पाप बन्धन।।9.

इससे दोषी व दोष कथक में,मैत्री-प्रमोद-कारुण्य साम्य नशे।
तनाव-उदासीन-वैमनस बढे, प्रोत्साहन व कार्य क्षमता घटे।।10.

प्रोत्साहन तो गुण ग्राहकता है तो निन्दा करना इससे विपरीतता।
स्व-पर प्रसन्न व प्रगति हेतु, 'सूरी कनकनंदी' करे गुण प्रशंसा।।11.

दोष दूर हेतु व गुण वृद्धि हेतु, करो जिया अन्य को प्रोत्साहित।
किन्तु न करो अन्य की निन्दा, जिससे अन्य होते हतोत्साहित।।12.

दान दाता हेतु देव पंचाश्चर्य करते, जय जयकार से ले रत्नवृष्टि।
गुण प्रशंसा-पुरस्कार-उपाधि द्वारा, अन्य को तू करो प्रोत्साहित।।13.

गुण ग्रहण-गुणप्रशंसा-प्रोत्साहन तो करते हैं सज्जन लोग।
दोष ग्रहण-दोष कथन-हतोत्साह तो करते हैं दुर्जन लोग।।14.

बिना धन खर्च किये सज्जन लोग, प्रशंसा से करते पुण्यार्जन।
बिना प्रयोजन दुर्जन लोग निन्दा से करते पापार्जन।।15.

सागवाडा-दि. 20-4-2018 रात्रि-9.00

आचार्य कनकनन्दी गुरुवर से प्रार्थना व मेरी भावना

-बा.ब्र.पल्लवी

(चाल :मुझे ऐसा वर....)

मुझे ऐसी शक्ति दो, उस शक्ति के बल से मैं।
तुमको समझूँ गुरुवर, निज में ही स्थिर रहूँ।।(स्थायी)

अज्ञान को दूर करूँ, सुज्ञान को प्रकट करूँ।
सुज्ञान की ज्योति से, मैं स्व का दर्श करूँ।।
गुरु ऐसा ज्ञान दो, मैं तुम सम बन जाऊँ।। तुमको....(1)

तव सम भाव करूँ, तव सम चर्या भी करूँ।
तव सम निर्मल मन से, निशदिन निश्चल ही रहूँ।।
गुरु ऐसी शक्ति दो, मैं तुम सम बन जाऊँ।। तुमको....(2)

न शरीर मेरा है, न इन्द्रियाँ मेरी हैं।
न मन भी मेरा है, न विभाव मेरा है।।
चैतन्य स्वआत्मा ही...मेरा स्व स्वभाव है।। तुमको....(3)

मैं राग में न रहूँ, न द्वेष मैं करूँ
न ईर्ष्या करूँ कभी, मान से दूर ही रहूँ।।
मायामयी संसार से, मैं अविचल सतत रहूँ।। तुमको....(4)

निराकुल सदा ही रहूँ, निर्विकल्प साधना करूँ।
निस्पृह वृत्ति धारूँ, निष्कलंक ही रहूँ।।
निजानन्द में रहकर ही...नित्यानन्द को पाऊँ।। तुमको....(5)

कर्मबन्धन तोड़ूँ संसार भ्रमण छोड़ूँ....
इच्छा निरोध करके....प्रकृष्ट तपस्या करूँ।।
गुरु ऐसा मैं ध्यान करूँ....स्वयं में ही लीन रहूँ।। तुमको....(6)

सागवाड़ा दि-27-04-2018 अपराह्न-4.27

आचार्य कनकनन्दी गुरुवर से मांगता हूँ क्षमा

(चाल :नहीं चाहिए दिल दुखाना किसी का)

बा.ब्र. उमंग जैन
(संघस्थ आचार्य कनकनन्दी)

क्षमा कीजिए गुरुवर मुझको।।
आपकी भाषा को समझ ना पाया था।।
आपके तथ्यों को उल्टा ही समझा था।
ऐसे ज्ञानी गुरु को मैं न समझा था।
क्षमा कीजिए गुरुवर मुझको।।

आपके 'मैं' को अहंकार ही समझा था।।
आपके ज्ञान को व्यर्थ ही समझा था।
ऐसे समतामयी गुरु को ना समझा था।

क्षमा कीजिए गुरुवर मुझको।।

सुना तो सही मैंने आपकी वाणी को।।
पर फिर भी मैं ना आचरण में लाया था।
ऐसे आध्यात्मिक गुरु को मैं ना समझा था।
क्षमा कीजिए गुरुवर मुझको।।

आपके ज्ञान दान को मैं ना समझा था।।
आपकी समता को अब हूँ मैं समझा।
ऐसे वात्सल्यमयी गुरु को मै समझ ना पाया।
क्षमा कीजिए गुरुवर मुझको।।

आपकी शक्ति को अब है जाना।।
आपके ज्ञान को अब है माना।
ऐसे प्यारे गुरुवर मुझे मिल गये है।
क्षमा कीजिए गुरुवर मुझको।।

सागवाड़ा दि. 22/4/18 समय रात्रि 8:25

आचार्य कनकनन्दी जी से अध्ययन के बाद मुझमें परिवर्तन

(चाल :हम तेरे बिन अब रह नहीं सकते)

बा.ब्र. उमंग जैन
(संघस्थ आचार्य कनकनन्दी)

मैं गुरु बिन अब रह नहीं सकता
कनक गुरु बिना मोक्ष नहीं
मेरे प्यारे गुरुवर तुम हो
तुमसा कोई धरती पर नहीं
मेरे प्यारे गुरु आध्यात्मिक हैं
ये सब प्रपञ्चों से दूर ऽऽऽ....
मेरे गुरुवर तुम, मेरे स्वामी तुम

मेरे भगवान् भी अब तुम ही हो
मेरे गुरुवर तुम, मेरे स्वामी तुम
मेरे भगवन्.....

मैं यह ना समझा था अब तक
स्व-आत्मा के विषय में
जब तेरे चरणों में आया
तब इसका परिचय हुआ
मेरे इस दुर्गुण को दूर
करने आये आप यहाँ ऽऽऽ....
मेरी माता तुम मेरे पिता तुम
अब सब कुछ मेरे तुम ही हो
मेरी माता तुम......
अब सब कुछ......

आपकी वाणी कोई ना समझे
समझने हेतु आध्यात्मिकता जरूरी
आपकी वाणी में जो ऊर्जा है
वो किसी की वाणी में नहीं
मेरे प्यारे गुरु तुम इतने सरल
इतनी सरलता कैसे धारी
मेरे गुरुवर मेरे स्वामी तुम
मेरे भगवन् भी अब तुम ही हो।

आचार्य कनकनन्दी गुरुदेव के प्रति भावनाएँ

(चाल :दूल्हे का सेहरा सुहाना लगता है....)

बा.ब्र. उमंग जैन
(संघस्थ आचार्य कनकनन्दी)

क्यों तेरे दर के सिवा कहीं और जाऊ मैं
तेरे ही आगे गुरु ये सर झुकाऊ मैं

मैं मुसाफिर भटकता हूँ तू ठिकाना है
मैं हूँ छोटा सा शहर तू तो विश्व है
जैसे भाव बिना दर्श नामुमकिन है, मेरी हर एक साँस अधूरी तुम बिन है
जैसे चाँद बिना रात नामुमकिन है, मेरी हर एक साँस अधूरी तुम बिन है
कनक गुरुवर तुम ही महावीर की मूरत हो
तुम्ही तो आध्यात्मिक की सूरत हो
तुमने स्वआत्मा का बोध कराया
तुमने विनय का सही अर्थ बतलाया
जैसे आत्मबोध बिना मोक्ष ना संभव है, मेरी हर साँस अधुरी तुम बिन है
जैसे गुरु बिना शिष्य नामुमकिन है, मेरी हर एक साँस अधुरी तुम बिन है।

मैं हूँ अज्ञानी गुरु तू ही तो ज्ञानी है
मैं हूँ सादा सा पानी तू तो अमृत है
तेरी वाणी अन्य सन्त ना समझ पाये
फिर भी ये तेरे ही गुण गाये हैं।
जैसे सुरज बिना सुबह नामुमकिन है, मेरी हर साँस अधूरी तुम बिन है
जैसे जल बिना जीवन नामुमकिन है,मेरी हर साँस अधूरी तुम बिन है।

तुम वैज्ञानिक वीतराग विज्ञान पढ़ाते हो
तुम आध्यात्मिक तुम ही आत्मबोध कराते हो
मैं हूँ तुच्छ मानव मैं यह ना समझ पाया था
इस हेतु तेरे ही आगे ये सर झुकाऊँ मैं
जैसे स्वाध्याय बिना मुनि नामुमकिन है मेरी हर साँस अधूरी तुम बिन है
जैसे तुम बिन ना मोक्ष नामुमकिन है मेरी हर एक साँस अधूरी तुम बिन है।

सागवाड़ा दि. 14/4/2018 प्रातः 8:30

वैश्विक वैज्ञानिक गुरु के ज्ञान में शक्ति

(चालः तेरे हाथ में मेरा हाथ हो...रवीन्द्र संगीत....)

बा.ब्र. उमंग जैन
(संघस्थ आचार्य कनकनन्दी)

मेरे सर पे कनक गुरु का हाथ हो
सारी भावना मेरी पूरी हो
तू जो पास हो फिर क्या ये जहान
तेरी शक्ति में हो जाऊँ मगन

जितना ज्ञान हैं तेरे पास गुरु
उतना ज्ञान तो किसी अन्य में नहीं
जैसे सूरज तुम दीपक हैं हम
वैसे आप तो महान् संत
जितना ध्यान आप करते हो गुरु
उतना ध्यान तो कोई ना करे
तू जो पास.....
तेरी शक्ति में....

जितने गुण गुरु आप में हैं
उतने गुण तो मैं ना धर सकूँ
समता भी हैं ममता भी हैं
उदार भाव की तुम मूरत
जितने आप हो करुणामयी
उतनी करुणा तो मैं ना धर सकूँ
तू जो पास.....
तेरी भक्ति में.....

सागवाड़ा, दिनांक 26/4/2018 मध्याह्न प्रायः 1.00

ऊँ नमः सिद्धेभ्य

मेरे गुरु कनकनन्दी की महिमा

(चालः मैया, ओ गंगा मैया)

- रचयित्री नैना सारगिया

सूरज चंदा गगन में जब तक रहें
मेरे गुरुवर तेरी जिंदगानी रहे, जिंदगानी रहे
गुरुवर ओ मेरे गुरुवर, गुरुवर ओ 'कनक' गुरुवर।।

मेरे गुरुवर है आत्म ज्ञानी, निस्पृही और धर्म विज्ञानी
निज ही निज में रहें, पर की ओर न लखें
तेरे चरणों में मेरा ये माथा रहे, ये माथा रहे
गुरुवर ओ मेरे गुरुवर, गुरुवर ओ 'कनक' गुरुवर।।

स्वयं पढ़ते सभी को पढ़ाते, 'मैं' से 'मैं' का परिचय कराते
राग द्वेष मोक्ष त्यजो, भक्त से भगवन बनो
मेरे गुरुवर निरन्तर ये कहते, निरन्तर कहते....
गुरुवर ओ मेरे गुरुवर, गुरुवर ओ 'कनक' गुरुवर।।

निशदिन आत्म की चर्चा वो करते, हित-अहित में वो भेद सिखाते
समता भावी गुरु, सरल ह्रदयी गुरु
तव चरण मेरे उर में नित रहे, उर में नित रहे
गुरुवर ओ मेरे गुरुवर, गुरुवर ओ 'कनक' गुरुवर।।

ज्ञान दान की महिमा बताते, पर की निंदा वो तजने को कहते
समदर्शी गुरु, सर्वगुणी गुरु
सर्वोदय की भावना सदा ही रखें सदा ही रखें
गुरुवर ओ मेरे गुरुवर, गुरुवर ओ 'कनक' गुरुवर।।

सूरज चंदा गगन में जब तक रहें
मेरे गुरुवर तेरी जिंदगानी रहे, जिंदगानी रहे

सागवाड़ा , दि.26/4/2018, मध्याह्न 4 बजे

आचार्य कनकनन्दी गुरुदेव की महिमा गाऊँ

रचयित्री-तृप्ति जैन हैदराबाद

(चाल :धन्य भाग्य जो आन पधारे....)

गुरु शरण में आये है हम, भक्ति भाव से।
कनक गुरु की महिमा गाये, आज चाव से।।

अल्प आयु से ही गुरु ने, सद्ज्ञान लिया है
राग-द्वेष मोह माया बन्ध, त्याग दिया है
दुर्गुण भागे इनसे दूर, उल्टे पाव से
कनक गुरु की......।।1।।

सत्य समता के पुजारी, सजग आत्मविहारी
संसार भोग की कथा में, मौन के धारी
रहे अडिग ना डरे कभी भी, कर्म दाव से।
कनक गुरु की.....।।2।।

भोला भाला समझे सब इन्हें, कोई पार ना पावे
ज्ञान साधना की ज्योति, सबका भेद बतावे
गुरु सा बनने जाओ सभी, गाँव-गाँव से।
कनक गुरु की......।।3।।

अनुराग कम हो मेरा मैं भी, भावना भाऊँ
सत्य राह पे चलूँ, आत्मतृप्ति को पाऊँ
भवसागर का पार पाये, भक्ति भाव से।
कनक गुरु की.....।।4।।

आचार्य कनकनन्दी गुरुदेव का व्यक्तित्व

रचयित्री-तृप्ति जैन हैदराबाद

(चाल :मेरे रश्के कमर, तूने पहली नज़र......)

अधरों से अधर मेरे मिलते हैं जब,
गीत गाये गुरु के तो मैं क्या करुँ?
है सहज और सरल साम्यभाव परम
शीश चरणों में झुकता है मैं क्या करुँ।। ध्रुव.।।

तेरा मेरा नहीं भेदभाव नहीं
रागद्वेष जगे ऐसे भाव नहीं
भोले मेरे गुरु इनकी पूजा करुँ
मन में भक्ति जगे है तो मै क्या करुँ?।।1।।

ज्ञान वैराग्य है और प्रज्ञा प्रखर
दंद फंद सभी से है दूर नज़र
नेम फेम मिले ऐसी चाह नहीं
फिर भी सबमें है फेमस तो मैं क्या करुँ।।2।।

देश में ही नहीं ये विदशों में भी
बसते सबके दिलों में उम्मीदों में भी
याद करते है जो पाते निश्चित ही वो
मुख पे मुस्कान सुख की तो मैं क्या करुँ।।3।।

नाचे झूमे मगन होके भक्ति में मन
कनकनन्दी जी गुरुवर से लागी लगन
अनुराग बढ़ा गुरु के चरणों से अब
पायेंगे आत्मतृप्ति तो मैं क्या करुँ?।।4।।

आचार्य कनकनन्दी गुरुदेव का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

- बाल कवयित्री 'खुशी जैन'

(चालः मेरा दिल भी कितना पागल हैं)

मेरे गुरुवर आत्म ज्ञानी है,
ज्ञान की महिमा न्यारी है।
जब सामने गुरुवर होते है,
मेरा मन भी पुलकित होता है।
ओ आतम ज्ञानी.....ओ गुरु ज्ञानी
ज्ञानी, ध्यानी.......

गुरु की वाणी बतलाती है
गुरु की महिमा को गाती है
संत जन भी न समझ पाये
दिन-रात ये जप-तप करते है।।1।।
मेरे गुरुवर......

संयमधारी उपकारी है
वात्सल्य भावी प्रकृति प्रेमी है।
निन्दा चुगली से परे है ये
परोपकार की भावना भाते है।।2।।
मेरे गुरूवर.....
श्रेयासंनाथ का रुप धरे....
माँ जिनवाणी को मन में धरे।
तेरे चरणों में रह के ही
'खुशी' भी होती धर्ममयी।।3।।
मेरे गुरुवर.....

आचार्य श्री कनकनन्दी की प्रतिज्ञा-

आधि-व्याधि-उपाधि से परे होने की

आचार्य श्री की प्रतिज्ञा है- वे आधि-व्याधि-उपाधि, ख्याति-पूजा-लाभ-प्रसिद्धि, आकर्षण-विकर्षण-द्वन्द्व, संकल्प-विकल्प-संक्लेश से परे होकर केवल आत्मविशुद्धि से आत्मोपलब्धि करना है, इसीलिए आचार्य श्री की इच्छा बिना, मना करने पर भी आचार्य श्री कुन्थुसागर, आचार्य श्री विमलसागर, आचार्य श्री भरतसागर, आचार्य श्री देशभूषण, आचार्य श्री विद्यानन्द, आचार्य श्री अभिनन्दसागर आदि ने उपाध्याय रत्न, सिद्धान्तचक्रवर्ती, ज्ञान-विज्ञान दिवाकर, विश्व धर्म प्रभाकर, आचार्य रत्न आदि पदवी प्रदान किए तथापि ये सभी पदवियाँ आचार्य श्री प्रयोग नहीं करते, केवल गुरुओं के गुणस्मरण के लिए सन्दर्भ के अनुसार लिखते व बोलते हैं।

आचार्य श्री कनकनन्दी जब उपाध्याय व ऐलाचार्य थे तब 1992 में ही आचार्य कुन्थुसागर ने एकान्त में पूरे संघ के प्रायः 45 साधु व साध्वियों के समक्ष आचार्य पदवी देना चाह रहे थे तो भी आचार्य श्री ने स्वीकार नहीं किया। संघ से अलग होने के बाद भी 4-5 वर्ष तक आचार्य श्री कुन्थुसागर अनेक बार पत्र व व्यक्ति भेजने पर भी पदवी स्वीकार नहीं किए किन्तु आचार्य श्री के शिक्षित शिष्य आचार्य पद्मनन्दी, आचार्य देवनन्दी आचार्य बनने के बाद समाचार विधि में समस्या होने के बाद आर्थात् वे आचार्य होने के बाद कनकनन्दी जी से ही पढ़ते थे व नमन परिक्रमा आदि पूर्ववत् करते थे, इन समस्याओं के कारण आचार्य श्री कुन्थुसागर गुरुदेव का पत्र आया व आ. पद्मनन्दी आदि के अनुरोध व समाज के विशेष अनुरोध से आचार्य श्री अभिनन्दनसागर जी गुरुदेव द्वारा आचार्य पदवी संस्कार किया गया जिसमें प्रायः आचार्य पद्मनन्दी सह 60-70 साधु-साध्वी व प्रायः 4-5 प्रदेशों के 30-35 हजार जन समूह के बीच उदयपुर में आचार्य पदवी संस्कार किया गया, उस समय में भी आचार्य श्री ने भरी सभा में कहा कि मैं आधि-व्याधि-उपाधि से परे होना चाहता हूँ, किन्तु संघ व्यवस्था हेतु निस्पृह रूप में आचार्य पदवी स्वीकार कर रहा हूँ।

आचार्य श्री के इन भाव-व्यवहार लक्ष्य व गुणों के कारण देश-विदेश के दिगम्बर श्वेताम्बर हिन्दू जैन-अजैन जज प्रोफेसर, शिक्षाविद्, साधु, वैज्ञानिक आदि

आचार्य श्री से अध्ययन कर रहे हैं। भारत के विश्व-विद्यालयों से लेकर विदेशों के विश्व-विद्यालयों व 5 महादेश में स्वेच्छा भक्ति से तन-मन-धन-श्रम-समय-शक्ति से जैन धर्म के वैज्ञानिक, गणितीय, आध्यात्मिक पक्ष का प्रचार-प्रसार अध्ययन लेखन आदि कर रहे हैं। यदि आचार्य श्री इन सब ख्याति-पूजा-लाभ-लन्द-फन्द-चन्दा-चिट्ठा-याचना-बाह्य आडम्बर आदि में लिप्त होंगे तो जो आत्मविशुद्धि से लेकर वैश्विक धर्म व ज्ञान की प्रभावना हो रही है वह नहीं हो पाएगी व देश-विदेश के जैन-अजैन वैज्ञानिक प्रोफेसर आदि शिष्य भक्त तन-मन-धन-समय-श्रम से सहयोग आदि नहीं करते।

अभी श्रवणबेलगोला में आचार्य श्री द्वारा शिक्षित-दीक्षित प्रायः 150 साधु-साध्वी शिष्यों ने भ. बाहुबली के अभिषेक की सूचना ब्र. पल्लवी के फोन से रात्रि में आरती के समय दीक्षा दिवस की सूचना दी तब तक आचार्य श्री को ज्ञात नहीं था कि दीक्षा दिवस है। वर्ष 1981 में आचार्य श्री की मुनि दीक्षा श्रवणबेलगोल में लाखों जन समूह के बीच हुई थी जिसमें आचार्य विमलसागर जी, आचार्य विद्यानन्द जी, आचार्य कुन्थुसागर जी, आचार्य भरतसागर जी, गणिनी आर्यिका विजयमती माताजी आदि दिग्गज विभूतियाँ उपस्थित थी। इस महान् पुण्य दिवस के उपलक्ष्य में इस निमित्त से पंचामृताभिषेक आदि अनुष्ठान हुए जिसकी सूचना वाट्स एप से दी गई।

इस विषय में विशेष ज्ञातव्य संस्मरण यह है कि आचार्य श्री ने 1981 में ही हासन में संघ के लिए 21 नियम बनाए थे, उसमें भी उपरोक्त नियम थे। 1988 में सम्मेद शिखर में 11 प्रतिज्ञाएँ ली थीं उसमें भी उक्त प्रतिज्ञाएँ थी। अतएव आप शिष्य भक्त जो भी कार्यक्रम कर रहे हो इससे आचार्य श्री पूर्णतः विरक्त है। आप लोग अपनी भावना भक्ति स्वेच्छा-स्वप्रेरणा से कर रहे हैं यह आपकी स्वयं की भावना भक्ति व पुण्यार्जन है।

❑❑❑

विषयानुक्रमणिका

अ.सं.	विषय	पृ. क्र.
1.	''गुणगण कथा दोष वादे च मौनं'' मैं क्यों करता हूँ!?	2
2.	आचार्य कनकनन्दी गुरुवर से प्रार्थना व मेरी भावना	3
3.	आचार्य कनकनन्दी गुरुवर से मांगता हूँ क्षमा	4
4.	आचार्य कनकनन्दी जी से अध्ययन के बाद मुझमें परिवर्तन	5
5.	आचार्य कनकनन्दी गुरुदेव के प्रति भावनाएँ	6
6.	वैश्विक वैज्ञानिक गुरु के ज्ञान में शक्ति	8
7.	मेरे गुरु कनकनन्दी की महिमा	9
8.	आचार्य कनकनन्दी गुरुदेव की महिमा गाऊँ	10
9.	आचार्य कनकनन्दी गुरुदेव का व्यक्तित्व	11
10.	आचार्य कनकनन्दी जी गुरुदेव का व्यक्तित्व एवं कृतित्व	12
11.	आधि-व्याधि-उपाधि से परे होने की...	13

स्वधर्म-सुधर्म गीताञ्जली

1.	कर रहा हूँ जिनवाणी का ज्ञानामृतपय पान	19
2.	स्वधर्म ही सुधर्म (आत्मधर्म) व इससे भिन्न परधर्म	25
3.	मेरा स्व-धर्म मेरा शुद्ध स्वरूप	26
4.	जैन धर्म की आध्यात्किता की सूक्ष्मता व अलौकिकता	35
5.	मेरी-आत्म-साधना का लक्ष्य/फल (सर्वज्ञत्व)	43
6.	परम पावन भाव-व्यवहार क्या व कैसे होते हैं!?	65
7.	एकाग्रचित्त ध्यान से लौकिक से आध्यात्मिक उपलब्धि	79
8.	सांसारिक उपलब्धि परे मेरी आत्मोपलब्धि	101
9.	मेरे आदर्श तीर्थंकर देव	105
10.	त्यजनीय व ग्रहणीय	118
11.	जैन श्रावकों के सम्पूर्ण धार्मिक कर्त्तव्य (वैश्विक संविधान)	119
12.	सम्वाद का स्वरूप व फल	129
13.	योग्य गुरु के भी हो जाते अयोग्य शिष्य	151
14.	भारत के 90 से 95 प्रतिशत बच्चों की हड्डियाँ कमजोर	160
15.	मेरे सभी में मैं ही हूँ ('मैं' 'अहं' का विश्व रूप)	172

आत्मसाधक गुरु की वन्दना

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : तुम दिल की....)

धन्य गुरुवर! धन्य हो तुम...आत्मसाधना जो करते हो।
आत्मा की उपलब्धि हेतु ही...समस्त साधना करते हो।। (ध्रुव)
आपने जाना है स्व-आत्मतत्त्व को...निश्चय व व्यवहारनय से।
निश्चय से जाना स्वयं को शुद्ध-बुद्ध...अशुद्ध भी जाना व्यवहार से।
शुद्ध बनने हेतु ही आप की साधना...ज्ञान-त्याग-तप त्याग से।
राग-द्वेष-मोह-काम-क्रोध-मद...ईर्ष्या-घृणा-त्याग से।। (1)
इस हेतु ही त्यागा है आपने...सत्ता-सम्पत्ति-भोगों को।
भाई-बन्धु-कुटुम्ब त्यागा...ख्याति-पूजा-लाभ-वर्चस्व को।।
शत्रु-मित्र-अपना-पराया त्यागा...अन्तरंग-बहिरंग परिग्रह को।
भीड़-प्रदर्शन-आडम्बर भी त्यागा...भौतिक निर्माण चन्दा-चिट्ठा को।। (2)
कोई आये तो शुभाशीर्वाद...कोई न आये तो साम्यभाव ही।
भक्त-शिष्य-प्रति न मोह आपका...न आने वालों को अभिशाप नहीं।।
आने वालों प्रति न भौतिक माँग...जाने वालों प्रति न आग्रह भी।
सत्ता-सम्पत्ति वालों से न अपेक्षा...गरीब जनों प्रति न उपेक्षा भी।। (3)
मैत्री-प्रमोद-कारुण्य-माध्यस्थ...सत्त्व गुणाधिक दुःखी विरोधी से।
समस्त विभाव बन्धनों से परे...पावन उदार भाव-व्यवहार ही।।
समता सहिष्णुता-निस्पृहता सह-सरल-निर्मल-निश्चल ही।
आत्म अध्ययन सह स्वाध्याय-ध्यान...आत्म उपलब्धि
हेतु ही समस्त कार्य।।(4)
अन्तरात्मा से बनते आप परमात्मा...आप सम बनने हेतु
'कनक' की प्रार्थना।।

मैं शाश्वत हूँ कभी न जानता

(चाल : शास्त्रीय राग...,मन तड़पत..बिन गुरु...)

मैं शाश्वत हूँ...कभी न जन्मता...
मैं अविनाशी...तन तो विनाशी...
जन्म-मरण...मेरा न होता...(ध्रुव)
यथा जल शीत से बर्फ बनता...उष्णता पाकर वाष्प बनता...
किन्तु अणु तो ध्रुव तो ध्रुव होता...तथाहि मैं ध्रुव ही होता...(1)
अनादि कालीन कर्म बन्ध से...संयोग हुए द्रव्य-भाव कर्म...
प्रकृति-स्थिति-अनुभाग प्रदेश...राग-द्वेष-मोह-काम हुए संश्लेष...(2)
इन से/(का) संयोग-वियोग भी होता...इससे ही जन्म-मरण होता...
तथापि मैं चैतन्य द्रव्य रूप होता...''सद् द्रव्य लक्षमणय'' मैं होता...(3)
यथा आकाश में बादल के कारण...विभिन्न रंग-आकार निर्माण...
विद्युत्-शब्द-वर्षादि होते...आकाश शाश्वत-अमूर्तिक रहता...(4)
आयुकर्म व शरीर के कारण...होता जन्म तथाहि मरण...
मैं तो चैतन्य-अमूर्तिक आत्मा...आयुकर्म-शरीर से भी भिन्न...(5)
आयुक्षय से होता है मरण, आयुकर्म उदय से होता जन्म...
मैं हूँ जीव द्रव्य निश्चय से सत्य, सत्य का कभी जन्म-मरण न होता।।(6)
टंकोत्कीर्ण ज्ञायक स्वभाव मैं आत्मा...उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य-मुझमें होता।
स्व-स्वभाव को पाने के लिए...राग-द्वेष-मोहादि त्यागना होगा...(7)
स्व-स्वरूप मेरा सच्चिदानन्द...शुद्ध-बुद्ध-आनन्द कन्द...
स्व-स्वरूप से भिन्न सभी है पर..पर-परिणती त्याग मेरा लक्ष्य...(8)
अतएव आत्मश्रद्धान ज्ञान से...पर-परिणती त्याग है चारित्र...
संयोग-वियोग-पर-परिणती परे...सत्य-शिव-सुन्दर 'कनक' का लक्ष्य...(9)

आत्मविशुद्धि बिन बाह्य तप, त्याग, संयम से मोक्ष नहीं

- आ. कनकनन्दी

(चाल : आत्मशक्ति से...)

केवल बाह्य तप त्याग संयम से नहीं होता आत्मकल्याण।
जब तक न होती आत्मविशुद्धि आत्म श्रद्धान युक्त आत्म ज्ञान।।1।।

राग-द्वेष-मोह-काम-क्रोध व ईर्ष्या तृष्णा घृणादि रहित भाव।
होती है आत्म विशुद्धि ख्याति पूजा लाभ वर्चस्व रहित भाव।।2।।

आत्म श्रद्धान होता है जब होता है श्रद्धान स्व शुद्धात्मा। (का)
मैं हूँ निश्चय से शुद्ध-बुद्ध-आनन्द स्वरूप परमात्मा।।3।।

किन्तु अनादि कर्म के कारण बना हूँ अशुद्ध संसारी आत्मा।
अभी मैं स्व-आत्म साधना से लक्ष्य बना हूँ बनना परमात्मा।।

इस हेतु होता है देव-शास्त्रगुरु व द्रव्य-तत्त्व का भी सही श्रद्धान।
तदनुकूल होता है सम्यकज्ञान, निश्चय-व्यवहार नय प्रमाण।।5।।

दोनों से सहित होता है श्रावक या श्रमण धर्म पालन।
शक्ति हो तो श्रमण धर्म अन्यथा पालन होता श्रावक धर्म।।6।।

आत्म श्रद्धान ज्ञान चारित्र बिन बाह्य तप त्याग संयम से न होता मोक्ष।
यथा बीज के बिन केवल मृदाजल वायु सूर्य किरण से न होता वृक्ष।।7।।

आत्म विशुद्धि से ही होते हैं कर्म संवर-निर्जरा व मोक्ष।
अतएव आत्म विशुद्धि ही मोक्ष प्राप्ति हेतु प्रमुख कारण।।8।।

आत्म विशुद्धि बिन होता है 'बाह्यतप' या मिथ्या साधना।
यह है सर्वज्ञ द्वारा कथित सत्य 'कनक' करे आत्म साधना।।9।।

स्वधर्म - सुधर्म गीताञ्जली

श्रुत पञ्चमी के उपलक्ष्य में .....

कर रहा हूँ जिनवाणी का ज्ञानामृतपय पान
(मैं जिनवाणी से स्व/(मैं) का अध्ययन कर रहा हूँ!)
(स्वाध्याय का स्वरूप व फल)

(चाल :आधा है चन्द्रमा....; करता हूँ वन्दना आदि स्वामी....)

सृजेता-आचार्य कनकनन्दी

करता हूँ स्वाध्याय जिनवाणी.... 2. आत्म तत्त्व बोधक दिव्यवाणी... (ध्रुव)

इससे सत्य-असत्य जाना...हेय-उपादेय को भी माना...
ज्ञान-ज्ञेय भी इससे जाना...पाप-पुण्य से ले मोक्ष जाना...
द्रव्य-तत्त्व-पदार्थ भी जाना...आत्मा से परमात्मा तक जाना...(1)....
करता हूँ स्वाध्याय....

स्व-अध्ययन को स्वाध्याय माना...इस हेतु पर को भी जाना....
यह है परम भेद-विज्ञान....यह परम सत्य का ज्ञान....
आध्यात्मिक यह सम्यग्ज्ञान....यह है भावश्रुतमय ज्ञान....करता ...(2)

इससे होता सही श्रद्धान....मैं हूँ शुद्ध-बुद्ध-आनन्द घन...
मैं हूँ स्वयम्भू-स्वयंपूर्ण....अनंत गुण गण परिपूर्ण....
द्रव्य-भाव-नोकर्म से शून्य....सत्-चित्-आनन्द गुणगण....(3)....

अनादि कर्मों से आबद्ध....जिससे बना हूँ मैं अशुद्ध....
कर्मनाश से बनूँ मैं शुद्ध....इस हेतु हूँ पुरुषार्थरत....
अनात्म भाव कर रहा हूँ त्याग.... उपादेय सत्य में दत्त चित्त....करता....(4)

समता-शान्ति व आत्म विशुद्धि....निस्पृह-निराडम्बर-मौनवृत्ति....
ख्याति पूजा लाभ वर्चस्व त्याग....आत्मानुशासन-आत्मानुभव....
मनन-चिन्तन व शोध-बोध....अध्यापन-लेखन व ध्यान....करता....(5)

सभी करता हूँ आत्म के केन्द्रित....आत्मा द्वारा आत्मा में स्थित....
ये हैं मेरे परम तप-ध्यान....संवर-निर्जरा हेतु प्रधान....

तीर्थयात्रा पूजा व आराधना....स्वाधीन निरवद्य साधना....करता....(6)

शिष्य-भक्त भी पाते हैं लाभ....बिना आडम्बर बिना धन....

अपेक्षा-प्रतीक्षा भी न होती....धर्म/(ज्ञान) प्रभावना निरवद्य होती....

जिनवाणी ज्ञानामृत पययान.... 'कनक' कर रहा हो निमग्न....करता....(7)

सागवाड़ा, दि.13/4/2018, रात्रि 8.58

संदर्भ-अपने आत्मस्वरूप की प्राप्ति के बिना सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं है और सम्यक्त्व के बिना मोक्ष की प्राप्ति सर्वथा नहीं है। यह श्री जिनेन्द्र भगवान का सुदृढ़ निश्चित सिद्धान्त है।

परमात्मा ध्यान का कारण-स्वाध्याय

पवयणसारब्भासं परमप्पज्झाण कारणं जाण।

कम्मक्खवणणिमित्तं कम्मक्खवणेहि मोक्खसोक्खं हि।।91।। रयण..

अर्थः-भगवान् जिनेन्द्र देव प्रणीत प्रवचनसार का अभ्यास, परमात्मा का ध्यान के सिद्धि के लिए कारण बनता है। आत्मा के शुद्ध स्वरूप की प्राप्ति का उपाय आत्मा का ध्यान ही है और ध्यान के लिए आगम शास्त्र का अभ्यास भी परब्रह्म परमात्मा के ध्यान का कारण बनता है। विशुद्ध आत्मा के स्वरूप का ध्यान ही कर्मों का नाश करने में समर्थ है और इसी से मोक्ष सुख की प्राप्ति होती है।

ज्ञानविहीन तप की शोभा नहीं

सालविहीणो राउ दाण दया धम्म रहियगिह सोहा।

णाणविहीण तवो वि य जीव विणा देह सोहं च।।92।।

अर्थः-जिस प्रकार राजा के नगर रक्ष का को किला खंदक के बिना राजा की शोभा नहीं है। दान दया धर्म के बिना गृहस्थ शोभा को प्राप्त नहीं होता है। जीव के बिना शरीर की शोभा नहीं है (मृत प्रेत कहलाता है) उसी प्रकार ज्ञान के बिना तप की शोभा नहीं है, सब निष्फल हैं।

परिग्रह दुःख का कारण

मक्खि सिलिम्मे पडिओ मुवइ जहा तहा परिग्गहे पडिउं।

लोही मूढो खवणो कायकिलेसेसु अण्णाणी।।93।।

अर्थः-जिस प्रकार मक्खी श्लेष्मा में पड़कर फँस जाती है और मर जाती है। उसी प्रकार लोभी अज्ञानी परिग्रह के लोभ में पड़कर शरीर क्लेश करने का ही काम करता है, कर्मों का नाश नहीं कर सकता है।

ज्ञानाभ्यास कर्मक्षय का हेतु

णाणब्भास विहीणा सपरं तच्चं ण जाणए किं पि।

णाणं तस्स ण होइ हु ताव ण कम्मं खवेइ ण हु मोक्खो।।94।।

अर्थः-सम्यग्ज्ञान के अभ्यास के बिना यह जीव भेद विज्ञान को प्राप्त नहीं होता है। आत्मतत्त्व और परतत्त्व को सर्वथा ही नहीं जानता है। स्व-पर ज्ञान ध्यान नहीं होता है और सम्यक्ध्यान के बिना कर्मों का क्षय नहीं होता है और मोक्ष की प्राप्ति कदापि नहीं होती है। इसलिए सम्यग्ज्ञान का अभ्यास अवश्य ही करना चाहिए।

अध्ययन ही ध्यान है

अज्झयणमेव झाणं पंचेंदिय णिग्गहं कसायं पि।

तत्तो पंचमकाले पवयणसारब्भासमेव कुज्जा हो।।95।।

अर्थः-प्रवचनसार-जिनागम का अभ्यास पठन पाठन स्वाध्याय अध्ययन चिंतन मनन और वस्तु स्वरूप का विचार करना ही ध्यान है। जिनागम के अभ्यास से ही इन्द्रियों का निग्रह होता है, मन का वशीकरण होता है, कषायों का उपशम होता है अर्थात् कषाय मंद होते हैं। इसलिए इस भरतक्षेत्र के पंचमकाल में एक जिनागम का अभ्यास करना श्रेष्ठ है। कर्मों के नाश करने का यही सही मूल कारण है।

त्रिकरण शुद्धि पूर्वक धर्मध्यान

धम्मज्झाणब्भासं करेइ तिविहेण जाव सुद्धेण।
परमप्पज्झाणचेतो तेणेव खवेइ कम्माणि।।96।।

अर्थः-मन वचन काय की विशुद्धता से अपने आत्मा के परिणामों में होने वाले अशुभ संकल्प विकल्पों को रोककर धर्मध्यान का अभ्यास करना चाहिये। उससे धर्मध्यान शुक्लध्यान होता है। जिससे कि यह आत्मा अपने शुद्ध स्वरूप में तन्मय होकर समस्त प्रकार के कर्मों का नाश कर स्व-स्वरूप को प्राप्त होता है।

सम्यग्ज्ञान ही धर्मध्यान

पावारंभ णिवित्ती पुण्णारंभे पउत्ति करणं पि।
णाणं धम्मज्झाणं जिणभणियं सव्व जीवाणं।।97।।

अर्थः-पाप कार्यों की निवृत्ति और शुभ पुण्य कार्यों में प्रवृत्ति का मूल कारण एक सम्यग्ज्ञान ही प्रधान है। इसलिए मुमुक्षु जीवों को सम्यग्ज्ञान ही धर्मध्यान है ऐसा श्री जिनेन्द्र देव ने कहा है।

श्रुताभ्यास के बिना सम्यक् तप नहीं

सुदणाणब्भासं जो ण कुणइ सम्मं ण होइ तवयरणं।
कुव्वं जइ मूढमई संसारसुखाणुरत्तोसो।।98।।

अर्थः-जो मुनि अच्छी तरह से जिनागम का अभ्यास नहीं करता है और बिना जिनागम के अभ्यास के ही तपश्चरण करता है वह अज्ञानी है और सांसारिक सुखों में लीन है ऐसा समझना।

क्योंकि भगवान् की वाणी वचन श्रुत है। श्रुत का अभ्यास ज्ञान अवश्य चाहिए। श्रुत ज्ञान के अभ्यास से ही भव्य जीवों को सम्यग्दर्शन की प्राप्ति है।

जैसे की अपनी आँखें अच्छी है, लेकिन अंधेरे में कुछ नहीं दिखाई देता है, उन आँखों से देखने के लिए प्रकाश की आवश्यकता है, तभी सभी वस्तु साफ दिखाई देते हैं। उसी प्रकार भगवान् जिनेन्द्र देव की वाणी-श्रुतज्ञान है वह साफ रोशनी

है। इस श्रुतज्ञान की रोशनी प्रकाश में समस्त वस्तुयें दिखाई देते हैं और उस दिखाई देने वाले वस्तु का पूरा ज्ञान होता है।

मुनिराज तत्त्वचिंतक होते हैं

तच्चवियारणसीलो मोक्ख महाराहणा सहावजुदो।
अणवरयं धम्मकहा पसंगओ होइ मुणिराओ।।99।।

अर्थः-जिन मुनिराजों ने पूर्व में श्रुतज्ञान का अभ्यास किया है और वर्तमान में भी तत्त्वों का विचार करने में कुशल (चतुर) हैं, लीन हैं। मोक्षमार्ग की आराधना करने का जिन मुनिराज का स्वभाव हो जाता है और निरंतर अपना समय धर्म कथा में ही व्यतीत करते हैं। सदा धर्मरत रहते हैं। वे ही यथार्थ मुनिराज कहलाते हैं। वास्तविक यही मुनिराजों का स्वरूप है।

मुनिराज की अनवरत चर्या

विकहाइ विप्पमुक्को आहाकम्माइ विरहिओ णाणी।
धम्मुदेसण कुसलो अणुपेहा भावणाजुदो जोई।।100।।

अर्थः-ज्ञानी योगीराज सतत धर्म ध्यान में और अध्ययन में लवलीन रहते हैं। स्त्री कथा, अर्थकथा, राजकथा, भोजन कथा, चोर कथा, वैर कथा, पाखण्डी कथा, देश कथा, स्व-प्रशंसा संबंधी कथा, परनिन्दा प्रकट कथा, तथा आक्षेपिणी विक्षेपिणी कथा इन कुकथाओं से सर्वथा सर्वदा भिन्न रहते हैं।

सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की भावनाओं में कार्यकृति में लगे रहते हैं। तथा सतत धर्म का उपदेश देने वाले होते हैं। तथा बारह भावनाओं के द्वारा तत्त्वस्वरूप का विचार करते रहते हैं। ऐसे ज्ञानी भव्य नरोत्तम पुरुष जिनलिंग-नग्नमुद्रा निर्ग्रंथ दिगम्बर धारक मुमुक्षु मुनीश्वर यतीश्वर होते हैं।

विकल्प, द्वंद्व रहित मुनिराज

अवियप्पो णिद्दंदो णिम्मोहो णिक्कलंकओ णियदो।
निम्मलसहाव जुत्तो जोई सो होइ मुणिराओ।।101।।

अर्थः-परमोत्कृष्ट मुनीश्वर का स्वरूप यह है कि जो यतीश्वर शुभ अशुभ संकल्पों से विकल्पों से रहित हैं, कोई द्वंद्व नहीं है, निर्मोह है, कलंक रहित हैं, अपने स्वरूप में स्थिर हैं, निर्मल है, निर्भय है, स्वच्छ आत्म स्वभाव सहित है वे ही मुनिनाथ है। स्व पर के हितकारी है।

मुनिराज कैसे होते है?

णिंदा वंचण दूरो परीसह उवसग्ग दुक्ख सहभावो।
सुहज्झाणज्झयण रदो गयसंगो होइ मुणिराओ।।102।।

अर्थः-जो निंदादिक गर्हित वचनों से रहित हैं अर्थात् कभी किसी की भी किसी प्रकार की निंदा नहीं करते हैं। मायाचार कुटिलपना भावों को स्पर्श भी नहीं करते हैं। परीषहों और उपसर्ग के भयंकर दुःख को समभाव से सहते हैं। साम्यभाव के धारक हैं, शुभध्यान व अध्ययन में सदा तत्पर रहते हैं। तथा चौबीस प्रकार के परिग्रह से सर्वथा रहित नग्न-दिगम्बर निर्ग्रंथ प्रत्यक्ष हैं वे ही यतीश्वर होते हैं।

मिथ्यात्व सहित मुक्ति नहीं

तिव्वं कायकिलेसं कुव्वंतो मिच्छ भावसंजुत्तो।
सव्वण्णुएवसे सो णिव्वाणसुखं ण गच्छेई।।103।।

अर्थः-जो मिथ्यात्व कर्म के उदय से मिथ्या भावों को धारण करता है और मिथ्या भावों के उदय में अत्यंत तीव्र रूप से तपश्चरण भी करता है, इससे केवल मात्र शरीर को ही कष्ट देता है, परन्तु निर्वाण पद को नहीं पाता है-मोक्ष नहीं जा सकता है।

रागी को आत्मा का दर्शन नहीं

रायादिमलजुदाणं णियप्परूवं ण दिस्सए किं पि।
समला दरिसे रूवं ण दिस्सए जहा तहा णेयं।।104।।

अर्थः-जिस प्रकार मलिन दर्पण में अपना यथार्थ शरीर का रूप दिखाई नहीं देता है उसी प्रकार जिनका आत्मा मिथ्यारूप रागद्वेष आदि दोषों से मलिन है, उस मलिन आत्मा में आत्मा का यथार्थ स्वरूप कुछ भी दिखाई नहीं देता है।

दीर्घ संसारी

दंडत्तय सल्लत्तय मंडियमाणो असूयगो साहू।
भंडण जायण सीलो हिंडइ सो दीह संसारे।।105।।

अर्थः-मनोदंड कायदंड अर्थात् मन वचन काय की अशुभ प्रवृत्ति का होना। मिथ्याशल्य मायाशल्य निदान शल्यों सहित। ईर्ष्यावान् तथा परस्पर में बात-बात में झगड़ा करने वाला और किसी भी चीज की याचना करने में कुशल है ऐसा साधु दीर्घ संसार में जन्म मरण करते हुए भ्रमण करता है।

सम्यक्त्व-रहित साधु कौन

देहादिसुअणुरत्ता विसयासत्ता कसाय संजुत्ता।
अप्पसहावे सुत्ता ते साहु सम्मपरिचत्ता।।106।।

अन्वयार्थः-(देहादिसु अणुरत्ता) शरीर पोषण में आसक्त (विसयासत्ता) विषयासक्त (कसाय संजुत्ता) क्रोधादि कषायों से युक्त (अप्पसहावे) आत्मस्वरूप में (सुत्ता) सोये है, अनभिज्ञ है, (ते साहू) वे साधु (सम्म परिचत्ता) सम्यक्त्व से रहित हैं।

स्वधर्म ही सुधर्म (आत्मधर्म) व इससे भिन्न परधर्म

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : 1.तुम दिल की... 2.सायोनारा...)
'स्वधर्म' ही 'सुधर्म' है, जिसे कहते हैं ''आत्मधर्म''।
'वस्तु स्वरूप धर्म' होने से, स्व-शुद्धात्मा ही स्वधर्म।।
'सद्द्रव्यलक्षण' होने के कारण, स्व जीव द्रव्य ही 'स्वधर्म'।
'गुणपर्ययवद् द्रव्य' होने से, शुद्ध गुणपर्याय ही 'सुधर्म'।।
गाथाः-
अहमेक्को खलु सुद्धो दंसणाणमय सयारूवी।
णवि अत्थिमज्झ किं चिवि अण्ण परमाणु मेत्तंपि।।(स.सा.)
एयत्तणित्छय गदो समओ सव्वत्थ सुन्दरो लोए।

बंध कहा एयत्ते तेण विसंवादिणी होई।।(स.सा.)(3)

कम्मे णोकम्माम्हि य अहमिदि अहकं च कम्म णोकम्मं।

जा एसा खलु बुद्धी अप्पडि बुद्धो हवदि ताव।। (स.सा.)(19)

राग-द्वेष मोह काम क्रोध मद ईर्ष्या तृष्णा भयादि कुधर्म/(परधर्म)
अपना पराया शत्रु-मित्रादि भाव अतएव सभी अनात्म कर्म।।
संकल्प-विकल्प-संक्लेश-द्वन्द्व, आकर्षण-विकर्षणादि भाव।
न होते शुद्ध आत्म स्वभाव, अतएव ये सभी अधर्म कर्म।।

ख्याति पूजा लाभ प्रसिद्धि वर्चस्व, अपेक्षा-उपेक्षा-प्रतीक्षा।
पर निन्दा अपमान वैर-विरोध, दीन-हीन दंभ अधर्म।।
इससे परे समता-शान्ति-निस्पृहता व ध्यान-अध्ययन।
तप-त्याग व व्रत-नियम, दान दया सेवादि धर्म साधन।।

आत्म विश्वास चारित्र युक्त, क्षमामार्दव आर्जव शौच संयम।
आत्मानुशासन-आत्मावलम्बन-आत्मविशुद्धि है स्वधर्म।।
उदार-पावन-सहिष्णुता-धैर्य-समन्वय व सद्विचार।
मैत्री प्रमोद कारुण्यमाध्यस्थ आदि है सद्धर्म के द्वार।।

ये हैं आध्यात्मिक धर्म के रहस्य, जिससे मिले परिनिर्वाण।
अज्ञानी मोही कामी स्वार्थी जीव करते इससे विपरीत परिणाम/(परिणमन)
सर्वज्ञ कथित आचार्य लिखित, ग्रन्थों का ये सार तत्त्व।
'सूरी कनक' भी शोध-बोध व प्रयोग में पाया सत्य तत्थ।।

सागवाड़ा-दि. 13/4/2018 मध्याह्न -12:02

मेरा स्व-धर्म मेरा शुद्ध स्वरूप

(मेरा विधर्म मेरा विभाव)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : 1.भातुकली(मराठी)...2. ऐ! मेरे प्यारे वतन...)

मेरा स्व-धर्म मैं ही स्वयं....जो सच्चिदानन्दमय....

द्रव्य-भाव-नोकर्म शून्य....शुद्ध-बुद्ध-आनन्दघन....(ध्रुवपद)....
'सद्द्रव्यलक्षणं' होने से....आत्म द्रव्य मेरा सत्य....
'गुणपर्ययवत्' द्रव्य होने से....गुण-पर्याय से मैं युक्त....
आत्मश्रद्धान ज्ञान चारित्र....हो ऽऽऽ....मुझमें ही तो स्थित....

मोक्षमार्ग से ले मोक्ष तक....मेरे द्वारा ही मुझमें प्राप्त....(1)....
मेरे स्व-धर्म ही सुधर्म है....'वस्तु स्वभाव धर्म' से....
मेरा स्वभाव ही स्वधर्म है.... विभाव अधर्म होता है....
कर्मजनित विभाव कुधर्म....हो ऽऽऽ राग द्वेष मोह काम क्रोध....
ईर्ष्या तृष्णा व घृणामय....दीन-हीन-अहंकार-क्षोभ....(2)....

पर निन्दा-अपमान-वैर-विरोध....हिंसा-झूठ-चोरी-संग्रह....
वैषम्य-संक्लेश-द्वन्द्व-दुःख....अशान्ति-असहिष्णुता विधर्म....
इससे रहित उत्तम क्षमा....हो ऽऽऽ मार्दव आर्जव शौच तप....
निस्पृह-निराडम्बर-आकिञ्चन्य....समता-शान्ति आत्मिकधर्म...(3)...

संयम-धैर्य-आत्मानुशासन....निर्द्वन्द्व-स्वतन्त्रता-स्वालम्बन....
निच्छल-निश्चल-निर्विकल्प....निरालम्ब निर्मल ममधर्म....
इस हेतु ही बाह्य कारण....होऽऽऽ....देव-शास्त्र-गुरु आलम्बन....
अट्ठावीस मूलगुण पालन....तप त्याग-ध्यान-अध्ययन....(4)....

इसे कहते हैं व्यवहार धर्म...जिससे पाऊँ निश्चय धर्म....
निश्चय धर्म आत्मस्वभाव....आत्मस्वभाव ही स्व-धर्म....
यह है आध्यात्मिक रहस्य....होऽऽऽ....अज्ञानी-मोही से अज्ञात सत्य....
हितोपदेशी-सर्वज्ञ से ज्ञात सत्य...स्वभाव प्राप्ति ही 'कनक' लक्ष्य........(5)

सागवाड़ा; दि.25/4/2018, रात्रि 9.25

उपशम-संवेगादिस्वरूपम्

तं उवसमसंवेगाइएहि लक्खिज्जई उवाएहिं।

आयपरिणामरूवं बज्झेहिं पसत्थजोगोहि।।53।।

इत्थं य परिणामो खलु जीवस्स सुहो उ होइ विन्नेओ।

किं मलकलंकमुक्कं कणगं भुवि सामलं होइ।।54।। (श्रावक प्रज्ञप्ति)

आगे दुर्लक्ष्य आत्मपरिणामरूप उस सम्यक्त्वके अनुमापक कुछ चिह्नोंका निर्देश किया जाता है-

आत्मपरिणामस्वरूप वह सम्यक्त्व बाह्य प्रशस्त व्यापाररूप उपशम व संवेग आदि उपायोंसे लक्षित होता है-जाना जाता है।।55।।

इसे स्पष्ट करते हुए आगे उसके कारण का निर्देश किया जाता है-

कारण इसका यह है कि इस सम्यक्त्व होने पर जीव का परिणाम (व्यापार या आचरण) उत्तम ही होता है-निन्द्य आचरण उसका कभी नहीं होता है। सो ठीक भी है, क्या लोकमें कभी मल-कलंक-कोटि-कालिमासे रहित सुवर्ण मलिन हुआ है? नहीं।

विवेचन-प्रकृत सम्यक्त्व अतीन्द्रिय आत्मा का परिणाम है, अतः छद्मस्थ के लिए उसका परिज्ञान नहीं हो सकता। इससे यहाँ उसके परिचायक कुछ बाह्य चिह्नों का निर्देश किया गया है। वे चिह्न ये हैं-प्रशम, संवेग, निर्वेद, अनुकम्पा और आस्तिक्य। ये सब बाह्य प्रवृत्ति रूप हैं। जिस जीवके उक्त सम्यक्त्व प्रादुर्भूत हो जाता है उसकी बाह्य प्रवृत्ति प्रशस्त होती है, वह कभी निन्द्य आचरण नहीं करता। इसीसे उक्त प्रशम-संवेगादिरूप प्रवृत्तिको देखकर उसके आश्रयसे किसी के उस सम्यक्त्व का अनुमान किया जा सकता है। इनके होते हुए वह सम्यक्त्व हो भी सकता है और कदाचित् नहीं भी हो सकता है, पर इनके बिना उस सम्यक्त्व का अभाव सुनिश्चित समझना चाहिए। कारण इसका यह है कि वैसी प्रवृत्ति अन्तःकरण पूर्वक न होकर कदाचित् कपट से भी की जा सकती है।।55।।

आगे उन प्रशमादिकों के स्वरूप का निरूपण करते हुए प्रथमतः प्रशमके स्वरूपको प्रकट किया जाता है-

पयईइ व कम्माणं वियाणिउं वा विवागमसुहं ति।

अवरद्धे वि न कुप्पइ उवसमझो सव्वकालं पि।।55।।

नरविबुहेसरसुक्खं दुक्खं चिय भावओ य मन्नंतो।

संवेगाओ न मुक्खं मुत्तणं किंचि पत्थई।।56।।

सम्यक्त्व विभूषित जीव उपशम (प्रशम) के आश्रय से स्वभावतः अथवा कर्मों के अशुभ विपाक को जानकर सदा अपराधी प्राणी के ऊपर भी क्रोध नहीं किया करता है।

विवेचन-सम्यक्त्व प्राप्त कर लेने पर जीव का स्वभाव इस प्रकार हो जाता है कि यदि कोई प्राणी प्रतिकूल होकर उसका अनिष्ट भी करता है तो वह उसके ऊपर कभी क्रोध नहीं करता। ऐसे समय में वह यह विचार करता है कि क्रोधादि कषाय ही तो कर्मबन्ध के कारण हैं। कषाय के वशीभूत होकर प्राणी अन्तर्मुहूर्त में जिस कर्म को बाँधता है उसके फलको वह अनेक कोड़ाकोड़ी सागरोपम काल तक कष्ट के साथ सहता है। इस प्रकार कर्म के अशुभ फलको जानकर वह अपराध करने वाले के ऊपर भी जब क्रोध नहीं करता है.तब भला वह निरपराध प्राणी के ऊपर क्रोध कर ही कैसे सकता है? इस प्रकार से जो सम्यक्त्व प्रभाव से उसके क्रोधादि कषायों की स्वभावतः उपशान्ति होती है उसी का नाम प्रशम है।।55

अब क्रमप्राप्त संवेगका स्वरूप कहा जाता है-

सम्यग्दृष्टि जीव संवेग के निमित्त से चक्रवर्ती और इन्द्रके सुख को भी यथार्थ में दुःख ही मानता है। इसी से वह मोक्ष को छोड़कर अन्य कुछ भी नहीं चाहता है।

विवेचन-यथार्थ सुख उसे कहा जा सकता है जहाँ कुछ भी आकुलता न हो। चक्रवर्ती और इन्द्र आदिका सुख स्थायी नहीं है-विनश्वर है, अतः वह आकुलता रहित नहीं हो सकता। इसीलिए सम्यग्दृष्टि जीव इन्द्र व चक्रवर्ती आदि के सातावेदनीय उस सुखको विनश्वर व पापका मूल जानकर दुःख ही मानता है। वास्तविक सुख परावलम्बन के बिना होता है। कर्मोदय के बिना प्राप्त होने वाला स्वाधीन व शाश्वतिक वह सुख मोक्ष में सम्भव है। अतएव सम्यदृष्टि जीव क्षणनश्वर, पराधीन व परिणाम में दुःखोत्पादक सांसारिक सुख की अभिलाषा न करके निर्बाध व शाश्वतिक सुखके स्थानभूत मोक्ष की अभिलाषा करता है। इस मोक्ष की अभिलाषा नाम ही संवेग है जो उस सम्यक्त्व के प्रकट होने पर स्वभावतः होता है।।56।।

नारयतिरियनरामरभवेसु निव्वेयओ वसइ दुक्खं।

अकयपरलोयमग्गो ममत्तविसवेगरहिओ वि।।57।।

दट्ठूण पांणिनिवहं भीमे भवसागरंमि दुक्खत्तं।

अविसेसओ णुकंपं दुहावि सामत्थओ कुणइ।।58।।

मन्नइ तमेव सच्चं निस्संकं जं जिणेहि पन्नत्तं।

सुहपरिणामो सव्वं कंक्खाइ विसुत्तियारहिओ।।(59)।।

आगे निर्वेदका स्वरूप कहा जाता है-

ममतारूप विषके वेग से रहित भी प्राणी परलोक के मार्ग को न करके-उत्तम परलोक के कारणभूत सदाचरण को न करके निर्वेद के आश्रय से नारक, तिर्यंच, मनुष्य और देव पर्यायों में दुःखपूर्वक रहता है।

विवेचन-नारक, तिर्यंच और कुमानुष अवस्था नाम निर्वेद है (दशवै.निर्युक्ति 203) तत्त्वार्थधिगमभाष्य की सिद्धसेन गणि विरचित्त वृति (2-3) के अनुसार विषयों में जो अनासक्ति होती है उसे निर्वेद कहा गया है। यहीं पर आगे पुनः यह कहा गया है कि शरीर, भोग, संसार और विषयों से जो विमुखता, उद्वेग अथवा विरक्ति होती है उसका नाम निर्वेद है। प्रकृत गाथा का अभिप्राय यह है कि सम्यग्दृष्टि जीव निर्वेद के आश्रय से नारक आदि भवों में दुःखपूर्वक रहता है। वह ममत्वभावसे रहित होता हुआ भी यद्यपि उत्तम परलोक के योग्य आचरण नहीं कर पाता है, फिर भी वह उन्हें कष्टकर मानता है व उनको ओर से विमुख रहता है।।57।।

आगे अनुकम्पाके स्वरूप को दिखलाते हैं-

सम्यग्दृष्टि जीव भयानक संसार रूप समुद्र में दुःखों से पीड़ित प्राणी समूह को देखकर बिना किसी विशेषता के-समान रूप से- यथाशक्ति द्रव्य व भाव के भेद से दोनों प्रकार की अनुकम्पाको करता है। अभिप्राय यह है कि चारों गतियों में परिभ्रमण करते हुए प्राणी अनेक प्रकार के शारीरिक व मानसिक दुःखों से पीड़ित रहते हैं। उन्हें इस प्रकार दुःखी देखकर सम्यग्दृष्टि जीव स्वभावतः उनके दुःख को अपना समझता हुआ यथायोग्य उन्हें प्रासुक भोजानादि देकर जहाँ द्रव्य से अनुकम्पा करता है वहाँ उन्हें सन्मार्ग में लगाकर वह भाव से भी अनुकम्पा करता है। यह अनुकम्पाका कार्य वह अपना व परका भेद न करके सभी के प्रति समान रूप से करता है। उपर्युक्त प्रशमादिके समान यह भी उसके सम्यक्त्व का परिचायक है।।58।।

एवंविहपरिणामो सम्मद्दिट्ठी जिणेहिं पन्नत्तो।

एसो य भवसमुद्दं लंघइ थोवेण कालेण।।60।।

अब सम्यग्दृष्टि के आस्तिक्य गुण के अस्तित्व को दिखलाते हैं-

आस्तिक्य आदि रूप शुभ परिणाम से युक्त सम्यग्दृष्टि जीव कांक्षा आदि विश्रोतसिका प्रतिकूल प्रवाह-से रहित होकर जिनदेव द्वारा जो भी वस्तुका स्वरूप कहा गया है उस सभी को सत्य मानता है।

विवेचन-जीवादि पदार्थ यथासम्भव अपने-अपने स्वभाव के साथ वर्तमान है, इस प्रकार की बुद्धि का नाम अस्तिक्य है, (त.वा. 2,60) 'आत्मा आदि पदार्थ समूह है' इस प्रकार की बुद्धि जिसके होती है उसे आस्तिक और उसकी इस प्रकार की परिणति की आस्तिक्य कहा जाता है। यह गुण सम्यग्दृष्टि जीव में स्वभावतः होता है। जिन भगवान् के द्वारा जीवादि पदार्थों का जैसा स्वरूप कहा गया है उसे ही वह यथार्थ मानता है। कारण यह है कि वह जानता है कि जिन भगवान् सर्वज्ञ व वीतराग है, अतः वे वस्तुस्वरूप का अन्यथा कथन नहीं कर सकते। असत्य वही बोलता है जो या तो अल्पज्ञ हो या राग-द्वेष वशीभूत हो। सो जिन भगवान् में इन दोनों का ही अभाव है। अतएव उनसे असत्यभाषण की सम्भावना नहीं की जा सकती। ऐसा सम्यग्दृष्टि के दृढ़ विश्वास हुआ करता है। यही आस्तिक्य गुणका लक्षण है। सम्यग्दृष्टि जीव इस आस्तिक्य गुण के साथ पूर्वनिर्दिष्ट प्रशम, संवेग, निर्वेद, अनुकम्पा से संयुक्त होता है। साथ ही वह सम्यक्त्व को मलिन करने वाले कांक्षा व विचिकित्सा आदि अतिचारों से रहित भी होता है। इन अतिचारों का स्वरूप ग्रन्थकार के द्वारा आगे स्वयं निर्दिष्ट किया जानेवाला है। (87-88) । यहाँ कांक्षा आदि को विश्रोतसिका कहा गया है। उसका अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार खेत में बोयी गयी फसल की वृद्धि के लिए उसका जल से सिंचन किया जाता है, पर सिंचन के लिए उपयुक्त जलका प्रवाह यदि विपरीत दिशा में जानेवाला हो तो उससे फसल का संरक्षण व संवर्धन नहीं हो सकता है, ठीक इसी प्रकार संयम का संरक्षण व संवर्धन करनेवाला यह सम्यक्त्व यदि कांक्षा आदि से मलिन हो रहा हो तो उससे स्वीकृत संयम का संरक्षण व संवर्धन नहीं हो सकता है। इसी से सम्यग्दृष्टि को उनसे रहित कहा गया है।।59।।

इस प्रकार जिनदेव के द्वारा सम्यग्दृष्टि जीव को उक्त प्रकार के प्रशम-संवेगादिरूप शुभ परिणामों से युक्त कहा गया है। इस प्रकार की उत्तम परिणति से युक्त यह सम्यग्दृष्टि ही थोड़े समय में अधिक से अधिक उपार्धपुद्गल परावर्त काल के भीतर ही संसार रूप समुद्र को लांघता है - वह भयानक चतुर्गति स्वरूप संसार से शीघ्र मुक्त हो जाता है।।(60)।।

जं मोणं तं सम्मं जं सम्मं तमिह होइ मोणं ति।
निच्छयओ इयरस्य उ सम्मं सम्मत्तहऊ वि।।62।।
जं मोणं ति पासहा तं सम्मं ति पासहा।
जं सम्मं ति पासहा तं मोणं ति पासहा।। इत्यादि

निश्चयतः परमार्थेन निश्चययनमतेनैव एतदेवमिति,

जो जहवायं न कुणइ मिच्छद्दिट्ठी तआ हु को अन्नो।
वड्ढेइ य मिच्छत्तं परस्य संकं जणेमाणो।।

आगे मुनिधर्म को हो सम्यक्त्व का निर्देश किया जाता है-

यथार्थ में यहाँ निश्चय की अपेक्षा जो मुनिका चारित्र है वह सम्यक्त्व है और जो सम्यक्त्व है वह मुनिका चारित्र है। पर व्यवहार नय की अपेक्षा सम्यक्त्व का जो कारण है उसे भी सम्यक्त्व कहा जाता है।

विवेचन-*प्रकृत गाथा में निश्चय और व्यवहार इन दोनों नयों की अपेक्षा सम्यक्त्व के स्वरूप को दिखलाते हुए कहा गया है कि निश्चय जो मुनिधर्म है वही सम्यक्त्व है और जो सम्यक्त्व है वही मुनिधर्म है-दोनों में कुछ भेद नहीं है। कारण यह कि निश्चय से आत्म-पर-विवेक का होना सम्यक्त्व है जो उस मुनिधर्म से भिन्न नहीं है। इस आत्म-परविवेक प्रकट हो जाने पर प्राणी को हेय और उपादेय ज्ञान होता है, जिसके आश्रय से वह पापचरण को छोड़कर संयम में प्रवृत्त होता है। 'मन्यते जगतस्त्रिकालवस्थामिति मुनिः' इस निरुक्ति के अनुसार मुनिका अर्थ है तीनों काल की अवस्था को समझने वाला तपस्वी। इसी से निश्चयनय की अपेक्षा इन दोनों में भेद नहीं किया गया। टीका में इसकी पुष्टि आचरांग सूत्र (२५६, पृ.११२) से की गयी है। जो यथार्थ आचरण नहीं करता है उससे अन्य मिथ्यादृष्टि और कौन हो सकता है?*

उसे ही मिथ्यादृष्टि जानना चाहिए। ऐसा मिथ्यादृष्टि शंका को उत्पन्न करता हुआ दूसरे के भी मिथ्यात्व को बढ़ाता है। व्यवहारनयसे जो जिनशासन विषयक अनुराग आदि सम्यक्त्व के कारण हैं उन्हें भी कारण में कार्य के उपचार से सम्यक्त्व कहा जाता है, क्योंकि परम्परासे वे भी मुक्ति के कारण हैं। जैनशासनकी यह एक विशेषता है कि वहाँ वस्तुतत्त्वका विचार दुराग्रहको छोड़कर अनेकान्त दृष्टि से-निश्चय व व्यवहार नयों के आधार से-किया गया है। परस्पर सापेक्ष इन दोनों नयों के बिना वस्तुके स्वरूप को यथार्थ में समझा ही नहीं जा सकता। इसी से आगम में यह कहा गया है कि जो आत्महितैषी भव्य जीव जिनमत को स्वीकार करता है।

तत्तत्थसद्दहाणं सम्मत्तं तंमि पसममाईया।
पढमकसाओवसमादविक्खया हुंति णियमेण।।62।।
जीवाजीवासवबंधसंवरा निज्जरा य मुक्खो य।
तत्तत्था इत्थं पुण दुविहा जीवा समक्खाया।।63।।

उसे व्यवहार और निश्चयनयों को नहीं छोड़ना चाहिए। इसका कारण यह है कि व्यवहार नयके छोड़ देने पर जैसे तीर्थ का-धर्मप्रवर्तनका-विनाश अवश्यम्भावी है वैसे ही निश्चयनय के छोड़ देने पर तत्त्व का-वस्तुव्यवस्था-विनाश भी अनिवार्य है। अतः तत्त्व समझने के लिए मुख्यता व गौणता या विवक्षा व अविवक्षाके आधार से यथासम्भव उक्त दोनों नयों का उपयोग अवश्य करना चाहिए।।62।।

आगे वाचक उमास्वाति के द्वारा जिस सम्यग्दर्शन का लक्षण तत्त्वार्थश्रद्धान निर्दिष्ट किया गया है वह प्रशम-संवेगादिका हेतु है, इसे दिखलाते हैं-

जीवाजीवादि तत्त्वार्थों के श्रद्धान का नाम सम्यग्दर्शन है। उसके हो जाने पर प्रथम अनन्ताबुन्धी कषाय के उपशम, क्षय अथवा क्षयोपशमके होने पर ही होता है- उसके बिना नहीं होता। उक्त प्रशमादि भी प्रकृत कषाय के उपशमादिकी अपेक्षा रखते हैं। यही कारण है जो उसके उदय युक्त जीवों के असम्भव के प्रशमादि भाव सम्यग्दृष्टि के नियम से होते हैं। इस प्रकार सम्यग्दर्शन के अविनाभावी वे प्रशमादिक उस (सम्यग्दर्शन) के परिचायक होते हैं।।62।।

आगे उन तत्त्वार्थों का निर्देश किया जाता है।

नीसेसकम्मविगमो मुक्खो जीवस्स सुद्धरूवस्स।
साइ अपज्जवसाणं अव्वाबाहं अवत्थाणं।।83।।
एयमिह सद्दहंतो सम्मद्दिट्ठी तओ अ नियमेण।
भवनिव्वेयगुणाओ पसमाइगुणासओ होइ।।84।।

आगे अन्तिम मोक्ष तत्त्व का स्वरूप कहा जाता है-

समस्त कर्मों के विगम-आत्मा के पृथक् हो जाने-का नाम मोक्ष है जो शुद्धरूप-कर्मके संयोग प्राप्त विभाव भाव से रहित स्वाभाविक स्वरूप से युक्त-जीव के सादि-अपर्यवसन निर्बाध अवस्थानरूप है।

***विशेषार्थ-**अभिप्राय यह है कि जीव के साथ जब तक कर्मका सम्बन्ध रहता है तब तक उसका स्वाभाविक स्वरूप प्रकट नहीं हो पाता, वह समस्त ज्ञानावरणादि कर्मों के आत्मा से पृथक् हो जाने पर ही प्रादुर्भूत होता है। यह जो जीव के शुद्ध स्वरूप की प्राप्ति है उसी का नाम मोक्ष है। यह मोक्षरूप जीव की अवस्था सादि होकर अनन्तकाल तक रहनेवाली है तथा बाधक कर्मों के हट जाने से वह निराकुल निर्बाध सुख से सम्पन्न है।।83।।*

इस प्रसंग प्राप्त जीवादि तत्त्वों का व्याखान करके अब सम्यग्दृष्टि के स्वरूप का निर्देश करते हुए गुणों को प्रकट किया जाता है-

इस प्रकार से यहाँ श्रद्धान करता हुआ-प्रवचन में प्रतिपादित जीवादि तत्त्व 'इसी प्रकार हैं, अन्यथा नहीं है' इस प्रकार निर्मल अन्तःकरण से श्रद्धान करने वाला-जीव सम्यग्दृष्टि होता है। वह संसार से होने वाली विरक्तिरूप गुणसे नियमतः पूर्वोक्त प्रशमादि गुणों का आश्रय (भाजन) होता है।।84।।

आगे इससे विपरीत अवस्था में क्या स्थिति होती है, इसे स्पष्ट किया जाता है।

विवरीयसद्दहाणे मिच्छाभावाओ नत्थि केइ गुणा।
अणभिनिवेसो उ कयाइ होइ सम्मत्तहेऊ वि।।85।।
सम्मत्तस्सइयारा संका कंखा तहेव वितिगिच्छा।
परपासंडपसंसा संथवमाई य नायव्वा।।86।।

संसयकरणं संका कंखा अन्नन्नदंसणग्गाहो।
संतंमि वि वितिगिच्छा सिज्झिज्ज न मे अयं अट्ठो।।87।।

जैसा कि जीवादि तत्त्वों का स्वरूप कहा गया है, उसके विपरीत श्रद्धान करने पर मिथ्याभाव कारण कोई भी गुण नहीं होते। किन्तु अनभिनिवेश-विपरीत श्रद्धा के होने पर भी 'यह इसी प्रकार ही हैं' ऐसे दुराग्रहरूप अध्यवसाय का अभाव-किसी समय या अनियत रूप में सम्यक्त्व का कारण भी हो जाता है। जैसे-इन्द्र-नागादिकों के।।85।।

आगे सम्यक्त्व के अतिचारों का निर्देश किया जाता है-

शंका, कांक्षा, उसी प्रकार विचिकित्सा, परपाखण्डप्रशंसा और संस्तव इत्यादि उस सम्यक्त्व के अतिचार-उसको मलिनित करनेवाले दोष जानना चाहिए। अतिचार से अभिप्राय ऐसे असदाचरणविशेषों का है जिनसे उस सम्यक्त्व की विराधना होती है। आदि शब्द से यहाँ अनुवृहण एवं अस्थिरीकरण आदि अन्य अतिचारों की भी सूचना की गयी है।।63।।

जैन धर्म की आध्यात्मिकता की सूक्ष्मता व अलौकिकता

(चालः 1.छोटी छोटी गैया..... 2. क्या मिलिए.....)

आचार्य कनकनन्दी

सम्यक्त्व बिन न होता आत्मविश्वास, स्वशुद्धात्मा श्रद्धान से होता आत्मविश्वास।
इसके बिना जो माने आत्मविश्वास, वह है इच्छा या निदान स्वरूप।। (1)

सम्यक्त्व से होता है सम्यग्ज्ञान, सम्यग्ज्ञान से होता भेद विज्ञान।
इसके बिना जो होता है ज्ञान, वह है जानकारी या मिथ्याज्ञान।। (2)
इन से युक्त होता है सम्यग्चारित्र, स्वशुद्धात्मा प्राप्ति हेतु पुरुषार्थ।
इससे भिन्न होता है मिथ्याचारित्र, लौकिक आचरण, या कुपुरुषार्थ।। (3)

आत्मविश्वास से होता स्वधर्म/(सुधर्म) आरंभ,अन्यथा कुधर्म या बाह्याडम्बर।
आत्मविश्वास ज्ञान चारित्र सहित, होते हैं मोक्षमार्गी या मुमुक्षु।।(4)

उत्तम क्षमादि होते श्रमणधर्म, श्रावक पाले जो सो आंशिक धर्म।।
तथाहि सोलहकारण व बारह भावना, पंचव्रत से ले सभी धर्म साधना।। (5)

अन्यथा न होते उत्तम क्षमादि धर्म, जो होते वे होते बाह्याचार धर्म।
मन्द कषाय व शुभ लेश्या से होते, विवशता या संकीर्ण स्वार्थ से होते।।(6)

स्वाध्याय है स्वशुद्धात्मा का ज्ञान/(अध्ययन) भावश्रुत ही है सही स्वाध्याय।
इस हेतु है द्रव्यश्रुत अध्ययन/(ज्ञान), ध्यानावस्था में यथार्थ भेदज्ञान।।(7)

समता ही है परमसम्यग्चारित्र, मोह क्षोभ रहित शुद्धात्मा भाव।
शुद्धात्माभाव ही है परमस्वधर्म, इसके बिना सभी है पर धर्म।।(8)

स्वधर्म ही है संवर निर्जरा, तप त्याग व ध्यान आराधना।
स्तुति वंदना प्रतिक्रमण-प्रत्याख्यान, मोक्षमार्ग से लेकर परिनिर्वाण।।(9)

इस हेतु ही देव-शास्त्र-श्रद्धान, दान दया पूजा तीर्थ वन्दन।
श्रावक से ले मुनि धर्म पालन, गुणस्थान आरोहण व मोक्षगमन।।(10)

नीति-नियम कानून संविधान, लौकिक मर्यादा से परामनोविज्ञान।
पंथ-मत व रूढ़ि परम्परा परे, कला संगीत व भौतिक विज्ञान परे।।(11)

इस हेतु चक्री भी बनते श्रमण, तीर्थंकर मुनि भी करते ध्यान।
सत्य-शिव-सुन्दर अमृत धाम, इस हेतु 'कनकनंदी' बना श्रमण।।(12)

सागवाडा दि. 18-4-2018 रात्रि-8:54

सन्दर्भ-

हेय-उपादेय?

हीणादाण वियार विहीणादो बाहिरक्ख सोक्खं हि।
किं तजियं किं भजियं किं मोक्खु ण सुहं जिणुदिट्ठ।।85।।

अर्थः- कौन सी वस्तु ग्रहण करने योग्य है और कौन सी वस्तु त्याज्य है इस प्रकार आत्महित के लिए सम्यक् सत्य विचार कर एवं संसार शरीर भोगों से और उन पदार्थों से विरक्त होकर जो जिनलिंग को धारण कर तपश्चरण, ध्यान आदि करता है वह मोक्ष के सुख का अधिकारी बनता है, सत् असत् योग्य अयोग्य, हित अहित, ग्राह्य वस्तु के विचार रहित केवल मात्र बाह्य सुख का परित्याग करने से मोक्ष सुख की प्राप्ति नहीं होती है।

कर्म निर्मूलन का कारण

कायकलेसुववासं दुद्धरतवयरणकारणं जाण।
तं णियसुद्धसरूवं परिपुण्णं चेदि कम्मणिम्मूलं।।86।।

अर्थः-जो अपनी आत्मा के शुद्ध स्वरूप में अपने आत्मभावों की परिणति में रत रहता है, वह दुष्कर तप और विविध प्रकार के आसनादि तथा उपवासादि करता है वही कर्मों का नाश कर सकता है।

परन्तु जिन भव्य पुरुषों ने सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान के साथ जिनलिंग को धारण किया है और व्रत तपश्चरण के माध्यम से चारित्र का पालन कर आत्मा का ध्यान किया है, उनके ही कर्मों का नाश होता है और मोक्षाधिपति बनते हैं।

मात्र बाह्य लिंग कर्म क्षय हेतु नहीं

कम्मु ण खवेइ जो हु परब्रह्म ण जाणे सम्मउम्मुक्को।
अत्थु ण तत्थु ण जीवो लिंगं घेत्तूण किं करई।।87।।

अर्थः-जो जीव परब्रह्म को परमात्मा को नहीं जानता है, सम्यग्दर्शन से रहित है, वह तो ना गृहस्थ धर्म में है, ना साधु मार्ग में साधु अवस्था में है। केवल नग्नत्व लिंग को धारण कर क्या करेगा, क्या पायेगा? कर्मों का नाश तो सम्यक्त्व पूर्वक जिनलिंग को धारण करने से होता है।

आत्मज्ञान बिना बाह्य लिंग क्या कर सकता है?

अप्पाणं पिण पिच्छइ ण मुणइ णवि सद्दहइ ण भावेइ।
बहुदुक्खभारमूलं लिंगं घित्तूण किं करई।।88।।

अर्थः- जो अपनी आत्मा को देख नहीं पाता, नहीं जानता, आत्मा का श्रद्धान नहीं करता, अपने आत्मगुणों के प्रति भावों को नहीं लगाता आत्म स्वरूप की रूचि नहीं है, आत्मा आत्मपरिणत नहीं होता है वह साधु-बहुत ही दुःखी अवस्था को प्राप्त होता है।

आत्मा की भावना बिना दुःख ही है

जाव ण जाणइ अप्पा अप्पाणं दुक्खमप्पणो तावं।

तेण अणंत सुहाणं अप्पाणं भावए जोई।।89।।

अर्थः- जब तक अपनी आत्म का सत्यस्वरूप नहीं जाना जाता, तब तक आत्मा को कर्मजन्य दुःख का भार है।

जब आत्मा अपने शुद्ध स्वरूप टंकोत्कीर्ण ज्ञायक स्वभाव आत्मा को जान लेता है, शुद्ध भावों को प्राप्त होता है, उसी समय अनंत सुख की प्राप्ति स्वयमेव होती जाती है। इसलिए मुनिगण शुद्धस्वरूप अपने आत्मस्वभाव का ही ध्यान करते हैं। अपने शुद्ध आत्म स्वरूप में तन्मय रहते हैं और मोक्ष सुख को प्राप्त कर लेते हैं।

सम्यक्त्व से निर्वाण प्राप्ति

णियतच्चुबलद्धि विणा सम्मत्तुबलद्धि णत्थि णियमेण।
सम्मत्तुबलद्धि विणा णिव्वाणं णत्थि जिणुदिट्ठं।।90।।

अर्थः- अपने आत्मस्वरूप की प्राप्ति के बिना सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं है और सम्यक्त्व के बिना मोक्ष की प्राप्ति सर्वथा नहीं है। यह श्री जिनेन्द्र भगवान् का सुदृढ़ निश्चित सिद्धान्त है।

परमात्मा ध्यान का कारण-स्वाध्याय

पवयणसारब्भासं परमप्पज्झाण कारणं जाण।
कम्मक्खवणणिमित्तिं कम्मक्खवणेहि मोक्खसोक्खं हि।।91।।

अर्थः- भगवान् जिनेन्द्र देव प्रणीत प्रवचनसार का अभ्यास, परमात्मा का ध्यान के सिद्धि के लिए कारण बनता है। आत्मा के शुद्ध स्वरूप की प्राप्ति का उपाय आत्मा का ध्यान ही है और ध्यान के लिए आगम शास्त्र का अभ्यास भी परब्रह्म परमात्मा के ध्यान का कारण बनता है। विशुद्ध आत्मा के स्वरूप का ध्यान ही कर्मों का नाश करने में समर्थ है और इसी से मोक्ष सुख की प्राप्ति होती है।

किं जंपिएण बहुणा, अत्थो धम्मो य काममोक्खो य।
अण्णेवि य वावारा, भावम्मि परिट्ठिया सव्वे।।164।। भावपा.

बहुत कहने से क्या? धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष पुरुषार्थ तथा अन्य जितने भी व्यापार हैं वे सब भावों में ही अवस्थित हैं--भावों के ही आधीन हैं।

णाणमयं अप्पाणं उवलद्ध जेण झडियकम्मेण।

चइऊण य परदव्वं, णमो णमो तस्स देवस्स।।1।। मोक्षपा.

जिन्होंने कर्मों का क्षय करके तथा परद्रव्य का त्याग कर ज्ञानमय आत्मा को प्राप्त कर लिया है उन श्री सिद्धपरमेष्ठीरूप देव के लिए बार-बार नमस्कार हो।

णमिऊण य तं देवं, अणंतवरणादंसणं सुद्धं।
वोच्छं परमप्पाणं, परमपयं परमजोईणं।।2।।

अनंत उत्कृष्ट ज्ञान तथा अनंत उत्कृष्ट दर्शन से युक्त, निर्मलस्वरूप उन सर्वज्ञ वीतरागदेव को नमस्कार कर मैं परम योगियों के लिए परमपदरूप परमात्मा का कथन करूँगा।

जं जाणिऊण जोइ, जोअत्थो जोइऊण अणवरयं।
अव्वाबाहमणंतं, अणोवमं हवइ णिव्वाणं।।3।।

जिस आत्मतत्त्व को जानकर तथा जिसका निरंतर साक्षात् कर योगी ध्यानस्थ मुनि बाधारहित, अनंत, अनुपम निर्वाण को प्राप्त होता है।

तिपयारो सो अप्पा, परभिंतरबाहिरो दु हेऊणं।
तत्थ परो झाइज्जइ, अंतोवायेण चयइ बहिरप्पा।।4।।

वह आत्मा परमात्मा, अभ्यंतरात्मा और बहिरात्मा के भेद से तीन प्रकार का है। इनमें से बहिरात्मा को छोड़कर अंतरात्मा के उपाय से परमात्मा का ध्यान किया जाता है। हे योगिन्! तुम बहिरात्मा का त्याग करो।

अक्खाणि बाहिरप्पा, अंतरअप्पा हु अप्पसंकप्पो।
कम्मकलंकविमुक्को, परमप्पा भण्णए देवो।।5।। अष्टपा.

इंद्रियाँ बहिरात्मा है, आत्मा का संकल्प अंतरात्मा है और कर्मरूपी कलंक से रहित आत्मा परमात्मा कहलाता है। परमात्मा की देवसंज्ञा है।

मलरहिओ कलचत्तो, अणिंदिओ केवलो विसुद्धप्पा।
परमेट्ठी परमजिणो, सिवंकरो सासओ सिद्धो।।6।।

वह परमात्मा मलरहित है, कला अर्थात् शरीर से रहित है, अतींद्रिय है, केवल है, विशुद्धात्मा है, परमेष्ठी है, परमजिन है, शिवशंकर है, शाश्वत है और सिद्ध है।

आरुहवि अंतरप्पा, बहिरप्पा छंडिऊण तिविहेण।
झाइज्जइ परमप्पा, उवइट्ठं जिणवरिंदेहिं।।7।।

मन वचन काय इन तीन योगों से बहिरात्मा को छोड़कर तथा अंतरात्मा पर आरूढ़ होकर अर्थात् भेदज्ञान के द्वारा अंतरात्मा का अवलंबन लेकर परमात्मा ध्यान किया जाता है, ऐसा जिनेंद्रदेव ने कहा है।

बहिरत्थे फुरियमणो, इंदियदारेण णियसरूवचुओ।

णियदेहं अप्पाणं, अज्झवसदि मूढदिट्ठीओ।।8।।

बाह्य पदार्थ में जिसका मन स्फुरित हो रहा है तथा इंद्रियरूप द्वार के द्वारा जो निजस्वरूप से च्युत हो गया है ऐसा मूढ़दृष्टि--बहिरात्मा पुरुष अपने शरीर को ही आत्मा समझता है।

णियदेहसरिस्सं पिच्छिऊण परविग्गहं पयत्तेण।

अच्चेयणं पि गहियं, झाइज्जइ परमभागेण।।9।।

ज्ञानी मनुष्य निज शरीर के समान पर शरीर को देखकर भेदज्ञान पूर्वक विचार करता है कि देखो, इसने अचेतन शरीरको भी प्रयत्नपूर्वक ग्रहण कर रक्खा है।

सपरज्झवसाएणं, देहेसु य अविदिदत्थमप्पाणं।

सुयदाराईविसए, मणुयाणं वड्ढए मोहो।।10।।

स्वपराध्यवसायके कारण अर्थात् परको आत्मा समझनेके कारण यह जीव अज्ञानवश शरीरादिको आत्मा जानता है। इस विपरीत अभिनिवेशके कारण ही मनुष्यों का पुत्र तथा स्त्री आदि विषयों में मोह बढ़ता है।

मिच्छाणाणेसु रओ, मिच्छाभावेण भाविओ संतो।

मोहोदएण पुणरवि, अंगं सं मण्णए मणुओ।।11।।

यह मनुष्य मोह के उदय से मिथ्याज्ञान में रत है तथा मिथ्याभावसे वासित होता हुआ फिर भी शरीरको आत्मा मान रहा है।

जो देहे णिरवेक्खो, णिद्दंदो णिम्ममो णिरारंभो।

आदसहावे सुरओ, जोई सो लहइ णिव्वाणं।।12।।

जो शरीर में निरपेक्ष है, द्वंद्वरहित है, ममतारहित है, आरंभरहित है और आत्मस्वभावमें सुरत है-संलग्न है वह योगी निर्वाणको प्राप्त होता है।

परदव्वरओ बज्झइ, विरओ मुच्चेइ विविहकम्मेहिं।

एसो जिणउवएसो, समासओ बंधमोक्खस्स।।13।।

परद्रव्योंमें रत पुरुष नाना कर्मोंसे बंधको प्राप्त होता है और परद्रव्यसे विरत पुरुष नाना कर्मोंसे मुक्त होता है। बंध और मोक्षके विषयमें जिनेंन्द्र भगवान्‌का यह संक्षेपसे उपदेश है।

सद्दव्वरओ सवणो, सम्माइट्ठी हवेइ णियमेण।

सम्मत्तपरिणदो उण, खवेइ दुट्ठट्ठकम्माणि।।14।।

स्वद्रव्यमें रत साधु नियमसे सम्यग्दृष्टि होता है और सम्यक्त्वरूप परिणत हुआ साधु दुष्ट आठ कर्मों को नष्ट करता है।

जो पुण परदव्वरओ, मिच्छाइट्ठी हवेइ णो साहू।

मिच्छत्तपरिणदो उण, बज्झदि दुट्ठट्ठकम्मेहिं।।15।।

जो साधु परद्रव्यमें रत हैं वह मिथ्यादृष्टि होता है और मिथ्यात्वरूप परिणत हुआ साधु दुष्ट आठ कर्मों से बँधता है।

परदव्वादो दुग्गई, सद्दव्वादो हु सुग्गई हवइ।

इय णाऊण सदव्वे, कुणह रई विरइ इयरम्मि।।16।।

परद्रव्यसे दुर्गति और स्वद्रव्यसे निश्चित ही सुगति होती है ऐसा जानकर स्वद्रव्य में रति करो और परद्रव्य में विरति करो।

आदसहावादण्णं, सच्चित्ताचित्तमिस्सियं हवदि।

तं परदव्वं भणियं, अवितत्थं सव्वदरसीहिं।।17।।

आत्मभाव से अतिरिक्त जो सचित्त-अचित्त अथवा मिश्र द्रव्य है वह सब परद्रव्य है, ऐसा यथार्थरूपसे पदार्थको जाननेवाले सर्वज्ञ देव ने कहा है।

दुट्ठट्ठकम्मरहियं, अणोवमं णाणविग्गहं णिच्चं।

सुद्धं जिणेहि कहियं, अप्पाणं हवदि सद्दव्वं।।18।।

आठ दुष्ट कर्मोंसे रहित, अनुपम, ज्ञानशरीरी, नित्य और शुद्ध जो आत्मद्रव्य है उसे जिनेंद्र भगवान् ने स्वद्रव्य कहा है।

जे झायदि सद्दव्वं, पददव्वपरम्मुहा दु सुचरित्ता।

ते जिणवराण मग्गं, अणुलग्गा लहदि णिव्वाणं।।19।।

जो स्वद्रव्य का ध्यान करते हैं, परद्रव्यसे पराङ्‌मुखरहते हैं और सम्यक्चारित्र का निरतिचार पालन करते हुए जिनेंद्रदेव के मार्गमें लगे रहते हैं वे निर्वाणको प्राप्त

होते हैं।

जिणवरमएण जोई, झाणे झाएइ सुद्धमप्पाणं।

जेण लहइ णिव्वाणं, ण लहइ किं तेण सुरलोयं।।20।।

जो योगी ध्यान में जिनेंद्रदेव के मतानुसार शुद्ध आत्माका ध्यान करता है वह स्वर्गलोकको प्राप्त होता है सो ठीक है, क्योंकि जिस ध्यानसे निर्वाण प्राप्त हो सकता है उससे क्या स्वर्गलोक प्राप्त नहीं हो सकता?

उवओए उवओगो, कोहादिसु णत्थि कोवि उवओगो।

कोहे कोहो चेव हि, उवओगे णत्थि खलु कोहो।।181।।(समयसार)

अट्ठवियप्पे कम्मे, णोकम्मे चावि णत्थि उवओगो।

उवओगम्हि य कम्मं, णोकम्मं चावि णो अत्थि।।182।।

एयं तु अविवरीदं, णाणं जइआ उ होदि जीवस्स।

तइया ण किंचि कुव्वदि, भाव उवओगसुद्धप्पा।।183।।

उपयोग में उपयोग है, क्रोधादिमें कोई उपयोग नहीं है। क्रोधमें क्रोध ही है, निश्चय से उपयोगमें क्रोध नहीं है। आठ प्रकारके कर्ममें और नोकर्ममें उपयोग नहीं है तथा उपयोगमें कर्म और नोकर्म नहीं है। जिस समय जीवके यह अविपरीत ज्ञान होता है उस समय वह उपयोगसे शुद्धात्मा होता हुआ उपयोगके बिना अन्य कुछ भी भाव नहीं करता है।

जह कणयमग्गितवियं, पि कणयहावं ण तं परिच्चियइ।

तह कम्मोदयतविदो, ण जहादि णाणी उ णाणित्तं।।184।।

एवं जाणइ णाणी, अप्पाणी मुणादि रायमेवादं।

अण्णाणतमोच्छण्णो, आदसहावं अयाणंतो।।185।।

जिस प्रकार सुवर्ण अग्निसे तपाये जानेपर भी सुवर्णपनेको नहीं छोड़ता है उसी प्रकार कर्मोदयसे तप्त हुआ ज्ञानी ज्ञानीपनेको नहीं छोड़ता है। ज्ञानी इस प्रकार जानता है परंतु अज्ञानी चूँकि अज्ञानरूपी अंधकारसें आच्छादित है अतः आत्मस्वभावको नहीं जानता हुआ रागको ही आत्मा मानता है।

सुद्धं तु वियाणंतो, सुद्धं चेवप्पयं लहदि जीवो।

जाणंतो दु असुद्धं, असुद्धमेवप्पयं लहइ।।186।।

शुद्ध आत्माको जानता हुआ जीव शुद्ध ही आत्माको पाता है और अशुद्ध आत्माको जानता हुआ जीव अशुद्ध ही आत्माको पाता है।

अप्पाणमप्पणा रुंधिऊण दो पुण्णपावजोएसु।

दंसणणाणम्हि ठिदो, इच्छाविरओ य अण्णम्हि।।187।।

जो सव्वसंगमुक्को, झायदि अप्पाणमप्पणो अप्पा।

णवि कम्मं णोकम्मं णोकम्मं, चेदा चिंतेदि एयत्तं।।188।।

अप्पाणं झायंतो, दंसणणाणमओ अणण्णमओ।

लहइ अचिरेण अप्पाणमेव सो कम्मपविमुक्कं।।189।।

जो जीव अपने आत्माको अपने आपके द्वारा शुभअशुभरूप दोनों योगोंसे रोककर दर्शनज्ञानमें स्थित हुआ अन्य पदार्थोंमें इच्छारहित है तथा समस्त परिग्रहसे रहित होता हुआ आत्माके द्वारा आत्माका ही ध्यान करता है। कर्म और नोकर्मका ध्यान नहीं करता, किंतु चेतनारूप होकर एकत्व भावका चिंतन करता है वह आत्मा का ध्यान करनेवाला, दर्शनज्ञानमय तथा अन्यवस्तुरूप नहीं होनेवाला जीव शीघ्र ही कर्मों रहित आत्माको ही प्राप्त करता है।

अलौकिक गणित से आत्मा का वर्णन

मेरी आत्म-साधना का लक्ष्य/फल (सर्वज्ञत्व)

(जो स्वयं (मैं) को पूर्ण जानता वह सम्पूर्ण विश्व को जानता!)

(चाल : 1.भातुकली(मराठी)...2. आत्मशक्ति....3.सायोनारा....)

-आचार्य कनकनन्दी

जो एक जानता...वह सब जानता...ऐसा सर्वज्ञ देव ने कहा...
जो निज आत्मा (मैं) को पूर्ण जानता...वह सम्पूर्ण विश्व को जानता...
निज आत्मा भी है अनादि अनन्त...तथाहि अनन्त गुण पर्याय मय...
निज आत्मा को भी जानने हेतु...अतः बनना होगा सर्वज्ञमय...(1)...
अनादिकाल से अनन्तभवों में...जन्म-मरण व दुःख सहा...
इसे जानने हेतु भी स्वयं को...अनन्त ज्ञानी बनना होगा...

निज आत्मा में है असंख्यात प्रदेश...हर प्रदेश में अनन्त कर्माणु...
कर्म की प्रकृति-स्थिति-अनुभाग...इसे जानने हेतु सर्वज्ञता चाहिए...(2)
अरिहन्त व सिद्ध बनने पर...अनन्तानन्त गुण होते प्रगट...
इसे जानने हेतु अनन्तानन्त ज्ञान...होना भी है आवश्यक...
हर गुणों में भी होते अनन्त...अविभागी प्रतिच्छेद प्रमाण...
यह प्रमाण लोकालोक से भी अधिक...अतः केवलज्ञान महान्...(3)...
इनकी भी होती अनन्तानन्त पर्यायें...प्रति समय शुद्ध रूप में...
अनन्त भावीकाल में भी होगी पर्यायें...जो अक्षय अनन्त हैं...
अतएव स्वयं को जानने हेतु ही...अक्षय अनन्त ज्ञान चाहिए...
इस ज्ञान से ही सम्पूर्ण विश्व...पूर्ण रूप से होता है ज्ञात...(4)...
इसीलिए तो आध्यात्मिक सन्त...आत्मज्ञान हेतु करते ध्यान...
आत्मज्ञान जब हो जाता पूर्ण...तब वे बन जाते सर्वज्ञ...
इस हेतु ही चक्रवर्ती तक...साधु बनकर करते (आत्म) ध्यान...
सर्वार्थसिद्धि के देव तैंतीस...सागर प्रमाण करते आत्म चिन्तन...(5)...
सर्वज्ञ द्वारा कथित सत्य जो...आंशिक रूप में अभी उपलब्ध...
ऐसा ज्ञान अभी तक विज्ञान द्वारा...भी नहीं हुआ शोध-बोध...
अणु से लेकर विश्व तक व...आत्मा से ले परमात्मा तक...
मूर्तिक-अमूर्तिक, चेतन-अचेतन...शुद्ध-अशुद्ध का नहीं ज्ञान...(6)...
अन्त्योदय से सर्वोदय तक...जो विषय ग्रन्थों में वर्णित...
सूक्ष्मजीव से सिद्धजीव तक...अन्यत्र नहीं है वर्णित...
इत्यादि अनेक कारणों से...सिद्ध होता सर्वज्ञ होते हैं...
सर्वज्ञ द्वारा कथित सत्य को...सूरी 'कनक' भी मानते हैं...(7)...
सर्वज्ञ अतिरिक्त कोई मुझे...पूर्णतः जान नहीं सकता...
भौतिक वैज्ञानिक-दार्शनिक-कवि...न्यायविद् भी न जान सकते...
इस हेतु ही मैं स्वयं को जानना...मानना व पाना चाहता हूँ...
स्वयं द्वारा स्वयं में ही मैं...सर्वज्ञ बनना चाहता हूँ...(8)...

सागवाड़ा, दि-22/4/2018, रात्रि-9.05

संदर्भ-

इहणकरणेण जदा सुणिण्णओ होदि सो आवाओ दु।
कालंतरेवि णिण्णिदवत्थुसुमरणस्स कारणं तुरियं।।(309)

विशेष की आकांक्षा रूप ईहा ज्ञान के पश्चात् जब ईहित विशेष अर्थ का सुनिर्णय हो जाता है। जैसे ऊपर-नीचे होने तथा पंखों के हिलाने आदि चिह्नों से यह बलाका ही है इस प्रकार निश्चय के होने को अवाय कहते हैं। 'तु' शब्द पहले आकांक्षा किये गये विशेष वस्तु के निर्णय को ही 'अवाय' कहते हैं यह अवधारणा के लिए है। इससे यह ग्रहण करना चाहिये कि वस्तु तो कुछ और है और निर्णय अन्य वस्तु का किया तो वह अवाय नहीं है। वही अवाय बार-बार प्रवृत्ति रूप अभ्यास से उत्पन्न संस्कार रूप होकर कालान्तर में भी निर्णीत वस्तु के स्मरण में कारण होता है तो धारणा नामक चतुर्थ ज्ञान होता है।

जिस प्रकार मतिज्ञान क्रमपूर्वक निश्चित विषय एवं निश्चित पर्यायों को जानता है उस प्रकार श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान एवं मनःपर्ययज्ञान अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार कुछ निश्चित पर्यायों को ही जानते हैं। इसीलिए ये चारों ज्ञान आध्यात्मिक दृष्टि से परोक्ष ज्ञान ही हैं। परन्तु आगम में मतिज्ञान, श्रुतज्ञान को परोक्ष बताया गया एवं अवधिज्ञान, मनः पर्यय ज्ञान को देश प्रत्यक्ष बताया गया है। जैन न्याय ग्रन्थ में चक्षु आदि से देखने को प्रत्यक्ष कहा गया है। वस्तुतः यह लोक व्यवहार चलाने के लिए बताया गया है। क्योंकि उपरोक्त चारों ज्ञान ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम के कारण प्रगट होते हैं और किसी न किसी रूप में बाह्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की सीमा को लिये हुए जानते है। परन्तु इस गाथा में कुन्दकुन्ददेव ने मुख्यतः इन्द्रिय परोक्ष ज्ञान को स्वीकार किया है। उपरोक्त विषय को जानकर ममुक्षु को उस केवलज्ञान को प्राप्त करने के लिये बद्ध परिकर होना चाहिए और अन्य ज्ञान को प्राप्त कर उस ज्ञान को सब कुछ मानकर अहंकारी या पुरुषार्थ हीन बनकर नहीं रहना चाहिए यह इसका आध्यात्मिक पक्ष है।

अतीन्द्रिय ज्ञान का विषय

अपदेसं सपदेसं मुत्तममुत्तं च पज्जयमजादं।
पलयं गयं च जाणदि तं णाणमदिंदियं भणियं।।(41)

That is called supersensuous knowledge which knows any substance, with or without space-points, with or without form and those modifications which have not come into existence and those which are destroyed.

आगे कहते है कि अतीन्द्रिय रूप केवलज्ञान ही भूत-भविष्य को व सूक्ष्म आदि पदार्थों को जानता है।

जो ज्ञान (अपदेस) बहु प्रदेश-रहित कालाणु व परमाणु आदि को (सपदेसं) बहु-प्रदेशी शुद्ध जीव को आदि ले पाँच अस्तिकायों के स्वरूप को (मुत्त) मूर्तिक पुद्गल द्रव्य को (च अमुत्तं) और अमूर्तिक शुद्ध जीव आदि पाँच द्रव्यों को (अजाद) अभी नहीं उत्पन्न हुई होने वाली (च पलयं गयं) और छूट जाने वाली भूतकाल की (पज्जयं) द्रव्यों की पर्यायों को इस सब ज्ञेय को (अदिंदियं) अतीन्द्रिय (भणियं) कहा गया है।

इस ही से सर्वज्ञ होता है। इस कारण से पूर्व गाथा से कहे हुए इन्द्रियज्ञान तथा मानस ज्ञान को छोड़कर जो कोई विकल्प रहित समाधिमयी स्वसंवेदन ज्ञान में सब विभाव परिणामों को त्याग करके प्रीति व लयता करते हैं वे ही परम आनन्द है एक लक्षण जिसका ऐसे सुख स्वभावमयी सर्वज्ञपद को प्राप्त करते हैं, यह अभिप्राय है।

इस प्रकार अतीत व अनागत पर्यायें वर्तमान ज्ञान में प्रत्यक्ष नहीं होती है। ऐसे बौद्धों के मत को निराकरण करते हुए तीन गाथाएँ कहीं, उसके पीछे इन्द्रियज्ञान से सर्वज्ञ नहीं होता है किन्तु अतीन्द्रिय ज्ञान से होता है ऐसा कहकर नैयायिक मत के अनुसार चलने वाले शिष्य को समझाने के लिये गाथा दो कही। ऐसे समुदाय के पाँचवे स्थल में पाँच गाथाएँ पूर्ण हुई।

इन्द्रियज्ञान, उपदेश-अन्तःकरण और इन्द्रिय आदि को विरूप कारणपने से (बहिरंगपने) और उपलब्धि (क्षयोपशम) संस्कार आदि को अन्तरंग स्वरूप कारणपने से ग्रहण करके प्रवर्तता है। (इस प्रकार) प्रवर्तता हुआ (वह ज्ञान) (1) सप्रदेशी को ही जानता है क्योंकि वह स्थूल को जानने वाला है, अप्रदेशी को नहीं जानता, क्योंकि वह सूक्ष्म को जानने वाला नहीं है। (2) मूर्तिक को ही जानता है क्योंकि वैसे उसका (मूर्तिक) विषय के साथ सम्बन्ध का सद्भाव है, अमूर्तिक को नहीं जानता, क्योंकि अमूर्तिक विषय के साथ सम्बन्ध का अभाव है, (3) वर्तमान को ही जानता है,

क्योंकि वहाँ ही विषय-विषयी के सन्निपात का सद्भाव है। भूत में प्रवर्तित हो चुकने वाले को और भविष्य में प्रवृत्त होने वाला को नहीं जानता, (क्योंकि भूत भविष्य के साथ विषय-विषयी के सन्निकर्ष का अभाव है)।

जो अनावरण अतीन्द्रियज्ञान है उसके, जैसे प्रज्ज्वलित अग्नि के अनेक प्रकारता को धारण करने वाला दाह्य (ईंधन) दाह्यता का उल्लंघन न करने के कारण दाह्य ही है, वैसे (ही) अप्रदेशी, सप्रदेशी, मूर्तिक, अमूर्तिक तथा अनुत्पन्न एवं व्यतीत पर्याय समूह, अपनी ज्ञेयता का उल्लंघन न करने से ज्ञेय ही हैं।

समीक्षा-कुन्दकुन्ददेव ने 40 नम्बर गाथा में परोक्षज्ञान स्वरूप जो इन्द्रिय ज्ञान का वर्णन किया है उससे विपरीत 41 नम्बर गाथा में प्रत्यक्ष ज्ञान स्वरूप अतीन्द्रिय ज्ञान का वर्णन किया है। इन्द्रिय ज्ञान सम्पूर्ण पदार्थों को और उनकी सम्पूर्ण पर्यायों नहीं जानता है तो उससे विपरीत यह केवलज्ञान का धारी होते हुए भी केवलज्ञान को बिना प्राप्त किये दीनहीन होकर संसार में परिभ्रमण कर रहा है। ऐसे जीवों के लिए बार-बार प्रबोधन दे रहे हैं कि हे जीव! तुम स्वयं सर्वज्ञ, सर्वदर्शी अखण्ड अक्षय, अनंत ज्ञानानंद जगत् के स्वामी होकर भी दीन हीन होकर सुख एवं ज्ञान के लिए क्यों संसार में यत्र-तत्र भ्रमण कर रहे हो। स्वयं को देखो, स्वयं को पहिचानो जिससे तुम स्वयं के वैभव को प्राप्त कर सकते हो। कहा भी है-

तद्ब्रूयात्तत्परान्पृच्छेत्तदिच्छेत्तत्परो भवेत्।
येनाविद्यामयं रूपं त्यक्त्व विद्यामयं व्रजेत्।।(53) स.तं.

आत्म श्रद्धालु को (तत्) वह आध्यात्मिक चर्चा (ब्रूयात्) करनी चाहिए (तत्) वह आत्मा-सम्बन्धी ही बातें (परान्) अन्य ज्ञानियों से (पृच्छेत्) पूछनी चाहिये (इच्छेत्) उसी आध्यात्मिक विषय की चाह रखनी चाहिए (तत्परः भवेत्) उसी आध्यात्मिक विषय में सदा-तत्पर-तैयार या उत्सुक रहना चाहिए, (येन) जिसमें (अविद्यामयं रूपं) अपना आत्मा का अज्ञान भाव (त्यक्त्वा) छोड़कर (विद्यामय) ज्ञानभाव (व्रजेत्) प्राप्त हो।

क्षायिक ज्ञान ही केवलज्ञान

जं तक्कालियमिदरं जाणदि जुगवं समंतदो सव्वं।
अत्थं विचित्तविसमं तं णाणं खाइगं भणियं।। (47)

That knowledge is called ksayika (i.e. produced after the destruction of karmas) which knows completely and simaltaneously the whole range od veriegated and unequal obejctivity of the present and otherwise.

आगे कहते हैं कि केवलज्ञान ही सर्वज्ञ का स्वरूप है। आगे कहेंगे कि सर्वज्ञ को जानते हुए एक का ज्ञान होता है तथा एक को जानते हुए सर्व का ज्ञान होता है। इस तरह पाँच गाथाओं तक व्याख्यान करते हैं। उनमें से प्रथम ही निरूपण करते है क्योंकि यहाँ ज्ञान प्रपंच के व्याख्यान की मुख्यता है, इसलिये उसी ही को आगे लेकर फिर कहते हैं कि केवलज्ञान सर्वज्ञ रूप है।

(जं) जो ज्ञान (समंतदो) सर्व प्रकार से आत्मा के प्रदेशों से (विचित्तं विसमं) नाना भेदरूप जाति के मूर्त-अमूर्त, चेतन-अचेतन, आदि (सव्वं अत्थं) सर्व पदार्थों को (तक्कालिगं) वर्तमान काल सम्बन्धी तथा (इतरं) भूत, भविष्यत् काल सम्बन्धी पर्यायों सहित (जुगवं) एक समय में व एक साथ (जाणदि) जानता है। (तं णाणं) उस ज्ञान को (खाइयं) क्षायिक (भणियं) कहा है। अभेद नय से वही सर्वज्ञ का स्वरूप है इसलिये वही ग्रहण करने योग्य अनन्त सुख आदि अनन्त गुणों का आधारभूत सब तरह से प्राप्त करने योग्य है, इस रूप से भावना करनी चाहिए। यह तात्पर्य है।

(1) वर्तमान काल में वर्तते, (2) भूत-भविष्यत् काल में वर्तते, (3) जिनमें पृथक् रूप से वर्तते स्वलक्षण रूप लक्ष्मी से आलोकित अनेक प्रकारों के कारण वैचित्र्य प्रकट हुआ है, (4) और जिनमें परस्पर विरोध से उत्पन्न होने वाली असमान-जातीयता के कारण वैषम्य प्रगट हुआ है, ऐसे (चार विशेषणवाले) समस्त पदार्थ समूह को, एक समय में ही (युगपत्), सर्वतः (सर्व आत्म प्रदेशों से) क्षायिक ज्ञान वास्तव में जानता है। इसी बात को यूक्तिपूर्वक स्पष्ट समझाते हैः- (1) उस (केवलज्ञान) के वास्तव में क्रम-प्रवृति के हेतुभूत क्षयोपशम अवस्था में रहने वाले ज्ञानावरणीय कर्म-पुद्गलों का अत्यन्त अभाव होने से (वह क्षायिक ज्ञान) तात्कालिक या अतात्कालिक पदार्थ समूह को समकाल में (युगपत्) ही प्रकाशित करता है। (2) सर्वतः (सर्व प्रदेशों से) विशुद्ध (उस क्षायिक ज्ञान) सर्वतः (सर्व आत्म-प्रदेशों से) ही प्रकाशित करता है (4) सर्व प्रकार ज्ञानावरणीय के क्षय से, असर्व प्रकार के

ज्ञानावरणीय के क्षयोपशम के नाश होने से (वह क्षायिक ज्ञान) विचित्र को (अनेक प्रकार के पदार्थों को) भी प्रकाशित करता है। (5) असमान जातीय ज्ञानावरण के क्षय के समान जातीय ज्ञानावरण के क्षयोपशम के नष्ट हो जाने से, (वह क्षायिक ज्ञान) विषम को भी (असमान जाति पदार्थों को भी) प्रकाशित करता है।

सार-अथवा, अतिविस्तार से बस हो जिसका अनिवारित (रूकावट रहित फैलाव है) ऐसे प्रकाश स्वभावी होने से, क्षायिक ज्ञान अवश्य ही सर्वदा (सब कालीन त्रिकालीन), सर्वत्र (सब क्षेत्र के लोके अलोक के) सब पदार्थ को सर्वथा (सम्पूर्ण रूप से) जाने अर्थात् जानता है।

समीक्षा-इस गाथा में कुंदकुंददेव ने यह सिद्ध किया है कि जो ज्ञानावरणीय कर्म के क्षय से उत्पन्न होता है वही केवलज्ञान है और जो ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से उत्पन्न होता है वह केवलज्ञान नहीं हो सकता है। क्योंकि क्षयोपशम में अभी भी कुछ ज्ञान को रोकने वाले कर्म की सत्ता एवं उदय विद्यमान है परन्तु क्षायिक ज्ञान को रोकने वाने कर्म का सर्वथा अभाव है। वीरसेन स्वामी ने धवला में कहा भी है-

संपुण्णं तु समग्गं केवलमवसत्त-सव्व-भाव विदं।
लोगालोग-वितिमिरं केवलणाणं मुणेयव्वं।।(186) पृ. 360 पु.1

जो जीवद्रव्य के शक्तिगत सर्वज्ञान के अविभाग-प्रतिच्छेदों के व्यक्त हो जाने के कारण संपूर्ण है, ज्ञानावरण और वीर्यान्तराय कर्म के सर्वथा नाश हो जाने के कारण जो अप्रतिहत शक्ति है इसलिए समग्र है, जो इन्द्रिय और मन की सहायता से रहित होने के कारण केवल है, जो प्रतिपक्षी चार घातिया कर्मों के नाश हो जाने से अनुक्रम रहित संपूर्ण पदार्थों में प्रवृत्ति करता है इसलिये असपत्न है और जो लोक और अलोक में अज्ञान रूपी अंधकार से रहित होकर प्रकाशमान हो रहा है उसे केवलज्ञान जानना चाहिए।

राजवार्तिक में अकलंक देव स्वामी ने केवलज्ञान के बारे में कहा है-

सर्वग्रहण निरवशेषप्रतिपत्त्यर्थं।(9)

निरवशेष का ज्ञान कराने के लिये सर्वशब्द को ग्रहण किया है। लोक-अलोक में त्रिकालविषयक जितने भी अनंतानंत द्रव्य और पर्यायें है उन सब में केवलज्ञान के

विषय का निबन्ध है अर्थात् उन सबको केवलज्ञान जानता है। जितने भी अनंतानंत लोक-अलोक द्रव्य हैं इससे भी अनंतगुणे लोक और अलोक और भी होते तो भी केवलज्ञान जान सकता है। क्योंकि केवलज्ञान का माहात्म्य अपरिमित है, ऐसा जानता चाहिए।

जो सब को नहीं जानता है वह एक को भी नहीं जानता

जो ण विजाणदि जुगवं अत्थे तिक्कालिगे तिहुवणत्थे।

णादुं तस्स ण सक्कं सपज्जयं दव्वमेगं वा।।(48)

He, who does not know simultaneousely the objects of the three tenses and in the threeworlds, cannot know even a single substance with its (infinite) Modifications.

आगे आचार्य विचारते हैं कि जो ज्ञान सबको नहीं जानता वह ज्ञान एक पदार्थ को भी नहीं जान सकता है। (जो) जो कोई आत्मा (जुगवं) एक समय में (तिक्कालिगे) तीन काल की पर्यायों में परिणमन करने वाले (तिहुवणत्थे) तीन लोक में रहने वाले (अत्थे) पदार्थों को (ण विजाणादि) नहीं जानता है (तस्स) उस आत्मा का ज्ञान (सपज्जयं) अनन्त पर्याय सहित (एकं दव्वं) एक द्रव्य को (वां) भी (णादुं) जानने के लिए (ण सक्कं) नहीं समर्थ होता है।

भाव यह है कि आकाश द्रव्य एक है, धर्म द्रव्य एक है, तथा अधर्म द्रव्य एक है और लोकाकाश के प्रदेशों के प्रमाण असंख्यात काल द्रव्य है, उससे अनन्तगुणे जीवद्रव्य है, उससे भी अनन्तगुणे पुद्गल द्रव्य हैं, क्योंकि एक-एक जीवद्रव्य में अनन्त कर्म वर्गणाओं का सम्बन्ध है तैसे ही अनन्त नोकर्मवर्गणाओं का सम्बन्ध है। तैसे ही इन सब द्रव्यों में प्रत्येक द्रव्य की अनन्त पर्यायें होती हैं क्योंकि काल के समय पुद्गल द्रव्य से भी अनन्तानन्त गुणे हैं। यह सब ज्ञेय-जानने योग्य हैं और इनमें एक कोई भी विशेष जीवद्रव्य ज्ञाता जानने वाला है। ऐसा ही वस्तु का स्वभाव है। यहाँ जैसे अग्नि सब जलाने योग्य ईंधन को जलाती हुई सब जलने योग्य कारण के होते हुए सब ईंधन पर्याय में परिणमन करते हुए सर्वमयी एक अग्निस्वरूप हो जाती है अर्थात् वह अग्नि उष्णता में परिणत तृण व पत्तों आदि के आकार अपने स्वभाव को परिणमाती है। तैसे यह आत्मा सर्व ज्ञेयों को जानता हुआ सर्व ज्ञेयों रूप कारण के होते

हुए सर्व ज्ञेयाकार की पर्याय में परिणमन करते हुए सर्वमयी एक अखंडज्ञान रूप अपने ही आत्मा को परिणमाती अर्थात् सबको जानता और जैसे वही अग्नि पूर्व में कहे हुए लक्षण रूप सर्व को जानकर एक अखंड ज्ञानाकार रूप अपने ही आत्मा को नहीं परिणमाता है अर्थात् सर्व का ज्ञाता नहीं होता। दूसरी भी एक उदाहरण देते है। जैसे कोई अन्ध पुरुष सूर्य से प्रकाशने योग्य पदार्थों को नहीं देखता, दर्पण में झलकती हुई परछाई को न देखते हुए दर्पण को भी नहीं देखता, अपनी ही दृष्टि से प्रकाशने योग्य पदार्थों को नहीं जानता हुआ सकल अखंड एक केवलज्ञान रूप अपने आत्मा को नहीं जानता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि जो सबको नहीं जानता है वह आत्मा को भी नहीं जानता है।

समीक्षा-सामान्यतः वस्तु स्वरूप को जानने वाली प्रणाली एवं प्रतिपादन की प्रणाली विधिपरक (अस्तिपरक) एवं निषेधपरक (नास्तिकारक) होती है। क्योंकि द्रव्य स्वचतुष्टय (स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव) से अस्तिरूप एवं परचतुष्टय (परद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव) से नास्तिरूप है। जिस प्रकार विज्ञान की प्रयोगशाला में कुछ मिले हुए तत्त्व को पृथक्-पृथक् करने के लिए मिले हुए संपूर्ण तत्वों का परिज्ञान चाहिए। उसके बिना तत्त्व विश्लेषण नहीं हो सकता है। इसी प्रकार आत्मस्वरूप को एवं परस्वरूप को जानने के लिये एवं पृथक्करण करने के लिये भी स्वज्ञान के साथ-साथ पर का भी ज्ञान आवश्यक है। इष्टोपदेश में पूज्यपाद स्वामी ने कहा भी है-

जीवोऽन्यः पुद्गलश्चान्य इत्यसौ तत्वसंग्रहः।

यदन्यदुच्यते किंचित् सोऽस्तु तत्स्यैव विस्तरः।।(50) (पृ. 216)

जीव शरीरादिक पुद्गल से भिन्न है और पुद्गल जीव से भिन्न हैं यही तत्त्व का संग्रह है और इसके अतिरिक्त जो कुछ भी कहा जाता है वह सब इस ही का विस्तार है।

इस गाथा में आचार्य श्री ने यह सिद्ध किया है कि जो ज्ञान संपूर्ण त्रिकालवर्ती ज्ञेय को नहीं जानता है वह एक द्रव्य या स्वद्रव्य को भी नहीं जान सकता है। क्योंकि एक द्रव्य में भी अनन्त गुण एवं पर्यायें होती है उन अनंत गुण एवम् पयार्यों को जानने के लिये अनंत ज्ञान चाहिए। क्योंकि 'णाणं णेय पमाणं मुद्दिट्ठ' अर्थात् ज्ञान ज्ञेय के बराबर होता है। यदि ज्ञेय अनंत है तो उसको जानने वाला ज्ञान भी अनंत होना चाहिए

अन्यथा छोटा ज्ञान बड़े ज्ञेय को नहीं जान सकता है। इसलिए यहाँ पर कहा गया कि जो केवलज्ञान अनन्त गुण पर्यायात्मक एक द्रव्य को या स्वआत्म द्रव्य को जान सकता है यह ज्ञान एवं ज्ञेय सम्बन्ध है। जिस प्रकार दस लीटर पानी को एक ही बार में मापने के लिए कम से कम 10 लीटर वाला मपक चाहिये और यदि मापक उससे छोटा है तो जल एक बार में मापा नहीं जा सकता। इसलिए सर्वज्ञ सर्व ज्ञेयों को जानते हैं और एक ज्ञेय को भी जानते हैं।

जो एक को जानता वह सब को जानता

-आचार्य कनकनन्दी

(स्वआत्मा का पूर्णज्ञाता होता है विश्वज्ञाता)

(राग....कसमे वादे....)

तू ही तेरा ज्ञान-ज्ञेय है, अन्य सब तेरा ज्ञेय हैं।
तू ही तेरा द्रव्य व सत्य, गुण-पर्याय व धर्म/तीर्थ है।। स्थाई
तेरे अन्दर अनन्त गुण, पर्याय भी होती अनन्त हैं।
तू ही तुझे जानने हेतु, चाहिए ज्ञान अनन्त हैं।।(1)
अनन्त ज्ञानी बनने हेतु, चाहिये घाति नाश है।
जिससे बनोगे सर्वज्ञ तू, स्व-पर-विश्व ज्ञायक है।।(2)
अतः तू जानो स्वयं को, विश्व बनेगा ज्ञेय है।
इसलिये तूझे करना होगा, राग-द्वेष-मोह-क्षय है।।(3)
स्व-पर-भेद-विज्ञान हेतु, करो है स्व-पर ज्ञान है।
चेतन-अचेत व मिश्र, हान-उपादान/(ग्राह्य-अग्राह्य) उपेक्षा है।।(4)
द्रव्य-तत्त्व व पदार्थों को, जानना होगा सम्यक् है।
सम्यक्-श्रद्धान सहित भी, आचरणीय सम्यक् है।।(5)
इसलिये श्रुतज्ञान का तुझे, करना होगा स्वाध्याय है।
ख्याति-पूजा-लाभ रहित, करना होगा स्व-अध्ययन है।।(6)

भोगा-कांक्षा-निदान-रहित, विनय-विशुद्धि-संयुक्त है।
इसी हेतु ही 'कनकनन्दी' भी, स्वाध्याय में दत्तचित्त है।।(7)

उदयपुर हिरणमगरी सेक्टर-11, दि. 18.10.2014 मध्याह्न-3.03 बजे।

सन्दर्भ :- जो एक को नहीं जानता है सबको नहीं जानता

दव्वं अणंतपज्ज्यमेगमणंताणि दव्वजादाणि।
ण विजाणदि जदि जुगवं किध सो सव्वाणि जाणादि।।(49)

A single substance has Infinite modes and Infinite are the classes of substances, if he does not know (them) simultaneously, how will he be able to know all of them?

आगे निश्चय करते हैं कि जो एक को नहीं जानता वह सबको भी नहीं जानता है।

(जदि) यदि कोई आत्मा (एगं अणंतपज्जयं दव्वं) एक अनन्त पर्यायों के रखने वाले द्रव्य को (ण विजाणदि) निश्चय से नहीं जानता है (सो) वह आत्मा (कधं) किस तरह (सव्वाणि अणंताणि दव्वजादाणि) सर्व अनन्तद्रव्य समूहों को (जुगवं) एक समय में (जाणादि) जान सकता है? अर्थात् किसी तरह भी नहीं जान सकता। विशेष यह है कि आत्मा का लक्षण ज्ञान स्वरूप है। सो अखंड रूप से प्रकाश करने वाला सर्व जीवों में साधारण महासामान्यरूप है। वह महासामान्य ज्ञान अपने ज्ञानमयी अनन्त विशेषों में व्यापक है, वे ज्ञान के विशेष अपने विशेष रूप ज्ञेय पदार्थ जो अनन्त द्रव्य और पर्याय है उनको जानने वाले, ग्रहण करने वाले है जो कोई आपने आत्मा को अखंड रूप से प्रकाश मान महासामान्य के द्वारा जो अनन्तज्ञान के विशेष व्याप्त हैं उनके विषय रूप जो अनन्त द्रव्य और पर्याय हैं उनको कैसे जान सकता है? अर्थात् किसी भी तरह नहीं जान सकता। इससे यह सिद्ध हुआ कि जो अपने आत्मा को नहीं जानता हैं वक सर्व को नहीं जानता। ऐसा कहा भी है-

एको भावः सर्व-भाव-स्वभावः सर्वे भावा एक-भाव-स्वभावाः।
एको भावस्तत्त्वतो येन बुद्धः सर्वे भावास्तत्त्वतस्तेन बुद्धाः।।

भाव यह है कि एक-भाव सर्व भावों का स्वभाव है और सर्व-भाव एक-भाव के स्वभाव हैं। जिसने निश्चय से यथार्थ रूप के एक भाव को जाना उसने यथार्थ

रूप से सर्वभावों को जाना है। यहाँ ज्ञाता और ज्ञेय सम्बन्ध लेना चाहिए, जिसने ज्ञाता को जाना उसने सब ज्ञेयों को जाना ही है।

यहाँ पर शिष्य ने प्रश्न किया कि आपने यहाँ यह व्याख्या की कि आत्मा को जानते हुए सर्व का ज्ञानपना होता है और इसके पहले सूत्र में कहा था कि सब ज्ञान से आत्मा का ज्ञान होता है। यदि ऐसा है तो छद्मस्थों का सर्व का ज्ञान नहीं हैं, तब उनको आत्मा का ज्ञान कैसे होगा? यदि उनको आत्मा का ज्ञान न होगा तो उनके आत्मा की भावना कैसे होगी? यदि आत्मा की भावना न होगी तो उनको केवल ज्ञान की उत्पत्ति नहीं होगी? इस शंका का समाधान करते हैं कि परोक्ष प्रमाण रूप श्रुतज्ञान से सर्व पदार्थ जाने जाते हैं। यह कैसे? सो कहते हैं कि छद्मस्थों को भी लोक और अलोक का ज्ञान व्याप्ति ज्ञानरूप से है। वह व्याप्ति ज्ञान परोक्ष रूप से केवलज्ञान के विषय को ग्रहण करने वाला इसलिए किसी अपेक्षा से आत्मा ही कहा जाता है। अथवा स्वसंवेदनज्ञान से आत्मा को जानते हैं, और फिर उसीकी भावना करते हैं। इसी रागद्वेषादि विकल्पों से रहित स्वसंवेदन ज्ञान की भावना के द्वारा केवलज्ञान पैदा हो जाता है। इसमें कोई दोष नहीं है।

समीक्षा-आचार्य श्री ने 48 नम्बर गाथा में यह सिद्ध किया था कि जो सबको नहीं जानता वह एक को भी नहीं जानता परन्तु इस गाथा में यह सिद्ध किया है कि जो एक को नहीं जानता है वह सबको भी नहीं जानता। इसका भी कारण वही है जो पूर्वोक्त 48 नंबर गाथा में कहा गया है। परमात्म प्रकाश में योगेन्द्र देव ने कहा है कि हे! योगी तुम स्वात्मा को जानो जिससे तुम संपूर्ण विश्व को जान सकते हो क्योंकि अनन्त ज्ञान अनुभाग प्रतिच्छेद से युक्त स्वात्मा में संपूर्ण विश्वव हस्तामलकवत प्रतिभासित होता है। यथा-

जोइय अप्पें जाणिएण जगु जाणियउ हवेइ।
अप्पहँ केरइ भावडइ बिंबिउ जेण वसेइ।।99(परमात्म.)

हे योगी! एक अपने आत्मा के जानने से यह तीन लोक जाना है क्योंकि आत्मा के भावरूप केवल ज्ञान में यह लोक प्रतिबिंबित हुआ, बस रहा है।

वसति भुवि समस्तं सापि संधारितान्यैः
उदरमुवनिविष्टा सा च ते वा परस्य।

तदपि किल परेषां ज्ञानकोणे विलीनं
वहति कथमिहान्यो गर्वमात्माधिकेषु।।219 आत्मानुशासन

जिस पृथ्वी के ऊपर सब ही पदार्थ रहते हैं वह पृथ्वी भी दूसरों के द्वारा घनोदधि, घन और तनु वातवलयों के द्वारा-धारण की गई है। वह पृथ्वी और वे तीनों ही वातवलय भी आकाश के मध्य में प्रविष्ट हैं, और वह आकाश भी केवलियों के ज्ञान के एक कोने में विलीन है। ऐसी अवस्था में यहाँ दूसरा अपने से अधिक गुणवालों के विषय में कैसे गर्व धारण करता है?

क्रम प्रवृत्त ज्ञान केवलज्ञान नहीं-

उप्पज्जदि जदि णाणं कमसो अट्ठे पडुच्च णाणिस्स।
तं णेव हवदि णिच्चं ण खाइगं णेव सव्वगदं।।(50)

If the knower, after coming into contact with the objectivity, produces knowledge step by step; that knowledge cannot be eternal, neither can it be KSAYIKA, nor all-pervasive.

आगे कहते हैं कि जो ज्ञान क्रम से पदार्थों के जानने में प्रवृत्ति करता है उस ज्ञान से कोई सर्वज्ञ नहीं हो सकता है अर्थात् क्रम से जानने वाले को सर्वज्ञ नहीं कह सकते।

(जदि) यदि (णाणिस्स) ज्ञानी आत्मा का (णाणं) ज्ञान (अट्ठे) जानने योग्य पदार्थों को (पडुच्च) आश्रय करके (कमसो) क्रम से (उप्पज्जदि) पैदा होता है। तो (तं) वह ज्ञान (णिच्चं) अविनाशी (णेव) नहीं (हवदि) होता है अर्थात् जिस पदार्थ के निमित्त से ज्ञान उत्पन्न हुआ है उस पदार्थ के नाश होने पर उस पदार्थ का ज्ञान भी नाश होता है इसलिए वह ज्ञान सदा नहीं रहता है, इससे नित्य नहीं है। (णं खाइयं) न क्षायिक है क्योंकि वह परोक्ष ज्ञानवरणीय कर्म के क्षयोपशम के अधीन है। (णेव सव्वगयं) और न वह सर्वगत है, क्योंकि जब वह पराधीन होने से नित्य नहीं है, क्षयोपशम के अधीन होने से क्षायिक नहीं है, इसीलिए ही वह एक ज्ञान एक समय में सर्व द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावों को जानने के लिये असमर्थ है इसीलिये सर्वगत नहीं है। इससे यह सिद्ध हुआ कि जो ज्ञान क्रम से पदार्थों का आश्रय लेकर पैदा होता है उस ज्ञान को रखने से सर्वज्ञ नहीं हो सकता।

समीक्षा-जो ज्ञान कर्माधीन अर्थात् कर्मों के क्षयोपशम से जायमान है वह ज्ञान पूर्ण स्वतंत्र क्षायिक एवं अनंत नहीं होने के कारण कुछ द्रव्यों को, कुछ क्षेत्र को, कुछ निश्चित पर्यायों को ही जानता है और इससे विपरीत जो ज्ञान पूर्ण निरावरण क्षायिक है वह पूर्ण स्वतंत्र, अव्याबाध, अनंत एवं अक्रम प्रभृति वाला होता है। जो केवलज्ञान को भी क्रमप्राभृत मानते है उसका खण्डन कलिकाल सर्वज्ञ वीरसेन स्वामी ने जयधवला में सविस्तार निम्न प्रकार से किया है-

तीर्थंकर की आसादना से डरने वाले कुछ आचार्य 'जं' समयं जाणति नो तं समयं पासति जं समयं पासति नो तं समयं जाणति इस प्रकार के सूत्र का अवलम्बन लेकर कहते हैं कि जिन भगवान् जिस समय जानते हैं उस समय देखते नहीं है **(134 पृ. 320)**

320 समाधान-अब उक्त शंका का समाधान करते हैं-केवलज्ञानावरण और केवलदर्शनावरण का क्षय एक साथ होता है या क्रम से होता है? इन दोनों कर्मो का क्षय क्रम से होता है ऐसा तो कहा नहीं जा सकता है, क्योंकि ऐसा कहने पर उक्त कथन का 'क्षीणकषाय गुणस्थान के अंतिम समय में ज्ञानावरण दर्शनावरण और अन्तराय ये तीनों घातिया कर्म एक साथ नाश को प्राप्त हुए। इस सूत्र के साथ विरोध आता है। इस प्रकार दोनों आवरणों का एक साथ मिल जाने पर उनकी क्रम से उत्पत्ति मानने में विरोध आता है। यहां उपर्युक्त गाथा से यह सिद्ध होता है कि केवल ज्ञानावरण के क्षय हो जाने पर जिस प्रकार केवलज्ञान उत्पन्न होता है उसी प्रकार केवल दर्शनावरण कर्म के क्षय हो जाने पर केवलदर्शन की उत्पत्ति भी बन जाती है।

चूंकि केवलज्ञान और केवलदर्शन एक साथ उत्पन्न होते इसलिए उनकी प्रवृत्ति क्रम से नहीं बन सकती है।

321. शंका-केवलज्ञान और केवलदर्शन की उत्पत्ति एक साथ रही जाओ, क्योंकि उनके आवरणों का विनाश एक साथ होता है। किन्तु केवलज्ञानोपयोग और केवलदर्शनोपयोग क्रम से ही होते हैं, क्योंकि केवलदर्शन सामान्य को विषय करने वाला होने से अव्यक्त रूप है और केवलज्ञान विशेष को विषय करने वाला होने से व्यक्त रूप है, इसलिये उनकी एक साथ प्रवृत्ति मानने में विरोध आता है। यहां इस विषय में उपयुक्त गाथा देते हैं-

दर्शनावरण और ज्ञानावरण का क्षय एक साथ होने पर पहले केवलदर्शन उत्पन्न होता है या केवलज्ञान? ऐसा पूछे जाने पर यही कहना होगा कि दोनों की उत्पत्ति एक साथ होगी, पर इतना निश्चित है कि केवलज्ञानोपयोग और केवलदर्शनोपयोग ये दो उपयोग नहीं है। (137) **स.सू.अ. 2गा.5**

322. समाधान-यदि केवलज्ञान विशेष को ही विषय करता और केवलदर्शन सामान्य को ही विषय करता तो यह दोष संभव होता, पर ऐसा नहीं हैं, क्योंकि केवल सामान्य और विशेष रूप विषय का अभाव होने से दोनों के अभाव का प्रसंग प्राप्त होता है। इसका खुलासा इस प्रकार है-केवल सामान्य तो है नहीं, क्योंकि अपने विशेषों को छोड़कर केवल तद्भाव सामान्य और सादृश्य लक्षण सामान्य नहीं पाये जाते हैं। यदि कहा जाय कि सामान्य के बिना सर्वत्र समान प्रत्यय है और एक प्रत्यय की उत्पत्ति बन नहीं सकती है, इसलिये सामान्य नाम का स्वतंत्र पदार्थ है, सो ऐसा कहना भी युक्त नहीं हैं, क्योंकि एक का ग्रहण अनेकानुविद्ध होता है और समान का ग्रहण असमानानुविद्ध होता है, अतः सामान्य-विशेषात्मक वस्तु को विषय करने वाले जात्यन्तरभूत ज्ञानों की ही उत्पत्ति देखी जाती है। इससे प्रतीत होता है कि सामान्य नाम का कोई स्वतंत्र पदार्थ नहीं है। तथा सामान्य से सर्वथा भिन्न विशेष नाम का कोई पदार्थ नहीं है, क्योंकि सामान्य से अनुविद्ध होकर ही विशेष की उपलब्धि होती है। यदि कहा जाय कि सामान्य और विशेष स्वतंत्र पदार्थ होते हुए भी उनके संयोग का परिज्ञान एक ज्ञान के द्वारा पाया जाता है, सो भी कहना ठीक नहीं है, क्योंकि सर्वथा स्वतंत्ररूप से न तो सामान्य ही पाया जाता है और न विशेष ही पाया जाता है; अतः उनका संयोग नहीं हो सकता है। यदि सामान्य और विशेष का सर्वथा स्वतंत्र सद्भाव मान लिया जाय तो समस्त ज्ञान या तो संकररूप हो जायेंगे या आलम्बन रहित हो जायेंगे। पर ऐसा है नहीं, क्योंकि ऐसा होने पर उनका ग्रहण ही नहीं हो सकता है।

325.एसो दोसो मा होदु त्ति अंतरंगुज्जोवो केवलदंसणं, बहिरंगत्थ विसओ पयासो केवलणाणमिदि इच्छियत्वं। ण च दोण्हमुवजोगाणमक्कमेण वुत्ती विरूद्धा, कम्म कयस्स तदभावेण अभावमुवगयस्सतत्थ सत्तविरोहादो।

वे पूर्वोक्त दोष प्राप्त नहीं हो, इसलिये अन्तरंग उद्योत केवलदर्शन है और बहिरंग पदार्थों को विषय करने वाला प्रकाश केवलज्ञान है, ऐसा स्वीकार कर लेना

चाहिए। दोनों उपयोगों की एक साथ प्रवृत्ति मानने में विरोध भी नहीं आता है, क्योंकि उपयोगों की क्रमवृत्ति कर्म का कार्य है और कर्म का अभाव हो जाने से उपयोगों को क्रमवृत्ति का भी अभाव हो जाता है, इसलिये निरावरण केवलज्ञान और केवलदर्शन की क्रमवृत्ति के मानने में विरोध आता है।

शंका-आगम में कहा है कि अवधिदर्शन परमाणु से लेकर अंतिम स्कन्धपर्यन्त मूर्तिक द्रव्यों को देखता है इसमें दर्शन का विषय बाह्य पदार्थ बतलाया है, अतः अंतरंग पदार्थ को विषय करता है यह कहना ठीक नहीं है?

समाधान-ऐसी आशंका नहीं करना चाहिए, क्योंकि 'परमाणुआदियाइ' इत्यादि गाथा में विषय के निर्देश द्वारा विषयी का निर्देश किया है, क्योंकि अंतरंग विषय का निरूपण अन्य प्रकार से किया नहीं जा सकता है, अर्थात् अवधि ज्ञान का विषय मूर्तिक पदार्थ है, अतः अवधि दर्शन के विषयभूत अंतरंग पदार्थ को बतलाने का अन्य कोई प्रकार न होने का कारण मूर्तिक पदार्थ का अवलम्बन लेकर उसका निर्देश किया है।

325. शंका-चूंकि केवलज्ञान स्व और पर दोनों का प्रकाशक है। इसलिये केवलदर्शन नहीं है ऐसा कुछ आचार्य कहते हैं। इस विषय की उपयुक्त गाथा देते हैं-

मनः पर्ययज्ञान पर्यन्त ज्ञान और दर्शन इन दोनों में विशेष अर्थात् भेद है। परन्तु केवल ज्ञान की अपेक्षा से तो ज्ञान और दर्शन दोनों समान हैं। **(स.सू.अ2. सू.3)**

326. समाधान-परन्तु उनका कहना भी ऐसा नहीं बनता है। क्योंकि केवलज्ञान स्वयं पर्याय है, इसलिये उसकी दूसरी पर्याय नहीं हो सकती। अर्थात् यदि केवलज्ञान को स्व पर प्रकाशक माना जायेगा तो उसकी एक काल में स्वप्रकाश रूप और पर प्रकाश रूप दो पर्यायें माननी पड़ेगी। किन्तु केवलज्ञान स्व-पर प्रकाश रूप एक पर्याय है, अतः उसकी स्व प्रकाश रूप दूसरी पर्याय नहीं हो सकती है। पर्याय की पर्यायें होती हैं, ऐसा कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि ऐसा मानने पर एक तो पहली पर्याय की दूसरी पर्याय, उसकी तीसरी पर्याय इस प्रकार उत्तरोत्तर पर्याय मानने से पर्याय द्रव्य हो जाता है, इसलिए उसमें पर्यायत्व का अभाव प्राप्त होता है। इस प्रकार पर्याय की पर्याय मानकर भी केवलदर्शन केवलज्ञान रूप नहीं हो सकता है। तथा केवलज्ञान स्वयं न तो जनता ही है और न देखता ही है, क्योंकि वह स्वयं जानने और देखेने

रूप क्रिया का कर्त्ता नहीं है, इसलिए ज्ञान को अंतरंग और बहिरंग दोनों का प्रकाशक न मानकर जीव स्व और पर का प्रकाशक है ऐसा मानना चाहिए।

केवलज्ञान और केवलदर्शन यह दोनों प्रकार एक ही हैं ऐसा भी नहीं कहना चाहिए, क्योंकि बाह्य पदार्थ को विषय करने वाले साकार उपयोग और अंतरंग पदार्थ को विषय करने वाले अनाकार उपयोग को एक मानने में विरोध आता है।

327. शंका-केवलज्ञान से केवनदर्शन अभिन्न है, इसलिए केवल दर्शन केवलज्ञान क्यों नहीं हो जाता है?

यदि कहा जाय कि केवलदर्शन अव्यक्त है, इसलिए केवलज्ञान केवलदर्शन रूप नहीं हो सकता है, सो ऐसा कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि जो आवरण से रहित है और जो सामान्यः विशेषात्मक अंतरंग पदार्थ के अवलोकन में लगा हुआ है ऐसे केवलदर्शन को अव्यक्तरूप स्वीकार करने में विरोध आता है यदि कहा जाय कि केवलदर्शन को भी व्यक्त रूप स्वीकार करने से केवलज्ञान और केवलदर्शन इन दोनों की समानता अर्थात् अनेकता नष्ट हो जायेगी सो भी बात नहीं है, क्योंकि परस्पर के भेद से इन दोनों में भेद हैं, इसलिए इसमें असमानता अर्थात् एकता के मानने में विरोध आता है। दूसरे यदि दर्शन का सद्भाव न माना जाय तो दर्शनावरण के लिए सात ही कर्म होगें, क्योंकि आवरण करने योग्य दर्शन के अभाव मानने पर उसके आवरण का सद्भाव मानने में विरोध आता है।

जुगवं वट्टइ णाणं, केवलणाणिस्स दंसणं च तहा।
दिणयरपयासतापं जह वट्टइ तह मुणेयव्वं।।(160)

जैसे सूर्य के प्रकाश और ताप युगपत् रहते हैं वैसे ही जानना चाहिए।

णाणं परप्पयासं, दिट्ठी अप्पप्पयासया चेव।
अप्पा सपरपयासो, होदि त्ति हि मण्णसे जदि हि।।(161)

ज्ञान पर प्रकाशी है और दर्शन आत्मप्रकाशी है तथा आत्मा स्व और पर प्रकाशक होता है, यदि तुम ऐसा ही निश्चित मानते हो तो ठीक नहीं है।

णाणं परप्पयासं तइया णाणेण दंसणं भिण्णं।
ण हवदि परदव्वगयं, दंसणमिदि वण्णिदं तम्हा।। (162)

ज्ञान पर प्रकाशी है तब तो ज्ञान से दर्शन भिन्न सिद्ध हुआ क्योंकि दर्शन

परद्रव्यगत परद्रव्यों का प्रकाशक नहीं होता है ऐसा पूर्व में वर्णन किया है।

अप्पा परप्पयासो तइया अप्पेण दंसणं भिण्णं।

ण हवदि परदव्वगयं दंसणमिदि वण्णिदं तम्हा।।(163)

यदि आत्मा पर प्रकाशी है तब तो आत्मा से दर्शन भिन्न हो जावेगा क्योंकि दर्शन परद्रव्यगत नहीं है। ऐसा पूर्व सूत्र में वर्णन किया गया है।

णाणं परप्पयासं, ववहारणयेण दंसणं तम्हा।

अप्पा परप्पयासो, ववहारणयेण दंसण तम्हा।।(164)

व्यवहार नय से प्रकाशी है इसलिए दर्शन भी पर प्रकाशी है, व्यवहारनय से आत्मा पर प्रकाशी है अतः दर्शन भी पर प्रकाशी है।

णाणं अप्पायासं, णिच्छयणयएण दंसणं तम्हा

अप्पा अप्पयासो, णिच्छयणयएण दंसणं तम्हा।।(165)

निश्चिय से ज्ञान आत्म प्रकाशी है, दर्शन भी उसी प्रकार आत्म प्रकाशी है। निश्चिय से आत्मा प्रकाशी है, दर्शन भी वैसा ही है।

अप्पसरूवं पेच्छदि, लोयालोयं ण केवली भगवं।

जइ कोइ भणइ एवं, तस्स य किं दूसणं होइ।।(166)

केवली भगवान् आत्मा के स्वरूप को देखते है किन्तु लोकालोक को नहीं, ऐसा यदि कोई भी कहता है तो उसके लिए क्या दूषण है?

मुत्तममुत्तम् दव्वं, चयणमियरं संग च सव्वं च।

पेच्छंतस्स दु णाणं, पच्चमक्खमणिंदियं होइ(167)

मूर्तिक अमूर्तिक, चेतन और अचेतन द्रव्यों को अपने को तथा समस्त को देखने वाले का ज्ञान अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष होता है।

पुव्वुत्तसयलदव्वं णाणगुणपज्जएण संजुत्तं।

जो णय पेच्छइ सम्मं, परोक्खदिट्ठी हवे तस्स।।(168)

नाना गुण पर्यायों से संयुक्त पूर्वोक्त समस्त द्रव्यों को जो सम्यक् प्रकार से नहीं देखता है उसके परोक्ष दर्शन होता है।

लोयालोयं जाणइ, अप्पाणं णेव केवली भगवं।

जई कोइ भणइ एवं, तस्स य किं दूसणं होइ।।(169)

केवली भगवान् लोकालोक को जानते हैं, किन्तु आत्मा को नहीं, यदि ऐसा कोई भी कहता है तो उसको क्या दूषण होता है।

णाणं जीवसरूवं तम्हा जाणेइ अप्पगं अप्पा।

अप्पाणं ण बि जाणदि, अप्पादो होदि विदिरित्तं।। (170)

ज्ञान जीव का स्वरूप है इसलिए आत्मा आत्मा को जानता है, यदि ज्ञान आत्मा को नहीं जानता है वो आत्मा से भिन्न हो जावेगा।

अप्पाणं विणु णाणं, णाणं विणु अप्पगो ण संदेहो।

तम्हा सपरपयासं, णाणं तह दंसण होदि।। (171)

तुम आत्मा को ज्ञान समझो और ज्ञान को आत्मा समझो, इसमें सदेंह नहीं है। इसलिए ज्ञान और दर्शन स्वपर प्रकाशी होते है।

एक साथ जानने वाला ज्ञान ही केवलज्ञान

तिक्कालणिच्चविसमं सयलं सव्वत्थसंभवं चित्तं।

जुगवं जाणदि जोण्हं अहो हि णाणस्स महाप्पं।(51)

The Omniscience of the jine knows simultaneously of the (the whole range of) variegated and unequal obejctivity possible in all places and present in three tensen indeed greal is the glory of that knowledge!

अब यह प्रगट करते है कि जो एक समय में सर्व को जान सकता है, उसी ज्ञान से सर्वज्ञ होता है।

(जोण्ह) जिनेन्द्र का ज्ञान अर्थात् जिनशासन में जिस प्रत्यक्षज्ञान को केवलज्ञान कहते हैं वह ज्ञान (जुगवं) एक समय में (सव्वत्थसंभव) सर्व लोकालोक में स्थित तथा (चित्त) नाना जाति भेद से विचित्र (सयलं) सम्पूर्ण (तिक्कालणिच्चविसम) तीन काल सम्बन्धी पदार्थो का सदा काल विषमरूप अर्थात् जैसे उनमें भेद हैं उन भेदों के साथ अथवा (तिक्कालणिच्चविसय) ऐसा भी पाठ है जिसका अर्थ है तीन काल के सर्व द्रव्य अपेक्षा नित्य पदार्थों को (जाणदि) जानता है। (अहो हि णाणस्स माहप्प) अहो निश्चय से ज्ञान का माहात्म्य आश्चर्यकारी है।

विशेष भाव यह है कि एक समय में सर्व को ग्रहण करने वाले ज्ञान से ही सर्वज्ञ होता है ऐसा जानकर क्या करना चाहिये? सो कहते है-ज्योतिष, मन्त्र, वाद, रससिद्धि आदि के जो खण्डज्ञान हैं तथा जो मूढ़ जीवों के चित्त में चमत्कार करने के कारण हैं और जो परमात्मा की भावना का नाश करने वाले हैं उन सर्व ज्ञानों में आग्रह या हठ त्याग करके तीन जगत् व तीन काल की सर्व वस्तुओं को एक समय में प्रकाश करने वाले, अविनाशी तथा अखण्ड और एक रूप से उद्योत रूप तथा सर्वज्ञत्व शब्द से कहने योग्य जो केवलज्ञान है, उसकी ही उत्पत्ति का कारण जो सर्व रागद्वेषादि विकल्प-जालों से रहित स्वाभाविक शुद्धात्मा का अभेदज्ञान अर्थात् स्वानुभव रूप ज्ञान है उसमें भावना योग्य है, यह तात्पर्य है।

समीक्षा-इस गाथा में आचार्य श्री ने केवलज्ञान की सर्वज्ञता का विशेष रूप से वर्णन किया है। केवलज्ञान वही है जो समग्रता से त्रिकालवर्ती समस्त ज्ञेयों की समस्त पर्यायों को एक साथ स्पष्ट रूप से जानता है। आचार्य उमास्वामी ने कहा भी है।

सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य।।(29) त.सू. (स्व. सू)

The subject matter of perfect knowledge is all the substances and all their) modifications.

तज्जयति परं ज्योतिः समं समस्तैरनन्तपर्यायैः।
दर्पणतल इव सकला प्रतिफलति पदार्थमालिकायत्र।। 1

जिसमें सम्पूर्ण अनंत पर्यायों से सहित समस्त पदार्थों की माला अर्थात् समूह दर्पण के तल भाग के समान झलकती है, वह उत्कृष्ट ज्योति अर्थात् केवलज्ञान रूपी प्रकाश जयवंत हो।

संपुण्णं तु समग्गं केवलमसवत्त सव्वभावगयं।
लोयालोयवितिमिरं, केवलणाणं मुणेदेव्वं।।(460) गो.जी.

यह केवलज्ञान, सम्पूर्ण, केवल, प्रतिपक्ष रहित, सर्व पदार्थगत और लोकालोक में अन्धकार रहित होता है।

यह ज्ञान समस्त पदार्थों को विषय करने वाला है और लोकालोक के विषय में आवरण रहित है। तथा जीव द्रव्य के जितने अंश है वे यहां पर सम्पूर्ण व्यक्त हो गये हैं, इसलिये उसको (केवलज्ञान) सम्पूर्ण कहते हैं। मोहनीय और वीर्यान्तराय का

सर्वथा क्षय हो जाने के कारण वह अप्रतिहत शक्ति युक्त है, और निश्चल है अतएव उसको समग्र कहते हैं। इन्द्रियों की सहायता की अपेक्षा नहीं रखता इसलिए केवल कहते हैं। चारों घातिया कर्मों के सर्वथा क्षय से उत्पन्न होने के कारण वह क्रम करण और व्यवधान से रहित है, फलतः युगपत् और समस्त पदार्थों के ग्रहण करने में उसका कोई बाधक नहीं हैं, इसलिए उसको असपत्न (प्रतिपक्ष रहित) कहते हैं।

असहायं स्वरूपोत्थं निरावरणक्रमम्।
घातिकर्मक्षयोत्पन्नं केवलं सर्वभावगम्।। (30) त.सा.

जो किसी बाह्य पदार्थ की सहायता से रहित हो, आत्मस्वरूप से उत्पन्न हो, आवरण से रहित हो, क्रमरहित हो, घातिया कर्मो के क्षय से उत्पन्न हुआ हो तथा समस्त पदार्थों को जानने वाला हो, उसे केवलज्ञान कहते हैं। नियमसार में आचार्य कुन्दकुन्द देव ने केवलज्ञान के स्वरूप का वर्णन निम्न प्रकार से किया है-

मुत्तममुत्तं दव्वं, चेयणमियरं संगं च सव्वं च।
पेच्छंतस्स दु णाणं, पच्चक्खमणिदियं होइ्ज।।(167)नियमसार

छहो द्रव्यों में से पुद्गल द्रव्य मूर्तिक है शेष पांचो द्रव्य अमूर्तिक हैं और जीव ही चेतन है शेष पांचों द्रव्य अचेतन हैं। इन तीन काल सम्बन्धी मूर्तिक, अमूर्तिक, चेतन, अचेतन, स्वद्रव्य आदि अशेष को सतत् देखते हुए श्रीमान् अर्हंत परमेश्वर भगवान् के क्रम करण और इन्द्रियों के व्यवधान से रहित अतीन्द्रिय ऐसा सकल विमल केवलज्ञान सकल प्रत्यक्ष होता है।

पर परिणति के अभाव से केवली के बन्ध नहीं

ण वि परिणमदि ण गेण्हदि उप्पज्जदि णेव तेसु अट्ठेसु।
जाणण्णवि ते आदा अबंधगो तेण पण्णत्तो।।(52)

The soul (of the omniscient), though knowing all the things] does not transform itself (under their influence), does not receive (any thing external), nor does it become one among them; and hence it is said to be eithout karmicbondage.

आगे पहले जो यह कहा था कि पदार्थों का ज्ञान होते हुए भी राग द्वेष मोह का अभाव होने से केवलज्ञानियों का बन्ध नहीं होता हैं, उस ही अर्थ को दूसरी तरह से

दृढ़ करते हुए ज्ञाप प्रपंच का संकोच करते हैं।

(आदा) आत्मा अर्थात् मुक्त स्वरूप केवलज्ञानी या सिद्ध भगवान् की आत्मा (ते जाणण्णवि) उन ज्ञेय पदार्थों का अपने आत्मा से भिन्न रूप जानते हुए भी (तेसु अट्ठेसु) उन ज्ञेय पदार्थों के स्वरूप (ण वि परिणमदि) न तो परिणमन करता है अर्थात् जैसे अपने आत्मप्रदेशों के द्वारा समतारस से पूर्ण भाव के साथ परिणमन कर रहा है वैसा ज्ञेय पदार्थों के स्वरूप नहीं परिणमन करता है अर्थात् आप अन्य पदार्थ रूप नहीं हो जाता है। (ण गेण्हदि) और न उसको ग्रहण करता है अर्थात् जैसे वह आत्मा अनन्तज्ञान आदि अनन्त चतुष्टय रूप अपने आत्मा के स्वभाव को आत्मा स्वभाव रूप से ग्रहण करता है वैसे वह ज्ञेय पदार्थों के स्वभाव को ग्रहण नहीं करता है। (णे उप्पज्जदि) और न वह उस रूप पैदा होता है अर्थात् जैसे वह विकार रहित परमानन्दमयी एक सुखरूप अपनी ही सिद्धि पर्याय करके उत्पन्न होता है वैसा वह शुद्ध आत्मा ज्ञेय पदार्थों के स्वभाव में पैदा नहीं होता है। (तेण) इस कारण से (अबधंगो) कर्मों का बंध का कारण नहीं करने वाला (पण्णत्तो) कहा गया है।

भाव यह है कि रागद्वेष रहित ज्ञान बंध का कारण नहीं होता है, ऐसा जानकर शुद्ध आत्मा की प्राप्ति रूप है लक्षण जिसका ऐसा मोक्ष उससे उल्टा जो नरक आदि दुःखों की कारणभूत कर्म-बंध की अवस्था, जिस बंध अवस्था के कारण इन्द्रिय एवं मन से उत्पन्न होने वाले एक देशज्ञान उन सर्व को त्याग कर सर्व प्रकार निर्मल ज्ञान जो कर्मबंध का कारण नहीं है उसका बीजभूत जो विकार रहित स्वसंवेदनज्ञान या स्वानुभव उसमें ही भावना करने योग्य है, ऐसा अभिप्राय है।

यहां वास्तव में 'उदयगताः कर्मांशा जिनवर वृषभैः नियत्याः। तेषु विनूढ़ रक्तः दुष्ट वा बंध मनुभवति' इस 43 वें गाथा सूत्र में 'उदयगत पुद्गल कर्मांशों के विद्यमान रहने पर (उन्हे)' सचेतन करता हुआ (अनुभव करता हुआ) मोह-राग द्वेष रूप परिणमन-स्वरूप क्रिया के साथ के साथ युक्त होता आत्म क्रियाफल-भूत बंध को अनुभव करता है, ज्ञान से नहीं। इस प्रकार प्रथम ही अर्थ-परिणमन-क्रिया के फलरूप से बंध का समर्थन किया गया है तथा 'गृह्णाति नैव न मुंचतिं न परं परिणमति केवली भगवान्। पश्यति समन्ततः सः जानाति सर्व निर्विशेषं इस 32 वें गाथा सूत्र में शुद्धात्मा के, अर्थ परिणमन आदि क्रियाओं का अभाव निरूपित किया गया है।

इसलिये पदार्थ रूप में परिणत नहीं होने वाले, पदार्थों का ग्रहण नहीं करने वाले तथा उन पदार्थों से उत्पन्न नहीं होने वाले (उस)' आत्मा के ज्ञप्तिक्रिया का सद्भाव होने पर भी वास्तव में क्रिया फल-भूत बंध सिद्ध नहीं होता।

समीक्षा- बंध का मूल कारण वैभाविक परिणति है। जहां वैभाविक भाव है वहां बंध है परन्तु बंध वैभाविक भाव के बिना नहीं होता है। क्योंकि बंध के लिए कर्मवर्गणा में स्निग्ध-रूक्षत्व गुण तथा जीव के योग के साथ-साथ रागद्वेषात्मक वैभाविक परिणमन चाहिए। बंध प्रकिया का वर्णन इसी शास्त्र में आगे सविस्तार किया जायेगा इसलिए यहाँ नहीं कर रहे हैं। प्रत्येक कार्य अन्तरंग और बहिरंग कारणों से होता है। बंध भी एक कार्य है इसके लिए अन्तरंग कारण योग-उपयोग एवम् कर्मवर्गणा में स्निग्ध रूक्षत्व गुण हैं। कर्मवर्गणा में बंध योग्य स्निग्ध गुण होते हुए भी जीव में बधने योग्य वैभाविक परिणाम नहीं है तो बंध नही हो सकता है।
जैसे-चुम्बक में चुम्बकीय शक्ति होते हुए भी जिसमें खींचकर न आने योग्य लकड़ी पत्थर को खींच कर नहीं लाता उसी प्रकार जब केवली भगवान् राग-द्वेषादि रहित होकर वस्तु को जानते हैं परन्तु उस वस्तु में राग-द्वेषादि एवं आर्कषण और विकर्षण नहीं होता तो बन्ध नहीं होता है। केवली भगवान् शुद्ध अभेद रत्नत्रय के धारी होते है, और रत्नत्रय आत्मा का शुद्ध-स्व स्वरूप है। स्व-स्वरूप में कभी भी बंध नहीं होता है। पुरुषार्थ सिद्धयुपाय में आचार्य अमृतचन्द्र सूरी ने भी जिज्ञासापरक इसी सिद्धान्त का निरूपण किया है-

योगात् प्रदेशबन्धः स्थितिबन्धो भवति यः कषायात्।
दर्शनबोधचरित्रं न योगरूपं कषायरूपं च।।(215)

परम पावन भाव-व्यवहार क्या व कैसे होते हैं!?

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : आत्मशक्ति....)

परम से परम पावन है स्व शुद्धात्मा के गुणधर्म।
उसकी प्राप्ति हेतु जो भावना है वह ही परम पावन।
स्व-शुध्दात्मा के गुणधर्म है शुध्द-बुध्द व आनन्द।
राग द्वेष मोह काममद रिक्त सत्य समता ज्ञानानन्द।।(1)

यह ही जीव की परम अवस्था जिसे कहते है परमात्मा।
तन-मन-इन्द्रिय से भी रहित सच्चिदानन्द शुद्धात्मा।
इस अवस्था में न कोई शत्रु-मित्र तथाहि अपना-पराया।
संकल्प विकल्प व संक्लेश परे जन्म-जरा-मृत्यु रिक्तता।।(2)

अनन्तज्ञानदर्शनसुखवीर्यमय स्वयं में पूर्णता व स्थिरता।
परम अहिंसा क्षमादि गुणयुक्त यह ही परम शुद्धात्मा।
इस स्वरूप को स्वशुध्दात्मा मानना यह ही परम आस्तिक्य।
इससे युक्त होता आत्मज्ञान जिससे होता सही आचरण।।(3)

इससे युक्त होते जो भाव-व्यवहार वे ही सही धर्मध्यान।
इसके मनन-चिन्तन व शोध-बोध यथार्थ से आध्यात्मिक ज्ञान।
अन्यथा न संभव पावन भाव व्यवहार भले हो नैतिक आचरण।
नीति-नियम हो या सामाजिक तथाहि कानून संविधान।।(4)

ये सभी भी आवश्यक है तथापि ये न होते परम पावन।
इससे जीव न बन पाते शुद्ध-बुद्ध (आनंद) अतः ये व्यवहार काम।
परम पावन बनने हेतु तीर्थंकर भी बनते है श्रमण।
तीन-तीन पदवी के धारी शान्ति-कुन्थु-अरहनाथ (इसके) प्रमाण।। (5)

मन्द कषायी शुभ लेश्या वाले होते हैं भद्र व शान्त।
तो भी उनके भाव-व्यवहार नहीं होते परम पावन।
केवल रूढ़ि-परम्परा पंथ-मत से न संभव पावन भाव।
कानून-संविधान-शिक्षा-राजनीति से न होता है पावन भाव।।(6)

पावन भाव से मिलती आध्यात्मिक शान्ति जो अन्य से असंभव।
पावन भाव हेतु ही 'कनकनन्दी' करे सभी तप व त्याग।
लोग कहते अच्छे भाव करो, किन्तु न जानते इसका स्वरूप।
स्व सम्बोधन व अन्य के हित हेतु 'कनक' ने लिखा सही स्वरूप।।(7)

सागवाडाः 12-04-2018 रात्रि-8.58

शोध

आशावादी लोग होते हैं दीर्घायु

साइंस डेली, विज्ञान पत्रिका में प्रकाशित शोध के मुताबिक आशावादी और सकारात्मक सोच वाले लोग निराशावादी की तुलना में कहीं ज्यादा जीते हैं। इससे पहले नेशनल एकेडमी ऑफ साइंसेज द्वारा 3853 लोगों पर किए गए एक अध्ययन में भी पाया गया है कि आशावादी और खुशमिजाज लोग अन्य लोगों की तुलना में 35 फीसदी दीर्घायु होने की संभावना होती है। वैज्ञानिकों का मानना है कि इन लोगों का पॉजीटिव एटीट्यूड शरीर में स्ट्रेस हार्मोन का लेवल कम करता है। यह हर्मोन एजिंग के प्रोसेस को तेज करने के लिए माना जाता है। जाहिर है, आशावादी रवैया स्ट्रेस कम करके एजिंग की प्रकिया को धीमा करने में मददगार होता है।

लॉस एंजेल्स की कैलिफॉर्निया यूनिवर्सिटी में हाल ही हुए एक शोध के अनुसार लंबे समय तक बैठे रहने से न केवल शरीर व हृदय पर बल्कि दिमाग की कार्यक्षमता पर भी बुरा असर पड़ना पाया है। शोधकर्ताओं के अनुसार कुछ लोगों पर किए गए शोध में यह सामने आया कि दिमाग का एक खास हिस्सा, मीडियल टेम्पोरल लोब (एमटीएल) याद्दाश्त का निर्माण करता है। ऐसे में लंबे समय तक बैठने से यह हिस्सा कमजोर होने लगता है।

लम्बी आयु कैसे मिले?

-अशोक गुप्ता

दुनिया के सभी देशों में इस विषय में समय-समय पर खोज होती रही है। आखिर क्यों कोई व्यक्ति 103 वर्ष की आयु में भी स्वस्थ रहता है और बाइसवीं शादी रचाता है और क्यों कोई 20-25 वर्ष की आयु में दिल के दौरे का शिकार होकर संसार से कूच कर जाता है। आखिर यह क्या है जो अच्छा स्वास्थ्य और लम्बी आयु प्रदान करता है।

विश्व में कई ऐसे स्थान है जहां रहने वालों की आयु असाधारण रूप से लंबी होती है। वैज्ञानिकों ने इन स्थानों को रहने वालों और उन लोगों की जिनकी आयु

असाधारण रूप से अधिक रही है, की आदतों के अध्ययन से कुछ निष्कर्ष निकाले हैं। ये सिद्धान्त हम नीचे दे रहे है ताकि आप भी इनको अपने जीवन में ढाल कर लंबी आयु पा सकेः-

अपने घर को सदा पूरी तरह हवादार रखिये। स्वच्छ वायु, स्वस्थ शरीर हेतु बहुत आवश्यक है।

कुछ समय घर से बाहर अवश्य बितायें। खेलकूछ व मनोंरजन मानसिक तनाव को कम करता है और शरीर में स्फूर्ति बनाये रखता है।

यदि संभव हो तो रात्रि को बाहर ही सोयें। सांस सैदव गहरी लें। गहरी सांस से फेफड़ें के हर कोने को आक्सीजन मिलती है और फेफड़ें स्वस्थ बने रहते है।

कभी भूख से अधिक न खायें। प्रायः स्वाद के चक्कर में हम भूख से अधिक खा जाते हैं। यह अतिरिक्त भोजन मोटापा लाता है, पाचन क्रिया खराब करता है और कई बीमीरियां पैदा होती है। इसके अतिरिक्त भोजन धीरे व अच्छी तरह चबाकर खायें। कहीं ऐसा न हो कि दांतों का कार्य पेट को करना पड़े। यूं भी भोजन कम चबाने से अधिक भोजन किया जाता है।

शौच नित्य जायें। संभव हो तो सुबह व शाम, कम से कम दो बार शौच जायें। सप्ताह में एक बार आतें साफ करने के लिए गुनगुने पानी का एनिमा भी लें। मिर्च मसाले कम खायें।

सीधे बैठें, सीधे खड़े हो और सीधे चलें। कमर झुका कर न चलें। अपने दांत व जीभ प्रतिदिन दो बार साफ करें। प्रातः व रात्रि सोने से पहले।

यथा संभव जहरीले पदार्थों व बीमारी पैदा करने वाले कीटाणुओं से दूर रहें।

अपनी क्षमता से अधिक कार्य न करें। जब थक जायें तो थोड़ा आराम करें। अपने शरीर की आवश्कतानुसार 7 से 9 घंटे की नीद अवश्य लें।

यदि हम इन सिद्धान्तों पर नियमपूर्वक चल सकें तो कोई कारण नहीं कि हम दीर्घायु प्राप्त न कर सकें।

संदर्भ-

यद्यपि बाहुबली स्वामी शरीरादि से विरक्त होकर आतापनसे विराजमान थे

परंतु में भरतकी भूमिमें खड़ा हूँ' इस प्रकार सूक्ष्म मान विद्यमान रहनेसे केवलज्ञान प्राप्त नहीं कर सके थे। जब उनके हृदयसे उक्त प्रकार का मान दूर हो गया था तभी उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हुआ था। इससे यह सिद्ध होता है कि अंतरंगकी उज्ज्वलता के बिना बाह्य त्याग से कुछ नहीं होता।।44।।

महुपिंगो णाय मुणी देहा हारादिचत्तवावारो।
सवणत्तणं ण पत्तो, णियाणमित्तेण भवियणुव।।45।।अष्टपा.

हे भव्य जीवों के द्वारा नमस्कृत मुनि! शरीर तथा आहारका त्याग करनेवाले मधुपिंग नामक मुनि निदानमात्र से श्रमणपनेको प्राप्त नहीं हुए थे।

अण्णं च वसिट्ठमुणी, पत्तो दुक्खं णियाणदोसेण।
सो णत्थि वासठाओ, जत्थ ण ढुरुढुल्लिओ जीवो।।46।।

और भी एक वशिष्ठ मुनि निदानमात्रसे दुःखको प्राप्त हुए थे। लोकमें वह निवासस्थान नहीं है जहाँ इस जीवने भ्रमण न किया हो।

सो णत्थि तं पएसो, चउरासीलक्खजोणिवासम्मि।
भावविरओ वि सवणो, जत्थ ण ढुरुढुल्लिओ जीवो।।47।।

हे जीव! चौरासी लाख योनिके निवासमें वह एक भी प्रदेश नहीं है जहाँ अन्यकी बात जाने दो, भावरहित साधुने भ्रमण न किया हो।

भावेण होइ लिंगी, ण हु लिंगी होइ दव्वमित्तेण।
तम्हा कुणिज्ज भावं, किं कीरइ दव्वलिंगेण।।48।।

मुनि भावसे ही जिनलिंगी होता है, द्रव्यमात्रसे जिनलिंगी नहीं होता। इसलिए भावलिंग ही धारण करो, द्रव्यलिंगसे क्या काम सिद्ध होता है?

दंडअणयरं सयलं, डहिओ अब्भंतरेण दोसेण।
जिणलिंगेण वि बाहू, पडिओ सो रउरवे णरये।।49।।

बाहु मुनि जिनलिंग सहित होनेपर भी अंतरंग के दोष से दंडक नामक समस्त नगरको जलाकर रौरव नामक नरक में उत्पन्न हुआ था।

अवरो वि दव्वसवणो, दंसणवरणाणचरणपब्भट्ठो।
दीवायणुत्ति णामों, अणंतसंसारिओ जाओ।।50।।

और भी एक द्वैपायन नामक द्रव्यलिंगी श्रमण सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और

सम्यक्चारित्र से भ्रष्ट होकर अनंतसंसारी हुआ।

भावसमणो य धीरो, जुवईजणवेड्डिओ विसुद्धमई।

णामेण सिवकुमारो, परीत्तसंसारिओ जादो।।51।।

भावलिंग का धारक धीर वीर शिवकुमार नामका मुनि युवतिजनों से परिवृत होकर भी विशुद्धहृदय बना रहा और इसीलिए संसारसमुद्र से पार हुआ।

अंगाइं दस य दुण्णि य, चउदसपुव्वाइं सयलसुयणाणं।

पढिओ अ भव्वसेणो, ण भावसवणत्तणं पत्तो।।52।।

भव्यसेन नामक मुनिने बारह अंग और चौदह पूर्वरूप समस्त श्रुतज्ञानको पढ़ लिया तो भी वह भाव श्रमण पने को प्राप्त नहीं हुआ।

तुसमासं घोसंतो, भावविसुद्धो महाणुभावो य।

णामेण य सिवभूई, केवलणाणी फुडं जाओ।।53।।

यह बात सर्वप्रसिद्ध है कि विशुद्ध भावोंके धारक और अत्यंत प्रभावसे युक्त शिवभूति मुनि 'तुषमाष' पदको घोकते हुए--याद करते हुए केवलज्ञानी हो गये।

भावेण होइ णग्गो, बाहिरलिंगेण किं च णग्गेण।

कम्मपयडीयणियरं, णासइ भावेण दव्वेण।।54।।

भाव से ही निर्ग्रंथ रूप सार्थक होता है, केवल बाह्यलिंगरूप नग्न मुद्रा से क्या प्रयोजन है? कर्मप्रकृतियों का समुदाय भावसहित द्रव्यलिंग से ही नष्ट होता है।

णग्गत्तणं अकज्जं, भावणरहियं जिणेहिं पण्णत्तं।

इय णाऊण य णिच्चं, भाविज्जाहि अप्पयं धीर।।55।।

जिनेंद्र भगवान् से भावरहित नग्नता को व्यर्थ कहा है ऐसा जानकर हे धीर! सदा आत्मा की भावना कर।

देहादिसंगरहिओ, माणकसाएहिं सयलपरिचत्तो।

अप्पा अप्पम्मि रओ, स भावलिंगी हवे साहू।।56।।

जो शरीरादि परिग्रह से रहित है, मान कषाय से सब प्रकार मुक्त है और जिनका आत्मा आत्मा में रत रहता है वह साधु भावलिंगी है।

ममत्तिं परिवज्जामि, णिम्ममत्तिमुवट्ठिदो।

आलंबणं च मे आदा, अवसेसाइं वोसरे।।57।।

भावलिंगी मुनि विचार करता है कि मैं निर्ममत्व भाव को प्राप्त होकर ममता बुद्धि को छोड़ता हूँ और आत्मा ही मेरा आलंबन है, इसलिए अन्य समस्त पदार्थों को छोड़ता हूँ।

आदा खु मज्झ णाणे, आदा मे संवरे जोगे।

आदा पच्चक्खाणे, आदा मे संवरे जोगे।।58।।

निश्चय से मेरे ज्ञान में आत्मा है, दर्शन और चारित्र में आत्मा है, प्रत्याख्यान में आत्मा है, संवर और योग में आत्मा है।

एगो मे सस्सदो अप्पा, णाणदंसणलक्खणो।

सेसा मे बाहिरा भावा, सव्वे संजोगलक्खणा।।59।।

नित्य तथा ज्ञान दर्शन लक्षणवाला एक आत्मा ही मेरा है, उसके सिवाय परद्रव्य के संयोग से होनेवाले समस्त भाव बाह्य है--मुझसे पृथक् हैं।

भावेह भावसुद्धं, अप्पा सुविसुद्धणिम्मलं चेव।

लहु चउगइ चइऊणं, जइ इच्छसि सासयं सुक्खं।।60।।

हे भव्य जीवो! यदि तुम शीघ्र ही चतुर्गति को छोड़कर अविनाशी सुख की इच्छा करते हो तो शुद्ध भावों के द्वारा अत्यंत पवित्र और निर्मल आत्मा की भावना करो।

जो जीवो भावंतो, जीवसहावं सुझावसंजुत्तो।

जो जरमरणविणासं, कुडइ फुडं लहइ णिव्वाणं।।61।।

जो जीव अच्छे भावों से सहित होकर आत्मा के स्वभाव का चिंतन करता है वह जरामरणका विनाश करता है और निश्चय ही निर्वाण को प्राप्त होता है।

जीवो जिणपण्णत्तो, णाणसहाओ य चेयणासहिओ।

सो जीवो णायव्वो, कम्मक्खयकारणणिमित्तो।।62।।

जीव ज्ञान स्वभाव वाला तथा चेतनासहित है ऐसा जिनेंद्र भगवान् ने कहा है। वह जीव ही कर्मक्षय का कारण जानना चाहिए।

जेसिं जीवसहावो, णत्थि अभावो य सव्वहा तत्थ।

ते होंति भिण्णदेहा, सिद्धा वचिगोयरमतीदा।।63।।

जिसके मन में जीव का सद्भाव है उसका सर्वथा अभाव नहीं है। वे शरीर

से भिन्न तथा वचन के विजय से परे होते हैं।

अरसमरूवमगंधं, अव्वत्तं चेयणागुणमसद्दं।

जाणमलिंगग्गहणं, जीवमणिद्दिट्ठसंठाणं।।64।।

जो रसरहित है, रूपरहित है, गंधरहित है, अव्यक्त है, चेतना गुण से युक्त है, शब्दरहित है, इंद्रियों द्वारा अग्राह्य है और आकाररहित है उसे जीव जान।

भावहि पंचपयारं, णाणं अण्णाणणासणं सिग्घं।

भावणभावियसहिओ, दिवसिवसुहभायणो होइ।।65।।

हे जीव! तू अज्ञान का नाश करने वाले पाँच प्रकार के ज्ञान की शीघ्र ही भावना कर। क्योंकि ज्ञानभावना से सहित जीव स्वर्ग और मोक्ष के सुख का पात्र होता है।

पढिएणवि किं कीरइ, किंवा सुणिएण भावरहिएण।

भावो कारणभूदो, सायारणयारभूदाणं।।66।।

भावरहित पढ़ने अथवा भावरहित सुनने से क्या होता है? यथार्थ में भाव ही गृहस्थ पने और मुनिपने का कारण है।

दव्वेण सयलणग्गा, सारयतिरिया य सयलसधाया।

परिणामेण असुद्धा, ण भावसवणत्तणं पत्ता।।67।।

द्रव्य सभी रूप से नग्न रहते है। नारकी और तिर्यंचो का समुदाय भी नग्न रहता है, परंतु परिणामों से अशुद्ध रहने के कारण भाव मुनि पने को प्राप्त नहीं होते।

णग्गो पावइ दुक्खं, णग्गो संसारसायरे भमई।

णग्गो ण लहइ बोहिं, जिणभावणवज्जियं सुइरं।।68।।

जो नग्न जिनभाव की भावना से रहित है वह दीर्घकालतक दुःख पाता है, संसार सागर में भ्रमण करता है और रत्नत्रय को नहीं प्राप्त करता है।

अयसाण भायणेण य, किंते णग्गेण पावमलिगेण।

पेसुण्णहासमच्छरमायाबहुलेण सवणेण।।69।।

हे जीव! तुझे उस नग्न मुनिपने से क्या प्रयोजन? जो कि अपयशका पात्र है, पाप से मलिन है, पैशुन्य, हास्य, मात्सर्य, और माया से परिपूर्ण है।

पयडहिं जिणवरलिंगं, अब्भिंतरभावदोसपरिसुद्धो।

भावमलेण य जीवो बाहिरसंगम्मि मयलियई।।70।।

हे जीव! तू अंतरंग भाव के दोषों से शुद्ध होकर जिनमुद्रा को प्रकट कर-धारण कर। क्योंकि भावदोष दूषित जीव बाह्य परिग्रह संगमें अपने आपको मलिन कर लेता है।

धम्मम्मि णिप्पवासो, दोसावासो य इच्छुफुल्लसमो।

णिप्फलणिग्गुणयारो, णउसवणो णग्गरूवेण।।71।।

जो धर्म से प्रवास करता है--धर्म से दूर रहता है, जिसमें दोषों को आवास रहता है और जो ईखके फूल के समान निष्फल तथा निर्गुण रहता है वह नग्न रूप में रहनेवाला नट श्रमण है--साधु नहीं, नट है।

जे रायसंगजुत्ता, जिणभावरहियदव्वणिग्गंथा।

ण लहंति ते समाहिं, बोहिं जिणसासणे विमले।।72।।

जो मुनि रागरूप परिग्रह से युक्त हैं और जिनभावना से रहित केवल बाह्यरूप में निर्ग्रंथ है--नग्न हैं वे पवित्र जिनशासन में समाधि और बोधि--रत्नत्रय को नहीं पाते है।

भावेण होइ णग्गो, मिच्छत्ताई य दोस चइऊणं।

पच्छा दव्वेण मुणी, पयडदि लिंगं जिणाणाए।।73।।

मुनि पहले मिथ्यात्व आदि दोषों को छोड़कर भाव से-अंतरंग नग्न होता है और पीछे जिनेन्द्र भगवान् की आज्ञा से बाह्यलिंग--बाह्य वेष को प्रकट करता है।

भावो हि दिव्वसिवसुक्खभायणो भाववज्जिओ सवणो।

कम्ममलमलिणचित्तो, तिरियालयभायणो पावो।।74।।

भाव ही इस जीव को स्वर्ग और मोक्ष के पात्र बनाता है। जो मुनि भाव से रहित है वह कर्मरूपी मैल से मलिन चित्र तथा तिर्यंच गतिका पात्र तथा पापी है।

खयरामरमणुयकरंजलिमालाहिं च संथुया विउला।

चक्कहररायलच्छी, लब्भइ बोही सुभावेण।।75।।

उत्तम भावके द्वारा विद्याधर, देव और मनुष्यों के हाथों के अंजलि से स्तुत बहुत बड़ी चक्रवर्ती राजा की लक्ष्मी और रत्नत्रयरूपी संपत्ति प्राप्त होती है।

भावं तिविहपयारं, सुहासुहं सुद्धमेव णायव्वं।

असुहं च अट्टरुद्दं, सुहधम्मं जिणवरिंदेहिं।।76।।

भाव तीन प्रकार के जानना चाहिए--शुभ, अशुभ और शुद्ध। इनमें आर्त और रौद्र को अशुभ तथा धर्म्य ध्यान को शुभ जानना चाहिए। ऐसा जिनेंद्रदेव ने कहा है।

सुद्धं सुद्धसहावं, अप्पा अप्पम्मि तं च णायव्वं।

इदि जिणवरेहिं भणियं, जं सेयं तं समायरह।।77।।

शुद्ध स्वभाववाला आत्मा शुद्ध भाव है, वह आत्मा आत्मामें ही लीन रहता है ऐसा भगवान्ने कहा है। इन तीन भावों में जो श्रेष्ठ हो उसका आचरण कर।

तम्हा उ जो विसुद्धो चेया सो णेव गिण्हए किंचि।

णेव विमुंचइ किंचिवि, जीवाजीवाण दव्वाणं।।407।। समयसार

इस प्रकार जिसका आत्मा अमूर्तिक है वह निश्चय से आहारक नहीं होता, क्योंकि आहार मूर्तिक है तथा पुद्गलमय है। जो परद्रव्य न ग्रहण किया जा सकता है और न छोड़ा जा सकता है वह आत्मा का कोई प्रायोगिक अथवा वैस्रसिक गुण ही है। इससे यह सिद्ध हुआ कि जो विशुद्ध आत्मा है वह जीव अजीव द्रव्य में से कुछ भी न ग्रहण करता है और न कुछ छोड़ता ही है।

लिंग मोक्षमार्ग नहीं--

पासंडीलिंगाणि व, गिहलिंगाणि व बहुप्पयाराणि।

घित्तुं वदंति मूढ़ा, लिंगामिणं मोक्खमग्गोत्ति।।408।।

ण हु होदि मोक्खमग्गो, लिंगि जं देहणिम्ममा अरिहा।

लिंगिं मुइत्तु दंसणणाणचरित्ताणि सेयंति।।409।।

बहुत प्रकार के पाखंडिलिंगों अथवा गृहस्थलिंगों को ग्रहण कर मूढ़ जन ऐसा कहते हैं कि यह लिंग मोक्ष का मार्ग है। परंतु लिंग मोक्षका मार्ग नहीं है, क्योंकि अर्हंत देव भी देहसे निर्ममत्व हो तथा लिंग छोड़कर सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की ही सेवा करते हैं।

ण वि एस मोक्खमग्गो, पाखंडीगिहिमयाणि लिंगाणि।

दंसण णाणचरित्ताणि, मोक्खमग्गं जिणा विंति।।410।।

जो पाखंडी और गृहस्थरूप लिंग है वह मोक्षमार्ग नहीं है। जिनेंद्र भगवान् दर्शन ज्ञान और चारित्र को ही मोक्षमार्ग कहते हैं।

तम्हा जहित्तु लिंगे, सागारणगारएहिं वा गहिए।

दंसणणाणचरित्ते, अप्पाणं जुंज मोक्खपहे।।411।।

इसलिए गृहस्थों और मुनियों के द्वारा गृहीत लिंगोको छोड़कर दर्शन ज्ञान चारित्रस्वरूप मोक्षमार्ग में आत्मा लगाओ।

मोक्षमार्ग निरंतर रत रहो--

मोक्खपहे अप्पाणं, ठवेहि चेव झाहि तं चेव।

तत्थेव विहर णिच्चं, मा विहरसु अण्णदव्वेसु।।412।।

हे भव्य! तू पूर्वोक्त मोक्षमार्ग में आत्मा को लगा, उसी का ध्यान कर, उसी का चिंतन कर, उसी में निरंतर विहार कर। अन्य द्रव्यों में विहार मत कर।

पाखंडीलिंगेसु व, गिहलिंगेसु व बहुप्पयारेसु।

कुव्वंति जे ममत्तं, तेहिं ण णायं समयसारं।।413।।

जो बहुत प्रकार के पाखंडी लिंगों और गृहस्थलिंगों में ममता करते हैं उन्होंने समयसार को नहीं जाना है।

ववहारिओ पुण णओ, दोण्णिं वि लिंगाणि भणइ मोक्खपहे।

णिच्छयणओ ण इच्छइ, मोक्खपहे सव्वलिंगाणि।।414।।

व्यवहार नय तो मुनि और श्रावक के भेद से दोनों ही प्रकार के लिंगो को मोक्षमार्ग कहता है, परंतु निश्चय नय सभी लिंगों को मोक्षमार्ग में इष्ट नहीं करता।

शंकराचार्य की मान्यताएं वर्तमान मानव समाज को इस बात के लिए प्रेरित करती है कि परावलम्बी मत बनो, आत्मनिर्भर बनो।

'अहं ब्रह्मास्मि' से आध्यात्मिक विकास

-आनन्दप्रकाश त्रिपाठी

लगभग बारह सौ वर्ष पूर्व इस धरा पर एक ऐसे तेजस्वी व्यक्तित्व का पर्दापण हुआ था जिन्होंने यह महा उद्घोष किया था कि अनन्त शक्ति का स्रोत सबके अन्दर निहित है। जरूरत है अपनी अन्तः शक्ति पहचानने की। वे थे आदि शंकराचार्य। केरल के छोटे से ग्राम में जन्म लेकर जिन्होंनें समूचे भारत को एक सूत्र में बांधने के

लिए चारों कोनों पर चार मठ की स्थापना की थी। 16 वर्ष की अवस्था तक जिन्होंने सारे भाष्य लिख लिए थे और मात्र 32 वर्ष की अवस्था में आध्यात्म के शिखर का संस्पर्श करते हुए सांसारिक यात्रा सम्पन्न कर ली थी। समस्त करणीय को जन्म कर समूचे विश्व को उन्होंने अचभित कर दिया था। उन्होंने स्वयं को पहचानने पर जोर दिया था।

मोक्ष परम सत्य है

मैं ब्रह्म हूँ, मैं मुक्त हूँ मैं अद्वैत रूप हूँ, मैं चिरंतन सत्य हूँ, मेरी आत्मा ब्रह्म है

शंकराचार्य की मान्यताएँ वर्तमान मानव समाज को इस बात के लिए प्रेरित करती हैं कि परावलम्बी मत बनो, आत्मनिर्भर बनो

अहं ब्रह्मास्मि से आध्यात्मिक विकास

लगभग बारह सौ वर्ष पूर्व इस धरा पर एक ऐसे तेजस्वी व्यक्तित्व का पर्दापण हुआ था जिन्होंने यह महा उद्घोष किया था कि अनन्त शक्ति का स्रोत सबके अन्दर निहित है। जरूरत है अपनी अन्तःशक्ति पहचानने की। वे थे आदि शंकराचार्य। केरल के छोटे से ग्राम में जन्म लेकर जिन्होंने समूचे भारत को एक सूत्र में बाँधने के लिए चारों कोनों पर चार मठ की स्थापना की थी। 16 वर्ष की अवस्था तक जिन्होंने सारे भाष्य लिख लिए थे और मात्र 32 वर्ष की अवस्था में अध्यात्म के शिखर का संस्पर्श करते हुए सांसारिक यात्रा सम्पन्न करते हुए सांसारिक यात्रा सम्पन्न कर ली थी। समस्त करणीय को सम्पन्न कर समूचे विश्व को उन्होंने अचम्भित कर दिया था। उन्होंने स्वयं को पहचानने पर जोर दिया था।

मैं ब्रह्म हूँ

अहं ब्रह्मास्मि का मंत्र देने वाले आदि शंकराचार्य ने स्वयं के आकलन पर बल दिया था। उनका मानना था कि दीनता अन्तःजनित नहीं बाह्य प्रभावित है। उन्होंने हर मानव को यह अहसास कराने की कोशिश की, अन्दर से सभी एक समान है फिर भी सुखी-दुखी, सबल-निर्बल, अमीर-गरीब का भेद दृष्टिगोचर होता है, जबकि सबके अन्दर एक जैसी शक्ति है। कोई अपनी शक्ति को पहचान लेता है और

कोई अपनी शक्ति को पहचानने में विलम्ब करता है। अपनी शक्ति को पहचान कर 'अहं ब्रह्मास्मि' की अनुभूति करने से व्यक्ति का आध्यात्मिक विकास तय है।

आत्मा ही ब्रह्म है

उपनिषदों में एक वाक्य 'तत्त्वमसि' अत्यन्त प्रसिद्ध है। तत् अर्थात् ब्रह्म एवं त्वमं अर्थात् आत्मा है। प्रत्येक व्यक्ति में आत्मा है। आत्मा के बिना किसी के अस्तित्व की कल्पना नहीं की जा सकती। 'सत्यं ज्ञानं अनन्तं ब्रह्म' अर्थात् ब्रह्म सत, ज्ञान और अनन्त रूप है। ब्रह्म सत्य है, असत्य नहीं, बह्म ज्ञान रूप है, अज्ञान नहीं, अनन्त है सीमित नहीं। यह सच्चिदानन्द रूप है। यह सत् है, चित् है और अनन्द रूप है। प्रत्येक व्यक्ति की आत्मा में यह क्षमता है कि वह सच्चिदानन्द ब्रह्मरूप को प्राप्त कर सके। जिस आत्मा से ब्रह्मरूप प्राप्त करने का प्रयत्न होता है वह आत्मा ब्रह्मरूप को प्राप्त करता है। किन्तु जो भय या अन्यान्य कारणों से पुरुषार्थ से वंचित रहते हैं, शंकर के अनुसार वे इस जगत् के व्यामोह में पड़े रहते हैं। शंकराचार्य का संदेश यही है कि अपनी शक्ति को पहचान कर अपनी आत्मा को ब्रह्मरूप देने का प्रयत्न करना चाहिए क्योंकि आत्मा ही ब्रह्म है।

मोक्ष परम सत्य है

मैं ब्रह्म हूँ मैं मुक्त हूँ, मैं अद्वैत रूप हूँ, मैं चिरंतन सत्य हूँ, मेरी आत्मा ब्रह्म है सब कुछ ब्रह्म है, माया या अविद्या का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। शंकराचार्य की ये मान्यताएँ वर्तमान मानव समाज को इस बात के लिए प्रेरित करती है कि परावलम्बी मत बनो, आत्मनिर्भर बनो। मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता स्वयं है। अपने अंदर अनन्त शक्ति का स्रोत निहित है। नित्य एवं अनित्य में विवेक करो, इहलोक और परलोक की विषय वासनाओं से दूर रहो, शम, दम, श्रद्धा, समाधान उपरति और तितिक्षा के द्वारा अपना निर्माण करो।

शंकराचार्य ने जीवन भर प्रत्येक व्यक्ति को यह अहसास कराने की कोशिश की, तुम स्वयं ब्रह्म रूप हो। अतः अहं ब्रह्मास्मि का घोष करते रहो। अपनी पहचान से ही अपने को महान बनाया जा सकता है, यही 'अहं ब्रह्मास्मि' का मूलमंत्र है। इसी के सहारे जीवनरूपी नैया को भी पार किया जा सकता है।

माया अर्थात् अविद्या से बचो

शंकराचार्य माया के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं। माया अज्ञानरूप है। प्रकृति रूप है किन्तु सांख्य की प्रकृति की तरह स्वतन्त्र नहीं है। उन्होंने अज्ञानता के स्वतन्त्र अस्तित्व को स्वीकार न करके एक तरह से जनता जनार्दन को ज्ञान की आराधना पर बल दिया था। माया का शाब्दिक अर्थ करते हुए उन्होंने कहा था 'मा' अर्थात् जो नहीं है 'या' अर्थात् उसे उस रूप में प्रतिपादित कर देना। रस्सी को देखकर सर्प का आभास होना यह माया है, अविद्या है, अज्ञानता है। शंकर के अनुसार माया की दो शक्तियाँ है। ब्रह्मसूत्र शांकर भाष्य उनकी अमर कृति है। जिसमें वे लिखते हैं कि माया अपने आवरण शक्ति के द्वारा सर्प का आरोपण कर देती है। यह आरोपण है, बदलाव नहीं। रस्सी सर्प का रूप नहीं लेती है अपितु सर्प का आभास कराती है। शंकर के शब्दों में यह विवर्त है, परिणाम नहीं। ज्ञान से यह अज्ञान रुपी विवर्त का निराकरण हो जाता है।

शंकराचार्य न बहुतत्त्ववादी है और न द्वैतवादी

कपिल मुनि प्रकृति और आत्मा (पुरुष) के रूप में मूलतः दो सत्ता के अस्तित्व को मानते हैं। भगवान् महावीर भी जीव एवं अजीव दो सत्ता को मानते हैं। भगवान महावीर भी जीव एवं अजीव दो सत्ता को मानते हैं। चार्वाक दर्शन में पृथ्वी, अग्नि, वायु और जल इन चार भौतिक सत्ता के अस्तित्व को स्वीकार किया गया है। गौतम 16 पदार्थ और कणाद सात पदार्थ के अस्तित्व को मानते हैं। शंकराचार्य न बहुतत्त्ववादी हैं और न द्वैतवादी हैं। वह मूलतः अद्वैतवादी है। वे एकमात्र 'ब्रह्म' के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं। 'सर्व खल्विदम्' ब्रह्म का उद्धोष करते हैं। इसी को आत्मा का विकास भी मानते हैं। वे माया को स्वीकार करते हैं। किन्तु स्वतन्त्र शक्ति के रूप में नहीं अपितु माया ब्रह्म की ही शक्ति है। वे प्रतिभासिक, व्यावहारिक एवं पारमार्थिक सत्ता को मानते हैं। सत्ता से उनका तात्पर्य जो तीनों कालों में निहित हो अर्थात् चिरन्तन सत्य हो तो एकमात्र ब्रह्म ही चिरन्तन सत्य है। अज्ञानियों को माया के द्वारा विविधरूपों में इसका प्रतिभास होता है।

एकाग्रचित्त ध्यान से लौकिक से आध्यात्मिक उपलब्धि

(शोध-बोध-खोज-शुद्ध-बुद्ध-आनन्द हेतु
एकाग्रचित्त ध्यान प्रमुख कारण।)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल:1.तुम दिल की... 2.आत्मशक्ति... 3.क्या मिलिए... 4. भातुकली...)

कितनी महान् कितनी पावन है आध्यात्मिक संस्कृति।
संकल्प-विकल्प-संक्लेश त्यागकर आत्मलीनता की प्रवृत्ति।।
इस हेतु त्यागते चक्रवर्ती तक समस्त राज्य वैभव।
अन्तरंग परिग्रह के साथ-साथ बहिरंग राज्य वैभव।।(1)

ख्याति-पूजा-लाभ त्यागकर, करते एकान्त मौन साधना।
निस्पृह-निराडम्बर-वर्चस्व त्यागकर, करते आत्मा की साधना।।
राग-द्वेष-मोह-काम-क्रोध व मान-माया को त्यागकर।
करते आत्मा का शोध-बोध ईर्ष्या-तृष्णा को त्यागकर।।(2)

संकीर्ण पंथ-मत-जाति परम्परा, भेदभाव को त्यागकर।
समता-शान्ति-शुचिता सह बनते सहिष्णु उदार।।
शत्रु-मित्र-भाई-बन्धु परे सोचते, स्व-पर विश्व कल्याण।
मैत्री-प्रमोद-कारूण्य-माध्यस्थ सहित करते पावन आचरण।।(3)

अपेक्षा-उपेक्षा-प्रतीक्षा त्यागकर करते तत्त्वचिंतन।
परनिन्दा-अपमान वैरत्व त्यागकर करते शुद्धात्मा ध्यान।।
इससे मनकी चंचलता घटती, जिससे होता मनस्थिर।
जिससे तनाव-डिप्रेशन घटे, आधि-व्याधि भी होते दूर।।(4)

संतुष्टी-तृप्ति-ऊर्जा बढ़ती, मेधा शक्ति होती प्रबल।
स्मरण-विश्लेषण-संश्लेषण बढे, क्षयोपशम भी होता प्रबल।।
नवीन-नवीन श्रद्धा-प्रज्ञा, स्वयंमेव बढ़ती जाती।
आत्मविशुद्धि से आत्मलीनता बढे, आत्मिक शक्ति बढ़ती।।(5)

घाती नाश से अनन्त ज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्य को पाते।
अघाती क्षय से शुद्ध-बुद्ध होकर अनन्त वैभव भोगते।।
इससे ये शिक्षायें मिलती, ज्ञान-सुख-वीर्यादि पाने हेतु।
एकाग्रचित्त होना अनिवार्य है, अन्य सभी सहयोगी हेतु।।(6)
प्रिज्म के माध्यम से सूर्यरश्मि यथा, केन्द्रिभूत से अग्नि जलती।
तथाहि एकाग्रचित्त होने से, आध्यात्मिक शक्ति जाग्रत होती।।
एकाग्रचित्त ध्यान से यदि, अनन्त वैभव प्राप्त होते।
उस ध्यान से भौतिक लाभ तो, अति सुलभता से मिलते।।(7)
समस्त वैज्ञानिक शोध-बोध में, एकाग्रता ही प्रमुख कारण।
संगीत-कला-काव्य रचना, पढ़ाई आदि में मुख्य कारण।।
तन-मन-स्वस्थ्य-सबल हेतु भी, एकाग्रमन मुख्य कारण।
ऐसी महान् संस्कृति के कारण, 'कनकनन्दी' बना श्रमण।।(8)

सागवाडा 21/04/2018 रात्रि 09.00

(यह कविता बा.ब्र. रोहित (संघस्थ) के कारण बनी।)

सन्दर्भ-

संसार का मूल कारण

रागद्वेष-द्वयी - दीर्घनेत्राकर्षणकर्मणा।
अज्ञानात्सुचिरं जीवः संसाराब्धौ भ्रमत्यसौ।।(11)

Tied to the long rope intwined with [the strand of] attachments and oversions, the soul is whirled about in the ocean of Samsara (transmigratary existence) for immeasurable time, led by ignarance.!

''यत्र रागः पदं धत्ते, द्वेषस्तत्रेति निश्चयः।
उभावेतो समालम्ब्य, विक्रमत्यधिकं मनः।।''

शिष्य प्रश्न करता है कि गुरुदेव! पत्नी आदि इष्ट में राग और शत्रु आदि अनिष्ट

में द्वेष करता हुआ यह जीव क्या आत्मा का हित करता है अथवा उसका कौनसा कार्य होता है? इसका समाधान आचार्य देते हैं -

इष्ट वस्तु के प्रति राग और अनिष्ट वस्तु के प्रति द्वेष करता हुआ यह जीव दुःख के कारणभूत कष्ट से पार होने योग्य द्रव्यादि पंच प्रकार के भवरूपी समुद्र में सुदीर्घ काल तक परिभ्रमण करता है। शक्ति-व्यक्ति रूप से दोनों रागद्वेष की प्रवृत्ति बताने के लिए द्वयी ग्रहण किया गया है और शेष दोष इन दोनों दोषों से प्रतिबद्ध है। कहा भी है -

जहाँ राग अपने पद को धारण करता है वहाँ निश्चय से द्वेष होगा ही। दोनों मिलकर मन को अत्यधिक विकार युक्तकर देते हैं। और कहा भी -

आत्मनि सति परसंज्ञा स्व-पर-विभागात्परिग्रहद्वेषौ।
अनयोः संप्रतिबद्धाः सर्वे दोषाश्च जायंते।।

क्योंकि जहाँ आत्मा में अपनेपन की कल्पना है वहाँ पर संज्ञा रहती ही है। यह मेरा है और यह दूसरे का है इस तरह का स्व और पर का विभाग है तो वहाँ पर नियम से रागद्वेष है और जहाँ पर दोनों रहते हैं वहाँ पर अन्य दोष अनायास ही उग जाते हैं, क्योंकि अन्य दोषों की उत्पत्ति का मूल कारण राग-द्वेष है, सभी दोष राग और द्वेष से परिपूर्ण हैं। जीव की यह राग-द्वेष परम्परा ही संसार परिभ्रमणं का कारण है। इसी से आचार्य कुन्दकुन्द ने संसार भ्रमण के कारण राग-द्वेष ही बतलाए हैं। जैसा कि पंचास्तिकाय के निम्न पद्यों से प्रकट है -

''जो खलु संसारत्थो जीवो तत्तो दु होदि परिणामो।
परिणामोदो कम्मं कम्मादो हवदि गदिसु गदी।।
गदिमधिगदस्स देहो देहादो इन्द्रियाणि जायंते।
ते हिदु विसय गहणं तत्तो रागो वा दोसो वा।।
जायदि जीवस्सेकं भावो संसार - चक्क - वालम्मि।
इदि जिणवरेहिं भणियं अणाइणिहणे सणिहणे वा।।''

जो जीव संसार परिभ्रमण करता है उसके राग-द्वेषादि परिणामों की उत्पत्ति होती रहती है और उनके द्वारा अशुभ कर्मों का आस्त्रव होता रहता है, अशुभ कर्मास्त्रव से कुगति तथा शुभ कर्मास्त्रव से सुगति मिलती है। गतियों में जाने के बाद

शरीर की प्राप्ति होती है और उनसे इन्द्रियों के स्पर्शादि विषयों का ग्रहण होता है और विषय ग्रहण से उनमें अच्छे-बुरे पन की कल्पना जाग्रत होती है अर्थात् राग-द्वेष होने लगते हैं और राग-द्वेष होने से संसार में भ्रमण करना पड़ता है। इसी तरह यह जीव अनादिकाल से सदा संसार में रूलता और दुःख उठाता रहता है। कभी इसे आत्मा के वास्तविक सुख की प्राप्ति नहीं होती। अतएवं राग-द्वेष सर्वथा हेय ही है।

उवओगमओ जीवो मुज्झदि रज्जेदि वा पदुस्सेदि।
पप्पा विविधे विसये जो हि पुणो तेहिं सो बंधो।।175।।

(उवओग मओजीवो) उपयोगमयी जीव (विविधे विसये) नाना प्रकार इन्द्रियों के पदार्थों को (पप्पा) पाकर (मुज्झदि) मोह कर लेता है (रज्जेदि) राग कर लेता है (वा) अथवा (पदुस्सेदि) द्वेष कर लेता है। (पुणो तथा हि) निश्चय से जो वही जीव (तेहि संबंधो) उन भावों से बंधा है, यही भावबंध है। यह जीव निश्चयनय से विशुद्ध ज्ञान दर्शन उपयोग का धारी है तो भी अनादिकाल से कर्मबंध की उपाधि के वश से जैसे स्फटिकमणि उपाधि के निमित्त से अन्य भावरूप परिणमति है। इसी तरह कर्मकृत औपाधिक भावों से परिणमता हुआ इन्द्रियों के विषयों से रहित परमात्म-स्वरूप की भावना से विपरीत नाना प्रकार पंचेन्द्रियों के विषयरूप पदार्थों को पाकर उनमें रागद्वेष मोह कर लेता है। ऐसा होता हुआ यह जीव राग द्वेष मोह रहित अपने शुद्ध वीतरागमयी परमात्मधर्म को न अनुभवता हुआ इन रागद्वेष मोह भावों के निमित्त से बद्ध होता है। यहाँ पर जो इस जीव के यह राग द्वेष मोह रूप परिणाम हैं सो ही भाव बन्ध हैं।

इस गाथा से एवं अमृतचन्द्र सूरी की टीका से यह ज्ञात होता है कि मोह (मिथ्यात्व) राग एवं द्वेष भाव बंध है। भाव बंध के साथ-साथ स्वयं बन्ध स्वरूप ही है, क्योंकि आत्मा अलग है, मोह रागद्वेष अलग है। दो वस्तुओं का संश्लेष रूप से मिल जाना बंध है। मोह राग द्वेष रूप परिणाम से कर्म बन्ध होता है इसलिए बंध के लिए भी कारण है। जैसे द्रव्य कर्म बंध के लिए कारण हो सकता है या नहीं भी हो सकता है परन्तु वैसे भाव कर्म भजनीय नहीं हो सकते हैं। इसलिए द्रव्य कर्म के उदय से पुनः द्रव्य कर्म का बंध हो सकता है या नहीं हो सकता परन्तु भावकर्म से अवश्य द्रव्यकर्म का बन्ध होगा ही।

साधु परमेष्ठी का स्वरूप

दंसणणाणसमग्गंमग्गं मोक्खस्स जो हु चारित्तं।
साधयदि णिच्चसुद्धं साहू सो मुणी णमो तस्स।।54

That sage who practises well conduct which is always pure and which is the path of liberation with perfect faith and knowledge is a Sadhu. Obeisance to him.

जो दर्शन और ज्ञान से पूर्ण, मोक्ष का मार्गभूत और सदा शुद्ध ऐसे चारित्र को प्रकट रूप में साधते हैं, वे मुनि साधु परमेष्ठी हैं उनको मेरा नमस्कार हो।

सीय-गय-वसह-मिय-पसु-मारुद-सूरवहि-मंदरिदु-मणी।
खिदी-उरगम्बर-सरिसा परम-पय-विमग्गया साहू।।(33)
सकल कर्म भूमीषूत्पन्नेभ्यस्यिकालगोचरेभ्यः साधुभ्यो नमः।।

धवला पृ. 5

'णमो लोए सव्वसाहूणं' लोक अर्थात् ढ़ाई द्वीपवर्ती सर्व साधुओं को नमस्कार हो। जो अनंत ज्ञानादि रूप शुद्ध आत्मा के स्वरूप की साधना करते हैं उन्हें साधु कहते हैं। जो पाँच महाव्रतों को धारण करते हैं, तीन गुप्तियों से सुरक्षित हैं, अठारह हजार शील भेदों को धारण करते हैं और चौरासी लाख उत्तर गुणों का पालन करते हैं वे साधु परमेष्ठी होते हैं।

सिंह के समान पराक्रमी, गज के समान स्वाभिमान या उन्नत, बैल के समान भद्र प्रकृति, मृग के समान सरल, पशु के समान निरीह, गोचरी वृत्ति करने वाले, पवन के समान निःसंग या सब जगह बिना रुकावट के विचरने वाले, सूर्य के समान तेजस्वी या सकल तत्वों के प्रकाशक, उदधि अर्थात् सागर के समान गंभीर, मन्दराचल अर्थात् सुमेरु पर्वत के समान परिषह और उपसर्गों के आने पर अकम्प और अडोल रहने वाले, चन्द्रमा के समान शांतिदायक, मणि के समान प्रभापुंज युक्त, क्षिति के समान सर्व प्रकार की बाधाओं को सहने वाले, उरग अर्थात् सर्प के समान दूसरे के बनाये हुए अनियत आश्रय वसति आदि में निवास करने वाले, अम्बर अर्थात् आकाश के समान निरावलम्बी या निर्लेप और सदाकाल परमपद् अर्थात् मोक्ष का

अन्वेषण करने वाले साधु परमेष्ठी होते हैं।

ध्येय, ध्याता, ध्यानादि का स्वरूप

जं किंचिवि चिंतंतो णिरीहवित्ती हवे जदा साहू।
लद्धूणय एयत्तं तदाहु तं तस्स णिच्छयंज्झाणं।।55

When a Sadhu attaining concentration becomes void of conscious effort by meditating of anything whatever, the state is called real meditation.

ध्येय पदार्थ में एकाग्रचित होकर जिस किसी पदार्थ को ध्यावता हुआ साधु जब निस्पृह वृत्ति सब प्रकार की इच्छाओं से रहित होता है उस समय उसका ध्यान निश्चय ध्यान होता है ऐसा आचार्य कहते हैं।

'तदा' उस काल में। 'आहु' कहते हैं। 'तं तस्स णिच्छयं ज्झाणं' उसको, उसका निश्चय ध्यान (कहते हैं)। जब क्या होता है ''णिरीहवित्ती हवे जदा साहु 'जब निस्पृह वृत्तिवाला साधु ध्याता होता है। क्या करता है? 'जं किंचिव चिंतंतो' जिस किसी ध्येयवस्तु स्वरूप का विशेष चिंतवन करता है। पहिले क्या करके? 'लद्धूण य एयत्तं' उस ध्येय में प्राप्त होकर। क्या प्राप्त होकर, एकपने को अर्थात् एकाग्रचिन्ता निरोध को प्राप्त होकर (ध्येय पदार्थ में एकाग्र चिंता का निरोध करके यानि एकचित्त होकर जिस किसी ध्येय वस्तु का चिंतवन करता हुआ साधु जब निस्पृहवृत्ति वाला होता है, उस समय साधु के उस ध्यान को निश्चयध्यान कहते हैं। विस्तार से वर्णन-गाथा में 'यत् किंचित् ध्येयम्' (जिस किसी भी ध्येय पदार्थ को) इस पद में क्या कहा है? प्रारम्भिक अवस्था की अपेक्षा से जो सविकल्प अवस्था है, उसमें विषय और कषायों को दूर करने के लिए तथा चित्त को स्थिर करने के लिए पञ्चपरमेष्ठी आदि परद्रव्य भी ध्येय होते हैं। फिर जब अभ्यास से चित्त का स्थिर हो जाता है तब शुद्ध-बुद्ध एकस्वभाव निज शुद्धात्मा का स्वरूप ही ध्येय होता है। 'निस्पृह' शब्द से मिथ्यात्व, तीनों-वेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, क्रोध, मान, माया और लोभ इन चौदह अंतरंग परिग्रहों से रहित तथा क्षेत्र, वस्तु,

हिरण्य, सुवर्ण, धन, धान्य, दासी, दास, कुप्य और भांड नामक दस बहिरंग परिग्रहों से रहित, ध्यान करने योग्य पदार्थों में स्थिरता और निश्चलता को ध्यान का लक्षण कहा है। 'निश्चय' शब्द से अभ्यास प्रारम्भ करने वाले की अपेक्षा व्यवहाररत्नत्रय के अनुकूल निश्चय ग्रहण करना चाहिये और ध्यान में निष्पन्न पुरुष की अपेक्षा शुद्धोपयोग रूप विवक्षितैकदेश शुद्धनिश्चय ग्रहण करना चाहिये। विशेष निश्चय आगे कहा जाने वाला है।

परमध्यान के कारण

मा चिट्ठह मा जंपह मा चिन्तह किंवि जेण होइ थिरो।
अप्पा अप्पम्मि रओ इणमेव परं हवे ज्झाणं।।56

Do not act, do not talk, do not think, so that the soul may be attached to and fixed in itself. This only is excellent meditation.

हे ज्ञानीजनों! तुम कुछ भी चेष्टा मत करो अर्थात् काय के व्यापार को मत करो, कुछ भी मत बोलो और कुछ भी मत विचारो। जिससे कि तुम्हारी आत्मा अपनी आत्मा में तल्लीन स्थिर होवे, क्योंकि जो आत्मा में तल्लीन होता है वहीं परम ध्यान है।

जिस प्रकार स्थिर जल में बड़ा पत्थर डालने पर जल अस्थिर होता है और छोटा पत्थर डालने पर भी जल अस्थिर होता है भले अस्थिरता में अंतर हो उसी प्रकार किसी भी प्रकार के संकल्प विकल्प, चिंतन, कथन, क्रियादि से आत्मा में अस्थिरता/कम्पन/चंचलता/क्षोभ हो जाता है। इसलिये श्रेष्ठ ध्यान के लिए समस्त संकल्पादि को त्याग करके आत्मा में ही पूर्ण निश्चल रूप में स्थिर होना चाहिये। अतः आचार्यश्री ने कहा है कि -

'मा चिट्ठह मा जंपह मा चिंतह किंवि' हे विवेकी पुरुषों! नित्य निरंजन और क्रिया रहित निज शुद्ध आत्मा के अनुभव को रोकने वाले शुभ-अशुभ चेष्टा रूप काय की क्रिया को तथा शुभ-अशुभ-अंतरंग-बहिरंग रूप वचन को और शुभ-अशुभ विकल्प समूह रूप मन के व्यापार को कुछ भी मत करो।

'जेण होइ थिरो' जिन तीनों योगों को रोकने में स्थिर होता है। वह कौन?

'अप्पा' आत्मा। कैसे होकर स्थिर होता है? 'अप्पम्मिरओ' स्वाभाविक शुद्ध ज्ञान दर्शन स्वभाव जो परमात्मतत्त्व के सम्यक् श्रद्धान-ज्ञान-आचरण रूप अभेद रत्नत्रयात्मक परम ध्यान के अनुभव से उत्पन्न, सर्व प्रदेशों को आनंददायक ऐसे सुख के अनुभव रूप परिणति सहित स्व-आत्मा में रत, तल्लीन, तच्चित्त तथा तन्मय होकर स्थिर होता है। 'इणमेव परं हवे ज्झाणं' यही जो आत्मा के सुख स्वरूप में तन्मयपना है, वह निश्चय से परम उत्कृष्ट ध्यान है।

उस परमध्यान में स्थित जीवों को जो वीतराग परमानंद सुख प्रतिभासित होता है वही निश्चय मोक्षमार्ग का स्वरूप है। वह अन्य पर्यायवाची नामों से क्या-क्या कहा जाता है, सो कहते हैं। वहीं शुद्ध आत्म स्वरूप है, वही परमात्मा का स्वरूप है, वही एक देश में प्रकटतारुप विवक्षित एक शुद्ध-निश्चयनय से निज-शुद्ध-आत्मानुभव से उत्पन्न सुख रूपी अमृत-जल के सरोवर में राग आदि मलों से रहित होने के कारण परमहंस स्वरूप है। परमात्मा ध्यान के भावना की नाममाला में इस एक देश व्यक्ति रूप शुद्ध नय के व्याख्यान को यथासंभव सब जगह लगा देना चाहिये। ये नाम एकदेश शुद्ध निश्चयनय से अपेक्षित है।

वही परब्रह्म स्वरूप है, वही परमविष्णुरूप है, वही परमशिवरूप है, वही परमबुद्धस्वरूप है, वही परमजिनस्वरूप है, वही परम निज-आत्मोपलब्धिरूप सिद्धस्वरूप है, वही निरंजनस्वरूप है, वही शुद्धात्मदर्शन है, वही परम अवस्था स्वरूप है, वही परमात्मा-दर्शन है, वही ध्यान करने योग्य शुद्धपारिणामिक-भावरूप है, वही ध्यान भावनारूप है, वही शुद्ध चारित्र है, वही परम पवित्र है, वही अंतरंग तत्त्व है वही परम तत्त्व है, वही शुद्ध आत्म द्रव्य है, वही परम ज्योति है, वही शुद्ध वही निर्मल स्वरूप है, वही स्वसंवेदन ज्ञान है, वही परमतत्त्वज्ञान है, आत्मानुभूति है, वही आत्मा की प्रतीति है, वही आत्म-संवित्ति आत्म-संवेदन है, वही निज आत्मस्वरूप की प्राप्ति है, वही नित्य पदार्थ की प्राप्ति है, वही परम-समाधि है, वही परम-आनन्द है, वही नित्य आनन्द है, वही स्वाभाविक आनंद है, वही सदानंद है, वही शुद्ध आत्म पदार्थ के अध्ययन रूप है, वही परम स्वाध्याय है, वही निश्चय मोक्ष का उपाय है, वही एकाग्र चिंता निरोध है, वही परमज्ञान है, वही शुद्ध उपयोग है, वही परम-योग समाधि है, वही भूतार्थ है, वही परमार्थ है, वही निश्चय ज्ञान-दर्शन-चारित्र-

तप-वीर्यरूप निश्चय पंचाचार है, वही समयसार है, वह ही अध्यात्मसार है, वही समता आदि निश्चय षट्-आवश्यक स्वरूप है, वह ही अभेद रत्नत्रय स्वरूप है वही वीतराग सामायिक है, वह ही परमशरणरूप उत्तम मंगल है, वही केवल ज्ञानोत्पति का कारण है, वही समस्त कर्मों के क्षय का कारण है, वही निश्चय दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप, आराधना स्वरूप है, वही परमात्मा भावनारूप है, वही परम अद्वैत है, वही अमृतस्वरूप परमधर्मध्यान है, वही शुक्लध्यान है, वही राग आदि विकल्परहित ध्यान है, वही निष्कल ध्यान है, वही परम स्वास्थ्य है, वही परम वीतरागता है, वही परम-समता है, वही परम एकत्व है, वही परम भेदज्ञान है वही परम वीतरागता है, वही परम-समता है, वही परम एकत्व है, वही परम भेदज्ञान है, वही परम समरसी भाव है, इत्यादि समस्त रागादि विकल्प-उपाधि रहित, परम आह्लाद एक-सुख लक्षणमयी ध्यान स्वरूप निश्चय मोक्षमार्ग को कहने वाले अन्य बहुत से पर्यायवाची नाम परमात्म तत्त्व ज्ञानियों के द्वारा जानने योग्य होते हैं।

ध्याता और ध्यान सामग्री

तवसुदवदवं चेदा ज्झाणरहधुरंधरो हवे जम्हा।
तम्हा तत्तियणिरदा तल्लद्धीए सदा होई।।57

As a soul which (practises) presance, (holds). vows and (has knowledge of) scriprures, becomes capable of holding the axles of the chariot of meditation, so to attain that (meditation) be always engaged in these three (i.e. penances, vows and sastras).

क्योंकि तप, श्रुत और व्रत का धारक जो आत्मा है वही ध्यानरूपी रथ की धुरा को धारण करने वाला होता है। इस कारण हे भव्यजनों ! तुम उस ध्यान की प्राप्ति के अर्थ निरंतर तप, श्रुत और व्रत इन तीनों में तत्पर हो।

1. अनशन-उपवास करना, 2. अवमौदर्य-कम भोजन करना, 3. वृत्तिपरिसंख्यान-अटपटी आकड़ी करके भोजन करने जाना, 4. रस परित्याग दूध, दही, घी, तेल, खांड व नमक, इन छहों रसों में से एक दो आदि का त्याग करना, 5. विविक्तशय्यासन-निर्जन और एकांत स्थल में शयन करना, रहना, बैठना, 6.

कायक्लेश-आत्मशुद्धि के लिए आतापन योग आदि करना, यह छह प्रकार का बाह्य तप।

1. प्रायश्चित, 2. विनय, 3. वैयावृत्त 4. स्वाध्याय, 5. व्युत्सर्ग (बाह्यअभ्यन्तर उपाधि का त्याग) और 6. ध्यान, यह छह प्रकार का अंतरंग तप, ऐसे बाह्य तथा आभ्यन्तररूप बारह प्रकार का व्यवहार रूप है। उसी व्यवहार तप से सिद्ध होने योग्य निज-शुद्ध-आत्म-स्वरूप में प्रतपन अर्थात् विजय करने रूप निश्चय तप है। इसी प्रकार आचार व आराधना आदि द्रव्यश्रुत है और उस द्रव्य-श्रुत के आधार से उत्पन्न विकार रहित निज-शुद्ध-संवेदनरूप ज्ञान, भावश्रुत है। तथा हिंसा, अनृत, स्तेय, चोरी, अब्रह्म-कुशील और परिग्रह, इनका द्रव्य व भावरूप से त्याग करना पाँच व्रत है। ऐसे पूर्वोक्त तप, श्रुत और व्रत से सहित पुरुष ध्याता-ध्यान करने वाला होता है। तप, श्रुत व व्रत ही ध्यान की सामग्री है। सो ही कहा है-

''वैराग्यं तत्त्वविज्ञानं नैर्ग्रन्थ्य समचित्तता।
परीषहजयश्चेति पञ्चैते ध्यानहेतवः।।1''

वैराग्य, तत्त्वों का ज्ञान, परिग्रहों का त्याग, साम्यभाव और परिषहों का जीतना ये पाँच ध्यान के कारण है।

शंका- भगवान्! ध्यान तो मोक्ष का कारण है, मोक्ष चाहने वाले पुरुष को पुण्यबंध के कारण होने से व्रत त्यागने योग्य है। व्रतों से पुण्य कर्म का बंध होता है, पुण्यबंध संसार का कारण है, इस कारण मोक्षार्थी व्रतों का त्याग करता है, किन्तु आपने तप, श्रुत और व्रतों को ध्यान की सामग्री बतलाया है। सो यह आपका कथन कैसे सिद्ध होता है?

उत्तर-केवल व्रत ही त्यागने योग्य नहीं है किन्तु पापबंध के कारण हिंसा आदि अव्रत हैं वे भी त्याज्य है। सो ही श्री पूज्यपादस्वामी ने कहा है कि 'अव्रतों से पाप का बंध और व्रतों से पुण्य का बंध होता है, पाप तथा पुण्य इन दोनों का नाश होना मोक्ष है, इस कारण मोक्षार्थी पुरुष पहले अव्रतों का त्याग करता है, वैसे ही अहिंसादि व्रतों को धारण करके निर्विकल्पसमाधि ध्यान रूप आत्मा के परम पद को प्राप्त होकर तदनन्तर एकदेश व्रतों का भी त्याग कर देता है। यह भी पूज्यपादस्वामी ने समाधिशतक

में कहा है, मोक्ष चाहने वाला पुरुष अव्रतों का त्याग करके व्रतों में स्थित होकर परमात्मपद प्राप्त करें और परमपद पाकर उन व्रतों का भी त्याग करें।

विशेष यह है-जो व्यवहाररूप से प्रसिद्ध एकदेशव्रत है, ध्यान में उनका त्याग किया है, किन्तु समस्त त्रिगुप्ति रूप-शुद्ध आत्म-अनुभवरूप निर्विकल्प ध्यान में समस्त शुभ-अशुभ की निवृत्तिरूप निश्चयव्रत ग्रहण किये हैं, उनका त्याग नहीं किया है।'

प्रश्न-प्रसिद्ध अहिंसादि महाव्रत एकदेश रूप व्रत कैसे हो गये?

उत्तर-अहिंसा महाव्रत में यद्यपि जीवों के घात से निवृत्ति है, तथापि जीवों की रक्षा करने में प्रवृत्ति है। इसी प्रकार सत्य महाव्रत में यद्यपि असत्य वचन का त्याग है, तो भी सत्य वचन में प्रवृत्ति है। अचौर्य महाव्रत में यद्यपि बिना दिए हुए पदार्थ के ग्रहण का त्याग है तो भी दिए हुए पदार्थों पीछी, कमंडल, शास्त्र के ग्रहण करने में प्रवृत्ति है। इत्यादि एकदेश प्रवृत्ति की अपेक्षा से ये पाँचों महाव्रत देशव्रत है। इन एकदेश रूप व्रतों का त्रिगुप्ति स्वरूप निर्विकल्प समाधिकाल में त्याग है। किन्तु समस्त शुभ-अशुभ की निवृत्ति रूप निश्चयव्रत का त्याग नहीं है।

प्रश्न- त्याग शब्द का क्या अर्थ है?

उत्तर- जैसे हिंसा आदि पाँच अव्रतों की निवृत्ति है, उसी प्रकार अहिंसा आदि पंचमहाव्रतरूप एकदेशव्रतों की भी निवृत्ति होती है, यहाँ त्याग शब्द का यह अर्थ है।

शंका-इन एकदेशव्रतों का त्याग किस कारण होता है?

उत्तर-त्रिगुप्तिरूप अवस्था में प्रवृत्ति तथा निवृत्तिरूप विकल्प का स्वयं स्थान नहीं है। ध्यान में कोई विकल्प नहीं होता। अहिंसादिक महाव्रत विकल्परूप है अतः वे ध्यान में नहीं रह सकते अथवा वास्तव में यह निर्विकल्प ध्यान ही निश्चय व्रत है क्योंकि उसमे पूर्ण निवृत्ति है। दीक्षा के बाद दो घड़ी 48 मिनट काल में ही भरत चक्रवर्ती ने जो मोक्ष प्राप्त किया है, उन्होंने भी जिन दीक्षा ग्रहण करके, थोड़े काल तक विषय-कषाय की निवृत्ति रूप व्रत का परिणाम करके, तदनन्तर शुद्धोपयोगरूप रत्नत्रयमयी निश्चयव्रत नामक वीतरागसामायिक संज्ञा वाले निर्विकल्प ध्यान में स्थित होकर केवलज्ञान को प्राप्त किया है। परन्तु व्रतपरिणाम के स्तोक काल के कारण लोग

श्री भरत जी के व्रत परिणाम को नहीं जानते। अब उन ही भरत जी के दीक्षा विधान का कथन करते हैं। श्री वर्द्धमान तीर्थंकर परमदेव के समवसरण में श्रेणिक महाराज ने प्रश्न किया हे भगवान्! भरत चक्रवर्ती को जिन दीक्षा लेने के पीछे कितने समय में केवलज्ञान हुआ? श्री गौतम गणधरदेव ने उत्तर दिया-

पञ्चमुष्टिभिरुत्पाट्य त्रोटयन् बंधस्थितीन् कचान्।
लोचानंतरमेवापद्राजन् श्रेणिक केवलम्।।1

हे श्रेणिक!

पंच-मुष्टियों से बालों को उखाड़कर केश लोंच करके कर्म बंध की स्थिति को तोड़ते हुए केशलोंच के अनन्तर ही भरतचक्रवर्ती ने केवलज्ञान प्राप्त कर लिया।

शिष्य का प्रश्न-इस पंचमकाल में ध्यान नहीं है। क्योंकि इस काल में उत्तम-संहनन-वज्रऋषभ नाराच संहनन का अभाव है तथा दश एवं चौदहपूर्व श्रुतज्ञान भी नहीं पाया जाता है?

उत्तर-इस समय शुक्लध्यान नहीं है परन्तु धर्मध्यान है। श्री कुन्दकुन्द आचार्य ने मोक्षप्राभृत में कहा है 'भरत क्षेत्र विषे दुःषमा नामक पंचमकाल में ज्ञानी जीव के धर्मध्यान होय है। यह धर्मध्यान आत्म-स्वभाव में स्थित के होय है। जो यह नहीं मानता वह अज्ञान है।' इस समय भी जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूप रत्नत्रय से शुद्ध जीव आत्मा का ध्यान करके इंद्रपद अथवा लोकांतिकदेवपद को प्राप्त होते हैं और वहाँ से चय कर नरदेह ग्रहण करके मोक्ष को जाते हैं। ऐसा ही तत्त्वानुशासन ग्रंथ में भी कहा है - ''इस समय पंचमकाल में जिनेंद्रदेव शुक्लध्यान का निषेध करते हैं, लेकिन श्रेणी से पूर्व होने वाले धर्मध्यान का अस्तित्व बतलाया है। तथा - जो यह कहा है कि 'इस काल में उत्तम संहनन का अभाव है इस कारण ध्यान नहीं होता' सो यह उत्सर्ग वचन है। अपवादरूप व्याख्यान से तो उपशमश्रेणी तथा क्षपकश्रेणी में शुक्लध्यान होता है और वह उत्तम संहनन से ही होता है, किन्तु अपूर्वकरण 8वें गुणस्थान के नीचे गुणस्थानों में जो धर्मध्यान होता है, वह धर्मध्यान पहले तीन उत्तम संहननों के अभाव होने पर भी अंतिम के (अर्द्धनाराचकीलक और सृपाटिक) तीन संहननों से भी होता है। यह भी उसी तत्त्वानुशासन ग्रंथ में कहा है -

यत्पुनर्वज्रकायस्य ध्यानमित्यागमे वचः।
श्रेणीयोर्ध्यानं प्रतीत्योक्तं तन्नाधस्तान्निषेधकम्।।

''वज्रकाय संहनन करने वाले के ध्यान होता है ऐसा आगम वचन उपशम तथा क्षपक श्रेणी के ध्यान की अपेक्षा कहा है। यह वचन नीचे के गुणस्थानों में धर्मध्यान का निषेधक नहीं है।

अब कदाचित् ऐसा मत हो कि शिवभूति मुनि पाँच समिति और तीन गुप्तियों को प्रतिपादन करने वाले द्रव्यश्रुत शास्त्र को जानते थे और यह भावश्रुत उनके संपूर्ण रूप से था सो ठीक नहीं। क्योंकि यदि शिवभूतिमुनि पाँचसमिति और तीन गुप्तियों का कथन करने वाले द्रव्यश्रुत शास्त्र को जानते थे तो उन्होंने ''मा तुसह मा रुसह'' अर्थात् किसी में राग और द्वेष मत कर इस एक पद को क्यों नहीं जाना? इसी कारण से जाना जाता है कि पाँच समिति और तीन गुप्तियों रूप जो आठ प्रवचन मातायें है उन प्रमाण ही उनके भावश्रुत या और द्रव्यश्रुत कुछ भी नहीं था और वह व्याख्यान हमने ही नहीं कल्पित किया है। किंतु चारित्रसार आदि शास्त्रों में भी यह वर्णन किया हुआ है। सो ही दिखलाते हैं-अन्तर्मुहूर्त के पीछे जो केवलज्ञान को उत्पन्न करते हैं वे क्षीणकषाय नामक 12वें गुणस्थान में रहने वाले निर्ग्रन्थ संज्ञा के धारक ऋषि कहलाते हैं और उनके उत्कृष्टता से ग्यारह अंग चौदह पूर्वपर्यन्त श्रुतज्ञान होता है और जघन्यरीति से पाँच समिति तथा तीन गुप्तियों जितना ही श्रुतज्ञान होता है।

अब कदाचित् तुम्हारा यह मत हो कि मोक्ष के लिए ध्यान किया जाता और मोक्ष इस पंचमकाल में होता नहीं है इस कारण ध्यान के करने से क्या प्रयोजन है? सो यह सिद्धांत भी ठीक नहीं। क्योंकि, इस पंचमकाल में भी परम्परा से मोक्ष है। परम्परा से मोक्ष कैसे है? ऐसा पूछो तो उत्तर यह है कि ध्यानी पुरुष निज शुद्ध आत्मा की भावना के बल से संसार की स्थिति को अल्प करके अर्थात् बहुत से कर्मों की निर्जरा करके स्वर्ग में जाता है और वहाँ से मनुष्य भव में आकर रत्नत्रय की भावना को प्राप्त होकर शीघ्र ही मोक्ष को चला जाता है और जो भरत चक्रवर्ती, सगर चक्रवर्ती, रामचंदजी तथा पांडव अर्थात् युधिष्ठर, अर्जुन और भीम आदि मोक्ष को गये हैं उन्होंने भी पूर्वभव में अभेदरत्नत्रय की भावना से अपने संसार की स्थिति को घटा ली थी, इस कारण उसी भव में मोक्ष गये। उसी भव में सबके मोक्ष हो जाता है ऐसा

नियम नहीं है। ऐसे कहे हुए प्रकार से अल्पश्रुतज्ञान से भी ध्यान होता है यह जानकर क्या करना चाहिए? द्वेष से वध-मारना, बंध-बांधना, छेद-किसी अंग को कटना आदि का और राग से परस्त्री आदि का जो चिंतवन करना है, उसको जिनमत में निर्मल बुद्धि के धारक आचार्य अपध्यान (बुरा ध्यान) कहते है। हे जीव! संकल्परूपी कल्पवृक्ष का आश्रय करने से तेरा चित्त इस मनोरथ सागर में डूब जाता है और उस संकल्प रूपी कल्पवृक्ष का आश्रय करने में यद्यपि इष्टपदार्थ का अनुभव होता है परंतु परमार्थ से तुझको कुछ भी नहीं भासता है, केवल निश्चय से तू पाप का भागी होता है, निर्धनता से दग्ध है मन जिसका ऐसा और संकल्प से ग्रहण किया है भोजन जिसने ऐसा तेरा उत्कृष्ट मनोरथों का धारक चित्त जैसे भोजन को लेने के लिए प्रवृत्त होता है, वैसे ही यदि तू परमात्मा नाम के धारक तेज में वा स्थान में चित्त को करे तो तेरा जन्म कैसे निष्फल हो अर्थात् तेरा जन्म लेना सफल हो जावे। कषायों से मलीन हुआ और कामभोगों में मूर्च्छित हुआ यह जीव कामभोगों की इच्छा करता है और भोगों को भोगता नहीं है तो भी भावों से कर्मों को बांधता है इत्यादि रूप से दुर्ध्यान हो उसको छोड़कर और ''निर्ममत्त्व में स्थित होकर परपदार्थों में जो ममकार (मेरी) बुद्धि है उसका मैं त्याग करता हूँ और मेरे आत्मा ही आलंबन-ध्यान का आधार ही ज्ञान है, आत्मा ही चारित्र है आत्मा ही प्रत्याखान है, आत्मा ही संवर का कारण है आत्मा ही योग है। मेरा ज्ञानदर्शन रूप लक्षण का धारक एक आत्मा ही अविनाशी है और बाकी के सब संयोग रूप लक्षण के धारक बाह्यभाव हैं, उनका वियोग अवश्य होगा।''

अरहंत भगवान् का स्वरूप

णट्ठचदुघाइकम्मो दंसणसुहणाणवीरियमईओ।
सुहदेहत्थो अप्पा सुद्धो अरिहो विचिंतिज्जो।(50)

That pure soul existing in an auspicious body, possessed of (infinite) faith, happiness, knowledge and power which has destroyed and the four Ghatiya karmas, is to be meditated on as an Arhatnt.

चार घातिया कर्मों को नष्ट करने वाला, अनंत दर्शन, सुख, ज्ञान और वीर्य का

धारक, उत्तम देह में विराजमान और शुद्ध ऐसा जो आत्मा है वह अरिहंत है उसका ध्यान करना चाहिये।

अनंत-ज्ञान, अनंत दर्शन अनंत सुख, अनंत वीर्य, अनंत विरति, क्षायिक सम्यक्त्व, क्षयिक दान, क्षायिक लाभ, क्षायिक भोग और क्षायिक उपभोग आदि प्रगट हुए अनंत गुण स्वरूप होने से जिन्होंने यहीं पर सिद्ध स्वरूप प्राप्त कर लिया है, स्फटिकमणि के पर्वत के मध्य से निकलते हुए सूर्य बिंब के समान जो देदीप्यमान हो रहे हैं, अपने शरीर प्रमाण होने पर भी जिन्होंने अपने ज्ञान के द्वारा संपूर्ण विश्व को व्याप्त कर लिया है, अपने ज्ञान में ही संपूर्ण प्रमेय रहने के कारण प्रतिभासित होने से जो विश्वरूपता को प्राप्त हो गये हैं। संपूर्ण आमय अर्थात् रोगों के दूर हो जाने के कारण जो निरामय है, संपूर्ण पापरूपी अंजन के समूह के नष्ट हो जाने से जो निरंजन है और दोषों की कलाएं अर्थात् संपूर्ण दोषों से रहित होने के कारण जो निष्फल है, ऐसे उन अरिहंतो को नमस्कार हो।

सिद्ध भगवान् का स्वरूप

णट्ठट्ठकम्मदेहो लोयालोयस्स जाणओ दट्ठा।
पुरिसायारो अप्पा सिद्धो ज्झाएह लोयसिहरत्थो।।51

Maditate on the Siddha the soul which is bereft of the bodies produced by eight kinds of Karmas, which is the seer and knower of Loka and Aloka, which has a shape like a human being and which stays at the summit of the universe.

नष्ट हो गया है अष्टकर्मरूप देह जिसके, लोकाकाश तथा अलोकाकाश का जानने देखने वाला, पुरुष के आकार का धारक और लोक के शिखर पर विराजमान ऐसा जो आत्मा है वह सिद्ध परमेष्ठी है इस कारण तुम उसका ध्यान करो।

अन्याकाराप्ति हेतु र्न च भवति परो, येन तेनाल्पहीनः।
प्रागात्मोपात्तदेह, प्रतिकृतिरुचिराकार एव ह्यमूर्तः।
क्षुतृष्णाश्वासकास, ज्वरमरणजरानिष्ट योग प्रमोहः
व्यापत्याद्युग्रदुःखप्रभवभवहतेः कोऽस्य सौख्यस्य माता।।6

जिस मनुष्य शरीर से यह जीव मुक्त होता है वह उस जीव का अंतिम शरीर कहलाता है। उसी को चरम शरीर कहते हैं। मुक्त होने पर इस जीव का आकार चरम शरीर के आकार से भिन्न आकार नहीं हो सकता, न तो वह समस्त लोक में व्यापक हो सकता है और न वटवृक्ष के बीज के समान अणुमात्र ही हो सकता है। क्योंकि वहां आकार बदलने का कोई कारण नहीं है। किंतु अंतिम शरीर के परिमाण से कुछ आकार कम होने का कारण है और वह यह है कि संसार परिभ्रमण में इस जीव का आकार कर्मों के उदय से बदलता था। अब कर्मों के नष्ट हो जाने से आकार बदलने वाला कोई कारण नहीं रहा, तथा उसका परिमाण अंतिम शरीर से कुछ कम रहता है। क्योंकि शरीर के जिन-जिन भागों में आत्मा के प्रदेश नहीं है उतना परिमाण घट जाता है। शरीर के भीतर, पेट, नाक, कान आदि भाग ऐसे हैं जिनके पोले भाग में आत्मा के प्रदेश नहीं है। इसलिये आचार्य कहते हैं कि अन्य ऐसे कारण है जिनसे यह सिद्ध हो जाता है कि मुक्त जीव का परिमाण अंतिम शरीर के परिमाण से कुछ कम है। यह कमी आकार की अपेक्षा से नहीं है लेकिन घन फल की अपेक्षा से है तथा मुक्त अवस्था में जीव का आकार अंतिम शरीर के समान अत्यंत दैदीप्यान रहता है।

एव शब्द निश्चयवाचक है और हि शब्द स्पष्टता सूचित करने के लिए है, इससे सिद्ध होता है कि मुक्त अवस्था में जीव का आकार अंतिम शरीर के आकार है और उनका परिमाण अंतिम शरीर से कुछ कम है। मुक्त जीव का यह आकार और यह परिमाण निश्चित है, स्पष्ट है। इसके सिवाय अन्य कोई आकार तथा अन्य कोई परिमाण हो नहीं सकता। इसके सिवाय मुक्त अवस्था में वह शुद्ध आत्मा अमूर्तिक रहता है। रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द रूप पुद्गल परिणति को मूर्ति कहते हैं। ऐसी मूर्ति जिसके न हो उसको अमूर्ति कहते है। सिद्धों के रूप, रस, गंध, स्पर्श, रूप मूर्ति नहीं है। इसलिये वे अमूर्ति स्वरूप हैं। अथवा अमूर्ति भी पाठ है जिनके रूप रसादि स्वरूप मूर्ति को उनको मूर्त कहते हैं तथा जिनके ऐसी मूर्ति न हो उनको अमूर्त कहते हैं। उन सिद्ध परमेष्ठी की परिणति रूप, रस, गंध स्पर्श स्वरूप नहीं है इनसे सर्वथा रहित है इसलिए वे अमूर्त हैं।

इसके सिवाय वे भगवान् क्षुधा, तृषा, श्वास, कास, दमा ज्वर, मरण, जरा

(बुढ़ापा) अनिष्ट योग, मोह अनेक प्रकार की आपत्तियाँ उत्पन्न होती हैं ऐसे संसार के परिभ्रमण को उन सिद्ध भगवान् से नाश कर दिया है। अथवा कर्मों के नाश होने से वह संसार अपने आप नष्ट हो गया है। उस संसार के नष्ट होने से सिद्धो को अनंत सुख की प्राप्ति हो गई है, उस सुख का परिमाण भला कौन कर सकता है? अर्थात् कोई नहीं। सिद्धों का सुख अनंत है उनका परिमाण कभी किसी से नहीं हो सकता ।

सिद्धों का सुख

आत्मोपादानसिद्धं स्वयमतिशयवद्वीतवाधं विशालं।
वृद्धिह्नासव्यपेतं, विषयविरहितं, निः प्रतिद्वंदभावम्।।
अन्यद्रव्यानपेक्षं, निरुपममितं, शाश्वतं सर्वकालं।
उत्कृष्टानन्तसारं, परमसुखमतस्तस्य सिद्धस्यजातम्।।(7)

भगवान् सिद्ध परमेष्ठी के जो सुख होता है वह केवल आत्मा से ही उत्पन्न होता है। अन्य किसी प्रकृति आदि से उत्पन्न नहीं होता इसीलिये वह सुख अनित्य नहीं होता वह सुख स्वयं अतिशय युक्त होता है। समस्त बाधाओं से रहित होता है। अत्यंत विशाल या विस्तीर्ण होता है। आत्मा के समस्त प्रदेशों में व्याप्त होकर कभी घटता है न बढ़ता है। वृद्धि और ह्रास दोनों से रहित हो सांसारिक सुख विषय से उत्पन्न नहीं होता किन्तु सब प्रकार के विषयों से रहित स्वाभाविक होता है। सुख का प्रतिद्वंदी दुःख है। उन दुःखों-से मिला हुआ है। परंतु सिद्धो का सुख सदा सुख रूप ही रहता है, जीवों का सुख, सातावेदनीय कर्म के उदय से होता है तथा पुष्पमाला चंदन, भोजन आदि ब्राह्य सामग्री से उत्पन्न होता है परंतु सिद्धो का सुख उपमा रहित है, अनंत है। विनाश रहित है इसीलिये वह सदा बना रहता है। वह सुख परम सुख कहलाता है अर्थात् इन्द्रादिक के सुख से भी अत्यंत अतिशय युक्त वा बढ़कर है। जिन सिद्धों का लक्षण वा उनके गुण पहले निरूपण कर चुके हैं और जो लोकाकाश के अग्रभाग पर विराजमान हैं, ऐसे सिद्धों का अनंत सुख ऊपर लिखे अनुसार होता है। अभिप्राय यह है कि सिद्धों का सुख संसारी जीवों के सुखों से अत्यंत विलक्षण है। सिद्धों का सुख वास्तविक सुख है और इसीलिये वह सर्वोत्तम है।

निराकार ध्यान

-स्वामी यतीश्वरानन्द

अद्वैत का लक्ष्य सुदूर हैः

निम्नोक्त संस्कृत श्लोक में हिन्दुओं की उपासना का यथार्थ भाव बड़ी अच्छी तरह व्यक्त किया गया हैः

रूपं रूपविवर्जितस्य भवतो ध्यानेन यत्कल्पितं,
स्तुत्यानिर्वचनीयताखिलगुरो दूरीकृतं यन्मया।
व्यापित्वञ्च निराकृतं भगवतो यत्तीर्थयात्रादिना,
क्षन्तव्यं जगदीश तद्विकलतादोषत्रयं मत्कृतम्।।

अर्थात् ''हे प्रभो!'' आप रूपविवर्जित हैं, लेकिन मैंने ध्यान में आपके रूप की कल्पना की है; हे जगद्गुरु! स्तुति द्वारा आपकी अनिर्वचनीयता की उपेक्षा की है; तीर्थ-यात्रादि द्वारा आपके सर्वव्यापित्व का निराकरण किया है; हे जगदीश! विकृति के इन दोषत्रय को कृपया क्षमा करें।''

सारी उपासनाओं के पीछे यह मूल सिद्धान्त है कि सभी नामों, रूपों और प्रतीकों के पीछे एक रूपगुणातीत परम ज्योति विद्यमान है। आध्यात्मिक जीवन अद्वैत की अनुभूति रूपी छत तक जाने वाली एक सोपानपंक्ति के समान है। चूँकि हममें से अधिकांश अभी भी सीढ़ी पर ही हैं, छत पर नहीं, अतएव हमें सोपानों पर अधिक ध्यान देना चाहिए, लेकिन सदा याद रखना चाहिए कि हम सीढ़ी पर खड़े कहाँ हैं।

बहुत से लोग अद्वैत-विषयक कुछ पुस्तकें पढ़कर प्रायः अद्वैतपरक ध्यान करना चाहते हैं। बहुत से लोग अनन्त की चर्चा करते हैं, लेकिन व्यावहारिक स्तर पर इससे उन्हें क्या लाभ होता है? अधिकांश लोग इसे बीच में ही छोड़ देते हैं; उन्हें कुछ नहीं मिलता। कुछ दूसरे लोगों को महीनों अथवा वर्षों तक व्यर्थ परिश्रम के बाद समझ में आता है कि अद्वैत उनकी समझ से बाहर है। लोग यह भूल जाते हैं कि अद्वैत प्रत्यक्ष अनुभूति की अवस्था हैं। तुम्हें बौद्धिक दृष्टि से जो रुचिकर लगता है, वह महत्त्वपूर्ण नहीं है; बल्कि महत्त्वपूर्ण वह है, जो तुम सचमुच कर सकते हो। केवल पुस्तकें पढ़कर ही हमें कुछ भी करने का प्रयास नहीं करना चाहिए।

सच्चा आध्यात्मिक-अनुभूतिसम्पन्न द्वैतवादी अनुभूतिरहित अद्वैतवादी से अनन्तगुना अच्छा है। जब तक सूक्ष्मतम रूप में भी ध्याता, ध्यान और ध्येय विद्यमान है, तब तक द्वैत है। अतः फिलहाल ''एकमेवाद्वितीयम्'' की चिंता करने की आवश्यकता नहीं है। अभी एकत्व में विलीन होने का प्रश्न नहीं उठता। अधिकांश लोगों को उस अवस्था को प्राप्त करने में करोड़ों वर्ष लगेंगे।

अनेकता में एकता

लेकिन बहुत्व को स्वीकार करना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। समस्त नानात्व के बीच हमें उसको नहीं भूलना चाहिए, जो हमारा चरम लक्ष्य है। हम जिन ईश्वरीय रूपों का ध्यान करते हैं उनका आधार अनन्त, पूर्ण परमात्मा होना चाहिए। भक्तिमार्ग में साधक अपने इष्टदेवता पर अपना मन और भावानाएँ केन्द्रित करता है। अधिकांश लोगों को ध्यान के लिये ऐसे ईश्वरीय रूपों के सम्बल की आवश्यकता होती है। लेकिन यह नहीं भूलना चाहिए कि ये सारे ईश्वरीय रूप उस अनन्त सत्ता की विशेष अभिव्यक्तियाँ मात्र हैं। तुम्हारी आत्मा और ईश्वरीय रूप वेदान्तोक्त ब्रह्म नामक अनन्त सत्ता के साथ एकरूप हैं लेकिन ईश्वरीय रूप ब्रह्म की विशेष अभिव्याक्ति हैं।

महान् अवतारों और पैगम्बरों में ईश्वरीय दिव्य ज्ञान, प्रेम, पवित्रता आदि की अपूर्व अभिव्यक्ति दिखाई देती है। हमारे क्षुद्र व्यक्तित्व के केन्द्र में भी यही ज्ञान, प्रेम, पवित्रता आदि विद्यमान हैं, लेकिन वे सब अज्ञान से आवरित हैं। हमारा व्यक्तित्व सत्य और मिथ्या का मिश्रण है।

प्रकाश का स्फुलिंग अपने प्रकाशरूप को भूलकर आवरण के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेता है, और इसी से जीवन की सारी समस्याएँ एवं दुःख पैदा होता है। यदि तुम ऐसी कल्पना करो कि तुम अनन्त चैतन्यसिन्धु में निमग्न हो, तो तुम्हें अनुभव होगा कि तुम्हारा व्यक्तित्व वस्तुतः एक सूक्ष्मतर इकाई है, जो स्थूल हो गया है।

निराकार ध्यान के प्रकार

फिर भी किसी दैवी पुरुष का ध्यान करने के बदले तुम चाहो तो सागर,

आकाश अथवा अनन्त प्रकाश जैसे परमात्मा के किसी अपुरुषविध प्रतीक का ध्यान कर सकते हो। यह निराकर ध्यान है, लेकिन याद रखो, यह अद्वैतवाद नहीं है, केवल उसकी एक सीढ़ी है। ज्योतिसागर का ध्यान और दिव्य महापुरुष का ध्यान दोनों द्वैतात्मक ध्यान है, लेकिन पहला दूसरे की अपेक्षा अद्वैत के अधिक निकट है और मैं पुनः कहता हूँः अनुभूति सम्पन्न द्वैतवादी अनुभूति रहित अद्वैतवादी से अनन्तगुना श्रेष्ठ है।

निराकार ध्यान करते समय सोचो कि तुम्हारा उपास्य महान ज्योतिखण्ड है तथा तुम क्षुद्र ज्योतिकण हो तथा दोनों ही अनन्त विराट् ज्योतिसागर में निमग्न हो। प्रारम्भ में हम न्यूनाधिक मात्रा में केवल देह का ही चिंतन करते हैं और हमारे तथा सभी वस्तुओं के आधार के रूप में विद्यमान चैतन्य सत्ता की हमारी धारणा अस्पष्ट ही होती है। बाद में हम चैतन्य सत्ता को देह से अधिक महत्त्व देने लगते हैं और सभी देहों में विद्यमान तथा उन्हें जीवन प्रदान करने वाले भगवत्स्फुलिंग को देखने का प्रयत्न करते है।

भक्त के लिये निराकार ईश्वर को साकार ईश्वर के अनुरूप प्रेम करना सम्भव है। यह केवल व्यक्तिगत अभिरुचि का प्रश्न है। इसमें तीन स्तर होते हैः

1. सगुण साकार, 2. सगुण निराकार, 3. निर्गुण निराकार।

साधना के दौरान हमें अपनी स्थिति के अनुरूप एक निश्चित दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। कुछ भक्त एक विशेष मनोभाव में सगुण साकार को, और दूसरी मनःस्थिति में सगुण निराकार को ग्रहण करते हैं। हमारा मनोभाव चाहे कुछ भी रहे, प्रत्येक स्तर पर हमें परमात्मा से संस्पर्श बनाए रखना चाहिए। यह आन्तरिक सम्पर्क ध्यान के निराकार या साकार से अधिक महत्त्वपूर्ण है। श्रीरामकृष्ण को निम्नोक्त श्लोक बहुत प्रिय थाः

देहबुद्ध्या तु दासोऽहं जीव बुद्ध्या त्वदंशकः।
आत्मबुद्ध्या त्वमेवाहमिति मे निश्चिता मतिः।।

अर्थात्, ''जब मै स्वयं को देह समझता हूँ, तब मैं तुम्हारा दास हूँ, तुम मेरी इच्छा को नियन्त्रित करने वाले स्वामी हो; जब मैं अपने को देह से पृथक् जीव

समझता हूँ, तब मैं अंश हूँ, तुम पूर्ण हो और जब मैं देह, मन और जीव से भिन्न अन्तरस्थ चैतन्य को अपनी सत्ता के रूप में स्वीकार करता हूँ, तब मैं यह अनुभव करता हूँ कि तुम और मैं एक ही है। ''

कुछ साधक केवल एक प्रकार के ध्यान से संतुष्ट नहीं होते। वे अनन्त का सागर के रूप में चिंतन करते हैं, जिसमें उपासक और उपास्य क्रमशः बुदबुदे और लहर के समान हैं। भक्त अपनी अपेक्षा भगवान का चिंतन अधिक करता है। उसके बाद वह अपने और उपास्य में विद्यमान सत्ता का चिंतन करने का प्रत्यत्न करता है। अगले चरण में लहर और बुदबुदा दोनों अनन्त सागर में विलीन हो जाते हैं।

जब तक व्यक्तित्व के प्रति सूक्ष्मतम आसक्ति भी रहेगी, तब तक बार-बार जन्म ग्रहण करना पडेगा। इस आसक्ति के नष्ट होने पर जल के कण सागर के साथ एक हो जाते हैं। लेकिन अभी सागर में लीन होने की चिंता करने की आवश्यकता नहीं है। उसको बहुत समय लगेगा।

स्वामी विवेकानन्द जब अमेरिका में थे, तो उनसे एक महिला ने कहा कि वह ब्रह्म में विलीन होने के विचार से भयभीत हो जाती है। स्वामीजी ने मुस्कुराते हुए कहा कि इसमें भय का कोई कारण नहीं है। बिन्दु के सागर में पहँचने पर सूर्य किरणें उसे पुनः उठाकर पृथिवी पर ले आएँगी। जीव के ब्रह्म में विलीन होने का कोई आसन्न खतरा नहीं है। अधिकांश लोगों को इसमें करोड़ों वर्ष लग सकते हैं। उसके पूर्व में अपने साथियों के बीच कर्म करने तथा उनके सुख-दुःख में हाथ बाँटने के लिये बार-बार जन्म ग्रहण करते रहेगे।

मृत्यु के पूर्व हमें सत्य की कम से कम कुछ झलक प्राप्त कर लेनी चाहिए और आगे बढ़ जाना चाहिए। यदि इस जन्म में सफल न होओ, तो पुनः प्रारम्भ करो; एक जन्म में प्रगति करते रहो, जब तक लक्ष्य प्राप्त न हो जाए।

स्वयं से प्रारम्भ करो

हम चाहे भगवान् के किसी रूप विशेष का ध्यान करें या निराकार का, सबसे महत्त्वपूर्ण बात अपने देहात्मबोध को कम करना है। कुछ लोग साकार उपासना की,

मिट्टी की मूर्ति की पूजा की निंदा करते हैं लेकिन साथ ही अपनी देह के प्रति आसक्त रहते हैं। बहुत से लोगों के लिये उनकी अपनी देह संसार की सर्वाधिक पूजनीय वस्तु होती है। ऐसी-देह उपासना निकृष्टतम पौत्तलिकता है। और इस पर भी इतने अधिक लोग स्वयं को इसलिए श्रेष्ठ समझते है कि वे ''मृण्मय मूर्तियों'' की पूजा नहीं करते। कुछ लोग ईश्वर के स्वरूप का विश्लेषण करना चाहते है, लेकिन वे स्वयं का विश्लेषण करने के अनिच्छुक हैं। निराकारता और अवैयक्तिकता के सिद्धान्त को ईश्वर पर लागू करने के पूर्व, उसे स्वयं पर लागू करो। यह एक महत्त्वपूर्ण नियम है कि हमारी सत्य विषयक मान्यता हमारी अपने सम्बन्ध में मान्यता पर निर्भर करती है। अतः निराकार समझना चाहिए। ईश्वर को व्यक्तित्व विहीन करने का प्रयास करने के पूर्व हमें अपने व्यक्तित्व को नकारना चाहिए। अधिकांश लोग यह नहीं करते। इसीलिए उन्हें अपने अवैयक्तिक ध्यान से कोई लाभ नहीं होता। बहुत से लोग निराकार ध्यान के नाम पर मानसिक जड़ता को प्रश्रय देते हैं। अपटु मस्तिष्क से सभी रूपों को दूर करने के प्रयास से प्रायः निद्रा आ जाती है या अच्छे के बदले बुरे विचार मन में उठने लगते हैं। अतः निराकार ध्यान का अभ्यास करने के लिये पहले स्वयं से प्रारम्भ करो। स्वयं को आत्मा, अन्तर-ज्योति समझो।

देह को भीतर की ओर से देखने का प्रयत्न करने, तथा उसे आत्मचैतन्य व्याप्त सोचने से हमारा व्यक्तित्व बोध निश्चित रूप से कम होता है, भले ही तत्सम्बन्धी विचार और भावानाएँ पूरी तरह दूर न भी हों। पुनः भीतर से देखने की इस प्रकिया को उन रूपों पर प्रयुक्त करने का प्रयत्न करो जो मन में उठकर समस्याएँ पैदा करते हैं। अपना और दूसरों का बाह्य रूप इच्छाओं एवं वासनाओं से सम्बधित है, जो इस अन्तर दृष्टि को स्वीकार करते ही लुप्त होता सा प्रतीत होता है। मुख की हमारी देहचेतना में महत्त्वपूर्ण भूमिका है। चेहरे को भी भीतर से देखा जा सकता है। प्रत्येक रूप के प्रति समादर का भाव रखने से उसमें परमात्मा को देखना हमारे लिये आसान हो जाता है।

पहले हमें व्यक्तित्व का विकास करना है और उसके बाद उसे मानो अवैयक्तिक सत्ता में विलीन करना है। तब इस अवैयक्तिक सत्ता से एक ऐसे विशुद्ध व्यक्तित्व की उत्पत्ति होगी, जिसे अपने मूल कारण का सदा भान होगा और जो सदा उस पर निर्भर होगा। यह हमारी उदात्तीकृत आत्मा है। यही परमात्मा का सच्चा यंत्र बनती है।

हमें आत्मा के अनुरूप सोचना सीखना चाहिए। देह सम्बन्धी बातों पर कभी बल मत दो। स्वयं को कभी भी स्त्री या पुरुष मत सोचो। इस निगोड़े व्यक्तित्व बोध को, इस अर्थहीन अहंकार को शंकराचार्य के कुछ शानदार श्लोकांशों के आक्रमण द्वारा ध्वंस कर दो। यथाः

मन-बुद्धि-अहंकार-चित्त नहीं हूँ मैं, श्रोत्र-जिव्हा-घ्राण-नेत्र नहीं हूँ मैं।।
व्योम-भूमि-तेज-वायु नहीं हूँ मैं, चिदानन्दरूप शिव हूँ, शिव हूँ मैं।
मैं नु पुरुष हूँ, न स्त्री, न षण्ड मैं प्रकृष्ट-प्रकाश स्वरूप शिव हूँ।
मैं न मनुष्य हूँ, न देव-यक्ष, न ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र हूँ।
न ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थी अथवा भिक्षु हूँ।
मैं निजबोधस्वरूप आत्मा हूँ।
निष्ठापूर्वक ''अहं ब्रह्मास्मि'' ''अहं ब्रह्मास्मि'' की आवृत्ति करते रहो।

सांसारिक उपलब्धि परे मेरी आत्मोपलब्धि

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : 1.मन रे!... 2. सायोनारा...)

'कनक'! तू स्व-आत्मविशुद्धि कर ऽऽऽ
इस हेतु सभी साधना कर...अन्य प्रपंच सभी त्याग कर ऽऽऽ (ध्रुव)
आत्मविशुद्धि से मिलेगी मुक्ति...जिससे मिलेगी अनन्त शान्ति/(सुख)ऽऽऽ
शान्ति ही तेरा सर्वोच्च लक्ष्य...यह ही स्व-शुद्ध स्वरूप ऽऽऽ
शुद्ध से ही मिले बुद्धत्व-आनन्द ऽऽऽ (1)

इस हेतु ही राजा-महाराजा चक्रवर्ती...विद्वान्-लेखक-कवि-विद्याधर ऽऽऽ
समस्त वैभव व सांसारिक उपलब्धि...त्यागकर बनते निस्पृह सन्त ऽऽऽ
त्यागते ख्याति-पूजा-लाभ वर्चस्व ऽऽऽ (2)

जाइसविज्जामंत्तोपजीवणं वायवस्स ववहारं।
धणधण्ण पडिग्गहणं समणाणं दूसणं होइ।। (109)

जे पावारंभरया कसायजुत्ता परिग्गहासत्ता।
लोयववहार पउरा ते साहू सम्म उम्मुक्का।। (110)

चम्मट्ठि मंसलव लुद्धो सुणहो गज्जए मुणिं दिट्ठा।
जह पाविट्ठो सो धम्मिट्ठं दिट्ठा सगीयट्ठो।। (111)

ण सहंति इयरदप्पं थुवंतिअप्पाण अधमाहप्पं।
जिब्भणिमित्तं कुणंति ते साहू सम्म उम्मुक्का।। (112)

ऋद्धि-सिद्धि सम्पन्न गणधर आदि...न करते ऋद्धियों का उपयोग/(दुरुपयोग)
आत्मविशुद्धि विश्वकल्याण हेतु...करते ध्यान-अध्ययन उपदेश ऽऽऽ
होते ख्याति-पूजा-वर्चस्व रिक्त ऽऽऽ (3)

उनका आदर्श तू पालन कर...त्यागो मंत्र-यंत्र-टोना-टोटका ऽऽऽ
धन-जन-मान व भौतिक निर्माण...लौकिक समस्त भाव व काम ऽऽऽ
इससे होता सम्यक्त्व नाश ऽऽऽ (4)

प्राचीन-अर्वाचीन अनेक दृष्टान्त...तुझे तो स्पष्ट है अवगत ऽऽऽ
अनेक कुख्यात हर धर्म के सन्त...पाते हैं अपमान से जेल तक ऽऽऽ
वे क्या कर सकते स्व-पर-हित ऽऽऽ (5)

अनन्तानन्त जीव हुए हैं सिद्ध...जिन के नाम तक नहीं प्रसिद्ध ऽऽऽ
तथापि वे शुद्ध-बुद्ध-आनन्द...चक्री-इन्द्र-गणधर से भी पूज्य ऽऽऽ
सिद्ध बनना ही 'कनक' का लक्ष्य ऽऽऽ (6)

सागवाडा 26/04/2018 रात्रि 09.10

संदर्भ-मनोदंड कायदंड अर्थात् मन वचन काय की अशुभ प्रवृत्ति का होना। मिथ्याशल्य मायाशल्य निदान शल्यों सहित, ईर्षावान तथा परस्पर में बात-बात में झगड़ा करने वाला और किसी भी चीज की याचना करने में कुशल है ऐसा साधु दीर्घ संसार में जन्म मरण करते हुए भ्रमण करता है। **(रयण.)**

सम्यक्त्व-रहित साधु कौन

देहादिसुअणुरत्ता विसयासत्ता कसाय संजुत्ता।
अप्पसहावे सुत्ता ते साहू सम्मपरिचत्ता।।106।।

अर्थः-जो साधु आत्मस्वभाव के विषय में अनभिज्ञ हैं, अपने शरीर को सुंदर

कीर्तिमान बलवान बनाने में आसक्त है, पांचो इन्द्रियों के भोगो में आसक्त रहते हैं, सदा क्रोधादि कषायों में रहते है, आत्म स्वभाव में जाग्रत नहीं है अर्थात् आत्मस्वरूप का विचार ही नहीं है, ऐसे मुनि सम्यक्त्व रहित होते हैं।

जैन धर्म के विराधक

आरंभे धणधाण्णे उवयरणे कंक्खिया तहा सूर्या।
वयगुणसील विहीणा कसाय-कलहप्पिया मुहरा।।107।।

अन्वयार्थः (साहू) जो साधु (आरंभे) आरंभ करने में (धण धाण्णे) धन धान्यादि में (उवयरणें) उपकरणों में (कंक्खिया) इच्छा रखते हैं काक्षा करते हैं (तहा) तथा (असूया) ईर्षाभाव करने वाले (वयगुणसील विहीणा) व्रत गुणशील से रहित हैं (कसाय) कषाययुक्त हैं (कलहप्पिया) कलहप्रिय हैं (मुहरा) वाचाल (संघविरोह कुसला) संघ का विरोध करने में कुशल (सच्छंदा) स्वच्छंद-मन मुताबिक (रहिय गुरुकुला) दीक्षा गुरु की परंपरा को न मानने वाला आज्ञा रहित (रायाई सेवया) राजादि लोगों की सेवा करने वाला (जिणधम्म विराहिया) वह जिनधर्म की विराधना करने वाला है।

श्रमणों को दूषित करने योग्य कार्य

जोइसविज्जामंत्तोपजीवणं वायवस्स ववहारं।
धणधण्णं पडिग्गहणं समणाणं दूसणं होइ।।108।।

अर्थः-श्रमण मुनि ज्योतिष बताकर, मंत्र, तंत्र, विद्या आदि देकर या बताकर अपने जीवन को चलाते हैं। धन धान्य आदि परिग्रह इकट्ठा करते हैं। भूत बाधा, प्रेत, मंत्रादि द्वारा व्यवहार करते हैं, यह मुनि जनों के लिए बाधाकारी है, दूषण है, यह मुनिधर्म-यतिमार्ग नहीं है।

सम्यक्त्वविहीन मुनि

जे पावारंभरया कसायजुत्ता परिग्गहासत्ता।
लोयववहार पउरा ते साहू सम्म उम्मुक्का।।110।।

अर्थः-जो साधु पापरूप कार्यों में, आरंभादि कार्यों में लीन रहते हैं। क्रोध, मान, माया, लोभ इन कषायों से सहित है। परिग्रह में सदा लगे रहते हैं। लोक व्यवहार में खूब प्रवीण हैं, ऐसे साधु सम्यक्त्व रहित होते हैं।

पापी जीव

चम्मट्ठि मंसलव लुद्धो सुणहो गज्जए मुणिं दिट्ठा।
जह पाविट्ठो सो धम्मिट्ठं सगीयट्ठो।।111।।

अर्थः-जिस प्रकार चर्म मांस हड्डी खाने वाला लोलोपी कुत्ता अन्य कुत्तो को देखकर भौंकता है और इतना ही नहीं बल्कि धर्मात्मा पुरुष, मुनिजन इनको भी देखकर भौंकता है। इसी प्रकार दुर्जन अधर्मी पापी लोग भी धर्मभक्त, दानी, गुणी पुरुषों को देखकर तथा मुनि त्यागी जनों को देखकर उनका तिरस्कार करते हैं, कुछ का कुछ विरोध में बोलते हैं।

सम्यक्त्व से विमुख जिव्हा इन्द्रिय लोलुपी

ण सहंति इयरदप्पं थुवंतिअप्पाण अप्पमाहप्पं।
जिब्भणिमित्तं कुणंति ते साहू सम्म उम्मुक्का।।112।।

अन्वयार्थः-(इयरदप्पं) जो साधु दूसरे साधुओ के यश कीर्ति को (ण सहंति) सहन नहीं करते हैं (अप्पाण मप्पमाहप्पं) अपनी आत्म प्रशंसा कर लेते हैं (थुवंति) स्तुति कर लेते हैं (जिब्भणिमित्तं) जिव्हा इंन्द्रिय के लोलुपता के कारण (कुणंति) प्रयत्न करते हैं (ते साहू) वे साधु (सम्मउमुक्का) सम्यक्त्व से विमुख है।

मोक्षमार्गी साधु

भुंजेइ जहालाहं लहेइ जइ णाणसंजम णिमित्तं।
झाणाज्झयण णिमित्तं अणियारो मोक्खमग्ग रओ।।113।।

अर्थः-निर्ग्रंथ दिगम्बर साधु-मुनि आहार चर्या गोचरी-भ्रामरी वृत्ति आदि करते समय अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार विधि मिले वहां खड़े होते हैं और श्रावक के द्वारा मन

वचन काय की शुद्धि तथा व्रत नियम को बतलाते हैं और नव विध भक्ति द्वारा अपने घर में प्रवेश कराते हैं तभी मुनिराज उस श्रावक के घर में जैसा भी शुद्ध प्रासुक आहार श्रावक अपने लिए बनाया है उस भोजन को चाहे राजा सेठ साहुकार हो या गरीब हो उनके यहां जाकर मौन से शांति से निरीच्छापूर्वक सरस नीरस भी हो उसे लेते हैं और तुंरत जहां पर-जंगल, धर्मशाला, मंदिर, बगीचा में रूकना है वहां चले जाते हैं।

मेरे आदर्श तीर्थंकर देव

(तीर्थंकर देव के गुण प्राप्ति ही मेरा लक्ष्य)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : आत्मशक्ति...)

देवों से वन्दित नरों से पूजित तीर्थंकर देव हैं मेरे आदर्श।
अनन्तज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्य सम्पन्न तथापि न करते कुछ भी कुकर्म।।
विश्वप्रसिद्ध व विश्व उपदेशक तथापि रहते सदा निष्काम।
ख्याति-पूजा-लाभ-वर्चस्व परे, स्व-आत्म स्वभाव में रहते लीन।।(1)

चक्रवर्ती के वैभव से भी अधिक, उनके समवसरण वैभव सम्पन्न।
तथापि समवसरण के कमल को भी न करते स्पर्श निस्पृहवान्।।
हर जीव के जानते भी दोष तथापि दोषी प्रति न करते हैं व्देष।
भक्त-शिष्यों की जानते हैं भक्ति तथापि उनसे न होते आसक्त।।(2)

दोषी को न देते कभी अभिशाप, दोष दूर हेतु देते उपदेश।
भक्त आप के आदर्श अनुकरण से, पाते हैं क्रमशः स्वर्ग व मोक्ष।।
सातिशय पुण्य से आप सहित अनन्त आध्यात्मिक गुणों से युक्त।
तथापि न करते 'अहंकार' आप किंतु 'अहं' स्वभाव में सदा ही स्थित।। (3)

पशु-पक्षी-मनुष्य-देव आदि आप के, असंख्यात भक्त व शिष्य।
तथापि उनसे कुछ भी न चाहते, पूजा-भक्ति या भौतिक पदार्थ।।
प्रसिद्धि हेतु या उपदेश हेतु भी न चाहते कुछ भी साधन।
स्वयमेव देव स्वभक्ति से करते रचना दिव्य समवसरण।। (4)

उपदेश भी आप का होता निर्गत राग-द्वेष-मोह-स्वार्थ रहित।
पर निन्दा अपमान वैर-विरोध रहित समता-शान्ति-सत्य सहित।।
विश्व हित हेतु करते उपदेश चारों गतियों के जीवों के आत्मविकास हेतु।
संकीर्ण-पंथ-मत-जाति-भाषा-राष्ट्र से परे अन्त्योदय-सर्वोदय हेतु।। (5)
आप रहते हैं निर्मल-निर्विकार-निच्छल-निश्चल-शुद्ध-बुद्ध।
आप के समान गुण प्राप्ति हेतु ही, 'कनक' माने आप को आदर्श।। (6)

सागवाडा 28/04/2018 मध्याह्न 02:50

णाणं चरित्तहीणं लिंगग्गहणं च दंसण विहूणं।
संजमहीणो य तवो जड़ चरइ णिरत्थयं सव्वं।। (5) शील पा.

चारित्र हीन, ज्ञान, दर्शन विहीन मुनि वेषादि धारण, इन्द्रिय मन एवं प्राणी सयंम रहित तप जो आचरण करता है वह सर्व निरर्थक होता है।

इसलिए आचार्य श्री ने गाथा में अपना भाव प्रकट किया है कि मैं स्वशुद्धात्मस्वरूप को जान करके ही नहीं बैठ जाऊँ अपितु जानने के बाद उसको प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील रहूँ। वह प्रयत्न है निर्ममत्व, समता या चारित्र, कुन्दकुन्द देव ने समता को ही चारित्र कहा है यथा (चारित्त खलु धम्मो धम्मो जो सो समोत्ति णिदि्दट्ठो मोहक्खोह-विहीणो परिणामो अप्पणो हु समो) चारित्र ही निश्चय से धर्म है और यह चारित्र साम्यभाव रूप है और यह चारित्र रूपी धर्म, मोह, क्षोभ आदि वैभाविक भावों से रहित आत्मा का समता भाव है। यह समता भाव ही जीव का धर्म है, रत्नत्रय है, मोक्ष है, उत्तम क्षमादि दश धर्म है। केवल समता को ही प्राप्त करने के लिए श्रावक एवं मुनियों के व्रत नियम आदि हैं। जिन-जिन कारणों से समता प्रगट होती है वही यथार्थ से धर्म है, अन्य तो धर्म के नाम पर आडम्बर है, दिखावा है या धर्म विध्वंसी क्रियाएँ है। इसलिए इस गाथा में आचार्य श्री अपनी भावना प्रगट करते हैं कि मैं निर्ममत्व या साम्य भाव को प्राप्त करूँ, क्योंकि साम्य भाव से रहित समस्त कार्य दुःखकारक हैं, दुःखोत्पादक हैं और दुःख स्वरूप ही हैं। परमात्म प्रकाश में योगेन्द्र देव ने कहा भी है-

जो सम-भावहँ बाहिरउ तिं सहुं मं करि संगु।
चिंता-सायरि पडहि पर अण्णु वि डज्झइ अंगु।। (109)

जो कोई समभाव अर्थात् निजभाव से बाह्य पदाथ हैं, उनके साथ संग मत कर। क्योंकि उनके साथ संग करने से केवल चिंतारूपी समुद्र में पड़ेगा और भी शरीर दाह को प्राप्त होगा अर्थात् अंदर से जलता रहेगा।

जो कोई व्यक्ति मरण, लाभ, अलाभादि में तुल्यभाव उसके संमुख जो निर्मल ज्ञान दर्शन स्वभाव परमात्म द्रव्य उसका सम्यक् श्रद्धान-ज्ञान-आचरण निजभाव उस रूप समभाव से जो पदार्थ हैं उसके संग छोड़ दे। क्योंकि उनके संग से चिंतारूपी समुद्र में गिर पड़ेगा। जो समुद्र राग द्वेषरूपी कल्लोलों से व्याकुल है। उनके संग से मन में चिंता उत्पन्न होगी और शरीर में दाह होगा। यहाँ तात्पर्य यह है कि वीतराग निर्विकल्प परमसमाधि की भावना से विपरीत जो रागादि अशुद्ध परिणाम है वे ही परद्रव्य कहे जाते है और व्यवहारनय कर मिथ्यात्वी रागी-द्वेषी पुरुष पर कहे गये हैं। इन सबकी संगति सर्वदा दुःख देने वाली है, किसी प्रकार सुखदायी नहीं है, ऐसा निश्चय है। इसलिए भव्यात्मा मुमुक्षु को सतत समग्रता से सर्व ममत्व भाव को त्याग कर निमर्मत्व भाव को प्राप्त करना चाहिए। इष्टोपदेश में पूज्यपाद आचार्य ने कहा भी है-

बध्यते मुच्यते जीवः, सममो निर्ममः क्रमात्।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन, निर्ममत्वं विचिन्तयेत्।। (26)

ममतावाला जीव बंधता है और ममता रहित जीव मुक्त होता है। इसलिए हर तरह से पूरी कोशिश के साथ निर्ममता का ही ध्यान रखें।

सशरीरी भगवान् का स्वरूप

(13) त्रयोदश सयोगकेवली गुणस्थान

सुद्धो खाइयभावो अवियप्पो णिगालो जिणिंदस्स।
अत्थि तया तं झाणं सुहुमकिरिया अपडिवाई।।668।।
परिफंदो अइसुहमो जीवपएसाण अत्थि तक्काले।
तेणाणू आइट्ठा आसवि य पुणो वि विहडंति।।669।।
जं णत्थि रायदोसो तेण ण बंधो हु अत्थि केवलिणो।

जह सुक्ककुड्डुलग्गा वालूया झडियांति तह कम्मं।।670।।(भाव संग्रह)

अर्थ:-मन, वचन, काय को त्रियोग कहते हैं। मूर्तिक मन वचन काय योग सहित जीव को, केवलज्ञानी होने के कारण ही, इस गुणस्थानवर्ती को सयोग केवली कहते हैं।

तेरहवें गुणस्थानवर्ती योगी पुरुष के विकल्प रहित, निश्चल (स्थिर) क्षायिक भाव होते हैं तथा सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति नाम का तीसरा शुक्ल ध्यान होता है।

इस तेरहवें गुणस्थानवर्ती योगी पुरुष की आत्मा के प्रदेशों का परिस्पन्दन (हलन चलन) अत्यन्त सूक्ष्म होता है। जिस कारण शुभकर्मों की वर्गणाएँ आत्मप्रदेशों की ओर आने पर भी तुरन्त चली जाती हैं। आत्मप्रदेशों में कार्माण वर्गणाएँ नहीं ठहरती है, क्योंकि केवलज्ञानी पुरुष के रागद्वेषभाव कर्मों का सर्वथा अभाव हो चुका होता है। जिस प्रकार से सूखी दीवाल पर बालु नहीं चिपकती उसी प्रकार स्निग्ध राग द्वेषभावों के बिना, कर्म जीवात्मा के प्रदेशों में नहीं ठहरते।

केवलज्ञानी अर्हन्त की आहार-विहार-दिव्यध्वनि क्रियाएँ इच्छारहित होती है

ईहारहिया किरिया गुण वि सव्वे वि खाइया तस्स।
सुक्खं सहावजायं कमकरणविवगियं णाणं।।671।।

अर्थ:-केवलज्ञानी योगी पुरुष को, चक्षु आदि 5 इन्द्रियाँ एवं मन के संयोग से उत्पन्न होने वाला मतिज्ञान, जो कि अवग्रह, ईहा, आवाय, धारणा के क्रम के साथ होता है, उस क्रम से रहित अतीन्द्रिय केवलज्ञान होने के कारण, आत्मस्वभावी अतीन्द्रिय अनन्तसुख प्राप्त हो जाता है। रागद्वेषभावकर्मों के क्षय से उत्पन्न क्षायिक भाव के कारण केवलज्ञानी पुरुष की आहार विहार, दिव्य ध्वनि आदि रूप समस्त क्रियाएँ (ईहारहित) इच्छाभावों से रहित, होती हैं।

केवलज्ञान का माहात्म्य (सर्वज्ञता)

णाणेण तेण जाणइ कालत्तयवट्टिए तिहुवणत्थे।
भावे समे य विसमे सचेयणाचेयणे सव्वे।।672।।
एक्कं एक्कंमि खणे अणंतपगायगुणसमइण्णं।
जाणइ जह तह जाणइ सव्वइ दव्वाइं समयम्मि।।673।।
जाणतो पिच्छंतो कालत्तयवट्टियाइं दव्वाइ।
उत्तो सो सव्वण्हू परमप्पा परमजोईहिं।।674।।

अर्थ:-केवलज्ञानी योगी पुरुष, केवलज्ञान से, तीनों लोकों में स्थित, चेतन अचेतन, (जीव अजीव) सम एवं विषम समस्त पदार्थों की वर्तमान, भूतकालीन एवं भविष्यत् सभी अनन्त पर्यायों को तथा अनन्त पर्यायी गुणों को तथा लोक में स्थित सभी द्रव्यों को एक ही समय में ज्ञान से जानते हैं।

तीनों कालों में स्थित जीव अजीव द्रव्यों को समस्त गुणों एवं पर्यायों से जानने देखने के कारण ही परम योगी पुरुष उन्हें सर्वज्ञ (सर्वज्ञाता) परमात्मा कहते हैं।

तीर्थंकर केवलज्ञानी एवं सामान्य केवलज्ञानी

तित्थयरत्तं पत्ता जे ते पावंति समवसरणाइं।
सक्केण कयविहूई पंचक्कगाणपूजा य।।675।।
समुग्घाइकिरिया णाणं तह दंसणं च सुक्खं च।
सव्वेसिं सामण्णं अरहंताणं च इयराणं।।676।।
जेसिं आउसमाणं णामं गोदं च वेयणीयं च।
ते अकयसमुग्घाया सेसा य कयंति समुग्घायं।।677।।
अतंरमुहुत्तकालो हवइ जहण्णो वि उत्तमो तेसिं।
गयवरिसूणा कोडी पुव्वाणं हवइ णियमेण।।678।।

अर्थ:-तीर्थंकर प्रकृति से हुये केवलज्ञानी पुरुषों के लिए, इन्द्रादि द्वारा समवशरण की रचना की जाती है और उनके गर्भ, जन्म, दीक्षा, ज्ञान एवं मोक्ष पाँचो कल्याणको की पूजा अर्चना की जाती है।

तीर्थंकर प्रकृति वाले अर्हन्त केवली और जिनके तीर्थंकर प्रकृति नहीं है ऐसे सामान्य केवली, दोनों ही केवलज्ञानी पुरुषों के समुद्घात क्रिया, अनन्तज्ञान (केवलज्ञान) अनन्तदर्शन (केवलदर्शन) अनन्त सुख एवं अनन्तवीर्य चतुष्टय समान होते हैं। इनमें कोई अन्तर नहीं होता।

जिन केवली भगवान् के नामकर्म, गोत्रकर्म और वेदनीय कर्म की स्थिति आयुकर्म के समान होती है वे केवली समुद्घात क्रिया नहीं करते। परन्तु जिन केवली के नामकर्म, गोत्रकर्म एवं वेदनीय कर्म की स्थिति आयुकर्म से आसमान होती है वे समुद्घात क्रिया करते हैं।

नाम, गोत्र वेदनीय कर्म की स्थिति को, आयुकर्म की स्थिति के समान करने को समुद्धात कहते हैं।

तेरहवें गुणस्थान की जघन्य स्थिति अन्तमुर्हर्त है। परन्तु उत्कृष्ट स्थिति, जितने वर्ष की आयु में केवलज्ञान हुआ है उतने वर्ष कम एक करोड़ पूर्व तक की हो सकती है।

सत्त्वं सुखे संजयति रजः कर्मणि भारत।
ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे संजयत्युत।। (9)

हे भारत! सत्त्व आत्मा को शांति सुख का संग कराता है। रजस् कर्म का और तमस् ज्ञान को ढककर प्रमाद का संग कराता है।

रजस्तमश्चाभिभूय सत्त्वं भवति भारत।
रजः सत्त्वं तमश्चैव तमः सत्त्वं रजस्तथा।। (10)

हे भारत! जब रजस् और तमस् दबते हैं तब सत्त्व ऊपर आता है, जब सत्त्व और तमस् दबते हैं तब रजस् और जब सत्त्व तथा रजस् दबते हैं तब तमस् उभरता है।

सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन्प्रकाश उपजायते।
ज्ञानं यदा तदा विद्याद्विवृद्धं सत्त्वमित्युत।।(11)

सब इन्द्रियों द्वारा इस देह में जब प्रकाश और ज्ञान का उद्भव होता है तब सत्त्वगुण की वृद्धि हुई है ऐसा जानना चाहिए।

लोभः प्रवृत्तिरारम्भः कर्मणामशमः स्पृहा।
रजस्येतानि जायन्ते विवृद्धे भरतर्षभ।। (12)

हे भारतर्षभ! जब रजोगुण की वृद्धि होती है तब लोभ प्रवृत्ति, कर्मों का आरंभ, अशांति और इच्छा का उदय होता है।

अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोह एव च।
तमस्येतानि जायन्ते विवृद्धे कुरूनन्दन।। (13)

हे कुरूनंदन! जब तमोगुण की वृद्धि होती है तब अज्ञान, मंदता, असावधानी और मोह उत्पन्न होता है।

कर्मणः सुकृतस्याहुः सात्त्विकं निर्मलं फलम्।
रजसस्तु फलं दुःखमज्ञानं तमसः फलम्।। (16)

सत्कर्म का फल सात्त्विक और निर्मल होता है। राजसी कर्म का फल दुःखी होता है और तामसी कर्म का फल अज्ञान होता है।

मोहादि रहित क्रिया बन्ध कारक नहीं-

ठाणणिसेज्जविहारा धम्मुवदेसो य णियदयो तेसिं।
अरहंताणं काले मायाचारो व इत्थीणं।। (44) प्र.सा.

In the case at Arahantas, at the time of their Arhatship, (Certain activities like) standing, sitting, moving about and religious discourse are natural (and necessary consequences of the Karmic foruition with no effort on their part), Just as acting deceitfully is in the case of women.

(तेसिं अरहंताणं) उन केवलज्ञान के धारी निर्दोष जीवन्मुक्त सशरीर अरहंत परमात्माओं के (काले) अर्हंत् अवस्था में (ठाणणिसेज्जविहारा) ऊपर उठना अर्थात् खड़े होना, बैठना, विहार करना (धम्मुवदेसो य) और धर्मोपदेश इतने व्यापार (णियदय) स्वभाव से होते हैं। इन कार्यों के करने में केवली भगवान् की इच्छा नहीं प्रेरक होती है, मात्र पुद्गल कर्म का उदय प्रेरक होता है। (इत्थाणं) स्त्रियों के भीतर (मायाचारोव) जैसे स्वभाव से कर्म के उदय के असर से मायाचार होता है।

भाव यह है कि जैसे स्त्रियों के स्त्री वेद के उदय के कारण से प्रयत्न के बिना भी मायाचार रहता है तैसे भगवान् अर्हंतो के शुद्ध आत्मतत्व के विरोधी मोह के उदय से होने वाली इच्छा पूर्वक उद्योग के बिना भी समवशरण में बैठना, विहार आदिक होते हैं अथवा जैसे मेघों का एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना, ठहरना, गर्जना, जल का वर्षना आदि स्वभाव से होता है, तैसा जानना। इससे यह सिद्ध हुआ कि मोह-राग-द्वेष के अभाव होते हुए विशेष क्रियायें भी बन्ध के कारण नहीं होती है।

समीक्षा-कुन्दकुन्द देव ने 43 गाथा में कर्मबन्ध के विभिन्न कारणों का वर्णन किया है और कारणों का वर्णन करते हुए यह भी कहा है कि कर्म उदय के अनुसार जो बाह्य विषय में मोह करता है, राग करता है, द्वेष करता है वह विभिन्न कर्मों को बांधता है। उसके विपरीत कुन्दकुन्द देव ने इस गाथा में यह कहा है कि कोई केवल प्राचीन कर्मोदय से अनिवार्य रूप से नवीन कर्म बांधे इसकी अनिवार्यता नहीं है। क्योंकि जो कर्म उदय के अनुसार रागद्वेषात्मक परिणमन नहीं करता वह नवीन कर्म को नहीं बांधता है। जैसे तेरहवें गुणस्थानवर्ती सयोग केवली भगवान् विहार करते हैं, उपदेश देते हैं तथापि संसार के कारणभूत कर्मों को बांधते नहीं हैं। तेरहवें गुणस्थानवर्ती जो तीर्थंकर केवली रहते हैं वे पूर्व में सातिशय तीर्थंकर प्रकृति का बंध करते हैं जिसके उदय से वह अवश्य ही केवल ज्ञान के बाद उपदेश देते हैं। तथापि वे उस जनित कर्म को नहीं बांधते हैं क्योंकि वे अनिच्छा पूर्वक रागद्वेष मोह से रहित होकर यह कार्य करते हैं। अथवा यों कहो कार्य स्वयमेव हो जाता है। समन्तभद्र स्वामी ने कहा है-

अनात्मार्थंबिनारागैःशास्तशास्तिसतोहितम्।
ध्वनन्शिल्पिकरस्पर्शान्मुरजः किमपेक्षते।। (8)

आप्त भगवान् राग के बिना अपना प्रयोजन न होने पर भी समीचीन भव्य जीवों को हित का उपदेश देते हैं जैसे बजाने वाले के हाथ के स्पर्श से शब्द करता हुआ मृदंग क्या अपेक्षा रखता है? कुछ भी नहीं।

आ.समन्तभद्र ने देवागम स्तोत्र में कहा है-

।। अज्ञानान्मोहिनो बन्धो।।

अर्थात् मोह सहित अज्ञान से बंध होता है परन्तु इसके विपरीत केवली

भगवान् वीतमोही और सर्वज्ञ हैं इसलिए वे बंध से रहित होते हैं।

कुन्दकुन्द स्वामी ने इस गाथा में और भी यह कहा है कि केवली भगवान् की सम्पूर्ण क्रियाएं पूर्वोपार्जित कर्म के उदय से होती है न कि इच्छापूर्वक या राग पूर्वक, मोहपूर्वक होती हैं। जैसे कुछ स्त्रियों में पूर्वोपार्जित कर्म के उदय से मायाचारी अनिच्छा पूर्वक हो जाती है। इसका मतलब ये नहीं कि मायाचारी स्वभाव से होती है परन्तु कुछ स्त्रियाँ जान-बूझ कर करती हैं। इसलिए यहाँ पर जो ''मायाचारो व इत्थीणं; विशेषण दिया गया है।'' वह सब स्त्रियों के लिये नहीं है परन्तु यह विशेषण उनके लिये है जो मायाचारी नहीं करना चाहते हैं तो भी पूर्व द्रव्य कर्म के उदय से ही हो जाती है। उसी प्रकार केवली की क्रियाएं भी अनिच्छापूर्वक द्रव्य कर्म के उदय से हो जाती हैं। जैसे-बादल इच्छापूर्वक गमन नहीं करता है परन्तु पवन से प्रेरित होकर बादल चलता है। ऐसी अलौकिक अरहन्त की क्रियाओं का अभूतपूर्व वर्णन समन्त भद्रस्वामी ने स्वयम्भू स्तेत में किया है।

प्रातिहार्यविभवैः परिष्कृतो देहतोऽपि विरतो भवानभूत्।
मोक्षमार्गमशिषन्नरामरान् नापि शासन फलैषणातुरः ।। (3)

हे भगवान्! आप सिंहासनादि प्रातिहार्यों तथा समवरणादि विभूतियों से विभूषित होते हुए भी न केवल उनसे किन्तु शरीर से भी ममत्त्व रहित थे तथा आपने मनुष्यों और देवों को मोक्षमार्ग का उपदेश दिया था फिर भी आप उपदेश के फल की इच्छा से आतुर-व्यग्र नहीं हुए थे।

कायवाक्यमनसां प्रवृत्तयो नाभवंस्तव मुनेश्चिकीर्षया।
नासमीक्ष्य भवतः प्रवृत्तयो धीर! तावकमचिन्त्य मीहितम्।। (4)

हे नाथ! आप प्रत्यक्षज्ञानी के काय वचन और मन की चेष्टाएं करने की इच्छा से नहीं हुई तथा आपकी प्रवृत्तियां/चेष्टाएं वस्तु स्वरूप को ज्यों का त्यों जाने बिना नहीं हुई। परीषहादिक तथा अन्यमतावलम्बियों के प्रश्न आदि से चित्त को क्षुभित न करने वाले हे धीर वीर धर्मजिनेन्द्र! आपका चरित्र अचिन्तनीय है आश्चर्य करने वाला है।

मानुषीं प्रकृतिमभ्यतीतवान् देवतास्वपि च देवता यतः।
तेन नाथ परमासिदेवता श्रेयसे जिन वृषः प्रसीद नः।। (5)

हे भगवान्! चूंकि आप मानव स्वभाव को अतिक्रान्त कर गये हैं और इन्द्र चन्द्र आदि देवों में भी देवता हैं पूज्य हैं इसलिए हे स्वामिन्! आप उत्कृष्ट देवता हैं। हे! जिनेन्द्र हमारे कल्याण के लिए प्रसन्न होईये।

अरिहंत का पुण्योदय बन्ध कारक नहीं-

पुण्णफला अरहंता तेसिं किरिया पुणो हि ओदइया।
मोहादीहिं विरहिदा तम्हा सा खाइग त्ति मदा।। (45) प्र.सा.

Arahantas own their status to the Fruits of merits (or meritorious Karmas); their activities are the consequences of the Karmic operations; their activities are called Ksayiki (i.e., due to the destruction of Karmas), because they are free from infatuation etc.

आगे पहले जो कह चुके हैं कि रागादि कर्मों का उदय तथा विहार आदि क्रिया बंध का कारण नहीं होती है, उस ही अर्थ को और भी दूसरे प्रकार से दृढ़ करते हैं। अथवा यह बताते हैं कि अरहंतो के पुण्य कर्म का उदय बन्ध का कारण नहीं हैं।

(अरहंता) तीर्थंकर स्वरूप अरहंत भगवान् (पुण्णफला) पुण्य के फलस्वरूप हैं-अर्थात् पंच महाकल्याणक की पूजा को उत्पन्न करने वाला तथा तीन लोक को जीतने वाला जो तीर्थंकर नाम पुण्यकर्म उसके फलस्वरूप अर्हंत तीर्थंकर होते हैं। (पुणो) तथा (तेसिं) उन अरहंतो की (किरिया) क्रिया अर्थात् दिव्य-ध्वनि रूप वचन का व्यापार तथा विहार आदि शरीर का व्यापार रूप क्रिया (हि) प्रगट रूप से (ओदइया) औदयिक है अर्थात् क्रिया रहित जो शुद्ध आत्मतत्व उससे विपरीत कर्म उसके उदय से हुई है। (सा) वह क्रिया (मोहादिहिं) मोहादिकों से अर्थात् मोह रहित शुद्ध आत्मतत्व के रोकने वाला तथा ममकार अहंकार के पैदा करने को समर्थ मोह आदि से (विरहिया) रहित है (तम्हा) इसलिये (खाइयत्ति) क्षायिक है अर्थात् विषय विकार रहित शुद्ध आत्मतत्व के भीतर कोई विकार को न करती हुई क्षायिक ऐसी (मदा) मानी गई है।

यहां पर शिष्य ने प्रश्न किया कि जब आप कहते हैं कि कर्मों के उदय से क्रिया होकर भी क्षायिक है अर्थात् क्षय रूप है, नवीन बन्ध नहीं करता तब क्या जो आगम

का वचन है कि ''औदयिकाः भावाः बन्धकारणम्'' अर्थात् औदयिक भाव बन्ध के कारण है, वृथा हो जायेगा? इस शंका का समाधान आचार्य करते हैं कि औदयिक भाव बन्ध के कारण होते हैं, यह बात ठीक है परन्तु वे बन्ध के कारण तब ही होते हैं जब वे मोह भाव के उदय सहित होते हैं। कदाचित् किसी जीव के द्रव्य मोह कर्म रूपी सम्यक्त्व प्रकृति का उदय हो तथापि जो वह शुद्ध आत्मा की भावना के बल से मोह रूप अर्थात् मिथ्यात्व भावरूप न परिणमन करे तो बन्ध नहीं होवे और यहां अर्हंतों के तो द्रव्यमोह का सर्वथा अभाव ही है। यदि माना जाय कि कर्मों के उदय मात्र से बन्ध हो जाता है तब संसारी जीवों के सदा ही कर्मों के उदय से सदा ही बन्ध रहेगा कभी भी मोक्ष न होगा। सो ऐसा कभी नहीं हो सकता इसलिये मोह के उदय के बिना मात्र कर्मोदय या क्रिया बन्ध नहीं करती किन्तु जिस कर्म के उदय से जो क्रिया होती है वह कर्म झड़ जाता है। इसलिए उस क्रिया को क्षायिकी कह सकते है, ऐसा अभिप्राय है।

समीक्षा-कुन्द कुन्ददेव ने पूर्वोक्त 44 गाथा में जो विषय वर्णन किया था उसका ही विशेष वर्णन यहां पर किया है। कुछ व्यक्ति पुण्य को एकान्ततः हेय मानते हैं परन्तु आ. कुन्दकुन्द देव ने कहा है ''पुण्णफला अरहन्ता'' पुण्य का फल अरिहन्त अवस्था है। वीरसेन स्वामी ने भी पुण्य का फल बताते हुए कहा है पुण्य फल से बलदेव गणधर अरिहन्त तीर्थंकर आदि पदवी मिलती है। इसी प्रवचनसार की समीक्षा में मैनें पुण्य पाप की अनेक योग्य स्थान में विशेष विस्तृत समीक्षा की है। पाठकगण वहां से अवलोकन करें। 13वें गुणस्थान में तो पुण्य का तीव्रतम उदय रहता है तथापि वहाँ अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत वीर्य आदि अनंत चतुष्टय प्रकट रहते हैं इससे सिद्ध होता है कि पुण्यानुबंधी पुण्य आत्मकल्याण के लिए, केवलज्ञान प्राप्त करने के लिए बाधक नहीं साधक है। उस पुण्यानुबंधी सातिशय पुण्य से अरहंत भगवान् को तो आत्म कल्याण में कुछ बाधा नहीं पहुँचती परन्तु दूसरों का उपकार ही होता है। उस पुण्य के कारण ही तो समोवशरण, गंधकुटी की रचना, विहार, धर्म प्रवर्तन होता है, दिव्यध्वनि खिरती है। पुण्य के अभाव से उपरोक्त क्रियाएँ नहीं होती। सिद्ध भगवान् के भी उस पुण्य का अभाव होने से ये क्रियायें नहीं होती। इन क्रियाओं के अभाव से व्यवहार धर्मतीर्थ का अभाव हो जायेगा और व्यवहार तीर्थ के अभाव में

निश्चयतीर्थ का भी अभाव हो जाएगा। इसलिये अमृतचन्द सूरि ने समयसार की टीका में प्राचीन एक गाथा का उदाहरण दिया है -

जइ जिणमयं पवज्जह ता मा ववहारणिच्छए मुयह।
एक्केण विणा छिज्जइ तित्थं अण्णेण उण तच्चं।। पृ. 26, समयसार

यदि जिनमार्ग का प्रवर्तन करना है तो निश्चय और व्यवहार के किसी एक में पक्षपातपूर्ण मोहित मत होना क्योंकि व्यवहार के बिना तीर्थ विच्छेद हो जायेगा और निश्चय के बिना तत्त्व का ही लोप हो जायेगा। अतः दोनों यथायोग्य उपादेय है।

अरिहंत अवस्था में पुण्य का जो उदय होता है उससे उपदेशादि औदायिक क्रियायें होती हैं तथापि मोहादि से रहित होने के कारण उनका भाव क्षायिक है। पुण्य के औदायिक भाव का भी वेदन अरिहंत भगवान् नहीं करते हैं, क्योंकि अनंत ज्ञानादि क्षायिक भाव के कारण वह औदायिक भाव किसी भी प्रकार से कार्यकारी नहीं हो सकता है। इतना ही नहीं जो अनेक कर्म प्रकृतियाँ सत्ता में रहती हैं वे भी वीतराग भाव एवं क्षायिक भाव को बाधा नहीं पहुँचा सकती है। जैसे-जली हुई रस्सी देखने में तो रस्सी जैसी दिखती है परन्तु बाँधने के कार्य में पूर्ण असमर्थ होती है। जैसे-जला हुआ बीज अंकुर उत्पन्न करने में असमर्थ रहता है या शोधन किया हुआ पारदरस जीवों के लिए घातक नहीं है। मंत्र शक्ति से जिसकी मारण शक्ति नष्ट कर दी गई है ऐसा विष जीवों को नहीं मार सकता है। वैसे ही जिस जीव के राग-द्वेषादि नष्ट हो चुके हैं उसके पूर्वोपार्जित कर्म भी उस जीव को कष्ट देने में एवं नवीन बंध के लिए असमर्थ होते हैं। कुन्दकुन्द देव ने समयसार में कहा भी है-

पुढवीपिंडसमाणा पुव्वणिबद्धा दु पच्चया तस्स।
कम्मसरीरेण दु ते बद्धा सव्वेवि णाणिस्स।। (176)

उस पूर्वोक्त विरागी जीव के पहले अज्ञान अवस्था में बंधे हुए सब ही कर्म पृथ्वीपिंड के समान होते हैं जो कि उसके कार्माण शरीर के साथ बँधे हुए होते हैं।

(पुढ़वीपिंडसमाणा पुव्वणिबद्धा दुपच्चया तस्स) उस वीतराग-सम्यग्दृष्टि-जीव के पूर्वकाल में निबद्धमिथ्यात्वादि-द्रव्यप्रत्यय रागादिभावों के जनक न होने से पृथ्वी-पिंड के समान अकार्यकारी होते हैं क्योंकि वे उसके नवीन-द्रव्यकर्म का बंध नहीं करते। अब जब कि वे नवीन-द्रव्यकर्म का बंध नहीं करते तो पृथ्वीपिंड के समान

कैसे रहते हैं? **(कम्मसरीरेण दू ते बद्धा सव्वेवि णास्सि)** निर्मल आत्मानुभूति-शुद्धात्मा के साथ तन्मयता ही है लक्षण जिसका ऐसा भेदभाव जिसके है उस ज्ञानी के सब ही कर्म शरीर रूप से ही रहते है। रागद्वेषादि-भावों में जीव को परिणमन नहीं कराते हैं। यद्यपि उस ज्ञानी-जीव के द्रव्यप्रत्यय मुट्ठी में रखे हुए विष के समान कार्मण शरीर से सम्बद्ध रहते हैं तो भी उदय का अभाव होने से फलदानशक्ति के नहीं होने पर वे सब उसको सुख या दुःख रूपी विकारमई बाधा को नहीं कर पाते हैं। इसी कारण से ज्ञानी जीव के नवीन कर्मों का आस्रव नहीं होता।

नारायण कृष्ण ने भी गीता में निष्काम कर्मयोगी का वर्णन प्रायः इसी प्रकार से किया है :

त्यक्त्वा कर्मफलासंगं नित्यतृप्तो निराश्रयः।
कर्मण्यभिप्रवृतोऽपि नैव किंचित्करोति सः।।

जिसने कर्म फल का त्याग किया है, जो सदा संतुष्ट रहता है, जिसे किसी आश्रय की लालसा नहीं है वह कर्म में अच्छी तरह से लगे रहने पर भी अकिंचितकर कहा जा सकता है कि वह कुछ भी नहीं करता है।

निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः।
शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्विषम्।। (21)

जो आशा रहित है, जिसका मन अपने वश में है जिसने सारा संग्रह छोड़ दिया है और जिसका शरीर भर ही कर्म करता है, वह करते हुए भी दोषी नहीं होता।

यदृच्छालाभसंतुष्टो द्वन्द्वातीतोविमत्सरः।
समः सिद्धावसिद्धो च कृत्वापि न निबध्यते।। (22)

जो यथा लाभ से संतुष्ट रहता है, जो सुख दुःखादि द्वंदो से मुक्त हो गया है, जो द्वेषरहित हो गया है, जो सफलता, निष्फलता में तटस्थ है, वह कर्म करते हुए भी बंधन में नहीं पड़ता है।

गतसंगस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थित चेतसः।
यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते।। (23)

जो आसक्ति रहित है, जिसका चित्त ज्ञानमय है, जो मुक्त है और जो यथार्थ ही कर्म करने वाला है, उसके सारे कर्म लय हो जाते हैं।

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः।

निर्दोष हि समं ब्रह्म तस्माद्ब्रह्माणि ते स्थिताः।। (19) पृ.67

जिसका मन समत्व में स्थिर हो गया है उन्होंने इस देह में रहते हुये भी संसार को जीत लिया है। ब्रह्म, निष्कलंक और समभावी है, इसलिये वे ब्रह्म में ही स्थिर होते हैं।

न प्रहष्येप्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चाप्रियम।

स्थिर बुद्धिरसमूंढ़ो ब्रह्मविद्ब्रह्माणि स्थितः।। (20)

जिसकी बुद्धि स्थिर हुई है, जिसका मोह नष्ट हो गया है, जो ब्रह्म को जानता और ब्रह्म परायण रहता है, वह प्रिय को पाकर सुख नहीं मानता और अप्रिय को पाकर दुःख का अनुभव नहीं करता।

त्यजनीय व ग्रहणीय

(चालः दुल्हे का सेहरा)

-आचार्य कनकनन्दी

बन्द आँखो से चाक्षुष भी न दिखता है। अन्धश्रद्धा से स्व-आत्मा न दिखता है।।
यथा अन्धेरे में ग्रन्थ न पढपाते।तथा मोही स्वयं को न जान पाते हैं।। (बन्द आँखों..(1)

जन्मान्ध यथा सूर्य न देखपाते। मोहान्ध सत्य को न जानते हैं।।
भोजन भी सडने से विषाक्त होता है। धर्म का दुरुपयोग विषमता लाता है।। (बन्द..(2)

आत्मश्रद्धान रहित जीव कुधर्मी। समता रहित जीव होते अधर्मी।।
धर्मफल है शान्ति अधर्म अशान्ति। धर्म स्वरूप आत्मविशुद्धि फल है शान्ति।। (बन्द..(3)

राग द्वेष मोह है अधर्म स्वरूप। शुद्ध-बुद्ध-आनन्द धर्म स्वरूप।
धर्म पाना है तो रागद्वेष मोह त्यागो, ईर्ष्या तृष्णा घृणा दंभ प्रपंच त्यागो।। (बन्द..(4)

आत्मविशुद्धि हेतु ही धर्म पालनीय, इस हेतु बाह्य निमित्त भी ग्रहणीय।
तत्त्वचिन्तन शोध-बोध करणीय, मैत्री प्रमोद कारूण्य साम्य वरणीय।। (बन्द..(5)

दिखावा-ढ़ोंग-आडम्बर-दंभ त्यजनीय, शालीन-नम्र-उदार-धैर्य धारणीय।
स्वतंत्र-स्वालम्बन चर्या आचरणीय, स्व-परविश्व हित चिन्तन करणीय/(भावनीय) (बन्द..(6)

आन्मतृप्तिमय आत्म विकास करणीय, अस्त-व्यस्त-संत्रस्त विकास त्यजनीय।
अन्त्योदय से सर्वोदय तक भजनीय, शुद्धात्मास्वरूप 'कनक' ग्रहणीय।। (बन्द.. (7)

सागवाडा 23/04/2018 रात्रि 9.06

जैन श्रावकों के सम्पूर्ण धार्मिक कर्त्तव्य (वैश्विक संविधान)

(जैन श्रावक 44 दोष रहित व 77 गुण सहित होते)

(चालः-आत्मशक्ति..... क्या मिलिए....)

-आचार्य कनकनन्दी

कितनी श्रेष्ठ हैं कितनी ज्येष्ठ हैं जैन धर्मावलम्बी साधु-श्रावक क्रियायें।
साधु की क्रियायें तो अति श्रेष्ठ-ज्येष्ठ, उसके अणुरूप श्रावक क्रियायें।। 1.

केवल दिखावा व रुढि परम्परा नहीं है श्रावको की क्रियायें।
स्व-पर-विश्वहित हेतु व इह परलोक हित हेतु श्रावक क्रियायें।। 2.

देव-शास्त्र-गुरु श्रद्धान सहित, स्व शुद्धात्मा श्रद्धान से प्रारंभ।
अन्याय-अत्याचार-भ्रष्टाचार-मिलावट-आतंकवाद से रहित।। 3.

सप्त व्यसन व सप्त मद रहित तथाहि सप्त भय से मुक्त।
अष्ट गुण युक्त अष्ट अंग सहित तथाहि अष्ट मल से रिक्त।। 4.

शंकादि पच्चीस दोष से रहित मूढ त्रय तीन शल्य रहित।
मैत्री प्रमोद कारुण्य माध्यस्थ (भावना) सहित दया दान वे सेवा सहित।। 5.

अष्ट मूल गुण बारह व्रत व बारह तप ग्यारह प्रतिमा युक्त।
चार दान व जल गालन रात्रि भोजन त्याग रत्न त्रय युक्त।। 6.

इससे परे कोई कानून संविधान, नीति नियम भी नहीं संभव।
व्यक्ति-परिवार-समाज-राष्ट्र तथाहि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर तक।। 7.

इससे भी परे जैन साधुओं के (धार्मिक) कर्त्तव्य जो अन्य में असंभव।
पंच महाव्रत पंचसमिति उत्तमक्षमादि दशविध धर्म युक्त।।8

निष्पृह-निराडम्बर-निर्मल-निर्विकार-निष्कलंक व वीतराग।
ज्ञान-ध्यान व तप त्याग सहित स्व शुद्धात्मा स्वरूप में अनुरक्त।।9
शोध-बोध व आत्मबोध युक्त, स्व-पर-विश्व कल्याण युक्त।
ऐसे होते हैं जैन धर्मावलम्बी साधु, इनके अनुयायी होते श्रावक।।10
साधु-श्रावक दोनों के परम लक्ष्य आत्म शुद्धि से पाना है मोक्ष।
अति संक्षेप में ये हैं दोनों के कर्त्तव्य 'कनकनन्दी सूरी' चाहे स्वस्वरूप।।11

सागवाड़ा - 19.04.2018 रात्रि 8:50

जो मनुष्य मतिज्ञान व श्रुतज्ञान के अभिमान से श्री जिनेन्द्र देव द्वारा प्रतिपादित अर्थ को स्वच्छन्द अपने मन कल्पित यद्वा तद्वा विरूद्धार्थ को अर्थात् आगम के सत्यार्थ को छिपाकर मिथ्या अर्थ को कहते हैं वह मिथ्यादृष्टि है। (रयणसार)

सम्यग्दर्शन के भेद

समत्तरयणसारं मोक्खमहारुक्खमूलमिदि भणियं।

तं जाणिज्जइ णिच्छयववहारसरूवदो भेदं।।4।। (रयण.)

अर्थ : सम्यग्दर्शन ही तीन रत्नों में प्रमुख रत्न है, यह सम्यग्दर्शन मोक्षरूपी वृक्ष का मूल जड़ है। इसी सम्यग्दर्शन के निश्चय सम्यग्दर्शन एवं व्यवहार सम्यग्दर्शन ऐसे दो भेद हैं।

भावार्थ : जीवों के परिणामों में जो विशुद्धता प्राप्त होती है वह बाह्य और आभ्यन्तर कारणों के निमित्त से विशुद्धता प्राप्त होती है। उससे आत्मा की प्रतीति अर्थात् आत्मा की अभिरूचि होती है और आत्मिक गुणों की श्रद्धा होना यह निश्चय सम्यग्दर्शन है। तथा आत्मा के स्वरूप को प्रकट-व्यक्त कराने वाले देव शास्त्र गुरु और देव धर्म का श्रद्धान होना यह व्यवहार सम्यग्दर्शन है।

आत्मा अनंत गुणों का पिण्ड है, उन गुणों में सम्यग्दर्शन भी आत्मा का गुण है, वह सम्यग्दर्शन आत्मा को अपनी आत्मा के स्वभाव में स्थिर कराता है और उससे आत्मा अपने स्वरूप में परिणमन करता है, अपने आत्मगुणों में अभिरूचि करता है व पर पदार्थो को अपने से भिन्न समझकर उनको अपनाता नहीं है, यही सम्यग्दर्शन है।

सम्यग्दृष्टि कैसा होता है?

भयविसणमलविवज्जिय, संसार सरीरभोग णिव्वण्णो।

अट्ठगुणंगसमग्गो, दंसणसुद्धो हु पंचगुरुभत्तो।।5।।

अर्थ : सात प्रकार के भयों से रहित, सात व्यसनों से रहित, पच्चीस शंकादि दोषों से रहित, तथा संसार शरीर और भोगों से विरक्त भाव को रखकर एवं निःशंकादिक आठ गुणों सहित होकर, पंचपरमेष्ठी में दृढ़ श्रद्धा भक्ति भावना रखना विशुद्ध सम्यग्दर्शन है।

सम्यग्दृष्टि दुःखी नहीं होता

णियसुद्धप्पणुरत्तो बहिरप्पावच्छवज्जिओ णाणी।

जिणमुणिधम्मं मण्णइ गइदुक्खीहोइ सद्दिट्ठी।।6

अर्थ : जो ज्ञानी भव्यात्मा पुरुष अपनी आत्मा के शुद्ध स्वभाव में अनुरक्त-तन्मय होता है और पर पदार्थ जन्य पुद्गलों की शुभाशुभ पर्यायों से विरक्त होता है और श्री जिनेन्द्र भगवान्, निर्ग्रंथ (नग्न) मुनि-गुरु तथा जिनधर्म को श्रद्धाभाव से भक्तिपूर्वक मानता है वह संसार के समस्त प्रकार के दुःखों से रहित सम्यग्दृष्टि है।

भावार्थ : शुद्ध बुद्ध ज्ञायक एक स्वभावी परम वीतराग रूप आत्मा के स्वभाव में तन्मय होकर देव शास्त्र गुरु धर्म की प्रतीति कर वीतराग परिणति में स्थिर होने की भावना सो सम्यग्दर्शन है।

44 दोष रहित सम्यग्दृष्टि

मयमूढमणायदणं संकाइवसण भयमईयारं।

जेसिं चउदालेदो ण संति ते होंति सद्दिट्ठी।।7।।

अर्थ : जिनके आठ मद, तीन मूढ़ता, छह अनायतन, शंकादि आठ दोष, सात व्यसन, सात प्रकार के भय और पाँच प्रकार के अतिचार इस प्रकार चवालीस दूषण नहीं है वे सम्यग्दृष्टि हैं।

77 गुणों सहित सम्यग्दृष्टि श्रावक

उहयगुणवसण भयमलवेरग्गाइचारभत्तिविग्घं वा।
एदे सत्ततरिया दंसणसावयगुणा भणिया।।8।।

अर्थ : उभय गुण अर्थात् श्रावक के आठ मूलगुण और बारह व्रत (उत्तर गुण) सप्तव्यसन, सातभय, आठमद, आठ शंकादि दोष, तीन मूढ़ता, छह अनायतन इन दोषों से रहित तथा वैराग्य उत्पन्न करने वाली भावनाएँ और मूल गुणों में और उत्तर गुणों में लगने वाले अतिचार अथवा सम्यक्त्व के पाँच अतिचार रहित भक्ति व विघ्न रहित इन सबको मिलाकर सतहत्तर सम्यग्दृष्टि श्रावक के गुण होते हैं इस प्रकार भगवान् ने कहा है।

मुक्ति सुख के पात्र कौन?

देवगुरुसमयभत्ता संसार सरीर भोग परिचित्ता।
रयणत्तयसंजुत्ता ते मणुया सिवसुहं पत्ता।।9।।

अर्थ : जो भव्य मनुष्य देव शास्त्र और गुरु के भक्त हैं, और जिन्होंने संसार शरीर और भोगों से मुख मोड़ लिया है अर्थात् त्याग कर दिया है, तथा सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र से संयुक्त है ऐसे वे मनुष्य मोक्ष सुख को प्राप्त होते हैं।

सम्यग्दर्शन के बिना दीर्घ संसार

दाणं पूया सीलं उपवासं बहुविविहंपि खवणंपि।
सम्मजुदं मोक्खसुहं सम्मविणा दीह संसार।।(10)

अर्थ : चतुर्विध संघ-मुनि आर्यिका पिंच्छी कमंडलुधारी त्यागी व व्रतधारी श्रावक श्राविकाओं के लिए आहारदान, ज्ञानदान, औषधदान व अभयदान वस्तिकादान देना। अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, दिगम्बर साधु और जिनवाणी शास्त्र की पूजा करना। एक देश या सकल देश निरतिचार ब्रह्मचर्य व्रत पालन करना। अष्टमी चतुर्दशी प्रौषध के साथ उपवास करना अथवा अन्य भी एक दो तीन आदि उपवास

करना और भी अनेक धर्मानुष्ठान के उपवास करना। इस प्रकार सम्यक्त्व सहित करने पर मोक्ष सुख की प्राप्ति होती है। अर्थात् सम्यक्त्व के बिना सब दीर्घ संसार के लिए कारण है।

श्रावक व मुनि धर्म के मुख्य कर्त्तव्य

दाणं पूया मुक्खं सावयधम्मो ण सावया तेण विणा।
झाणाज्झयणं मुक्खं जइधम्मो तं विणा तहा सोवि।।11।।

अर्थ : श्रावक के मुख्य छह आवश्यक कर्त्तव्य हैं, वे दान देना, पूजा करना ये दोनों ही श्रावक के मुख्य नित्य कर्त्तव्य हैं, इनके न करने पर श्रावक नहीं है। क्रिया नहीं है तो श्रावक धर्म नहीं है, श्रावक नहीं है। तथा ध्यान और अध्ययन करना यह मुनि का मुख्य कर्त्तव्य है, मुनिधर्म की षट् क्रियाएँ हैं, ये ध्यान अध्ययनादि मुख्य क्रियाएँ करते नहीं है तो वह मुनिधर्म नहीं है और मुनि नहीं है। अर्थात् मुनि आर्यिका ऐलक क्षुल्लक क्षुल्लिका पिच्छिधारी सभी त्यागी जनों का धर्म का व्रत पालन करना निश्चल कर्त्तव्य है, अगर यथारूप पालन नहीं करेगा तो वह त्यागी नहीं है।

बहिरात्मा की परिणति पतंगे के समान

दाणु ण धम्मुण चागु ण भोग गुण बहिरप्प जो पयंगो सो।
लोहकसायग्गिमुहे पडिउ मरिउ ण संदेहो।।12।।

अर्थ : जो श्रावक (गृहस्थ) चार प्रकार का दान तथा सप्त क्षेत्रों में दान नहीं करता है, चारित्र एवं उत्तम क्षमादि दश धर्मों का पालन नहीं करता है, हिंसादि पापारंभों का त्याग नहीं करता है, और धन का भोग भी नहीं भोगता है, वह मनुष्य मोही बाह्यदृष्टि बहिरात्मा है, लोभकषाय रूपी अग्नि के मुख में पड़कर मरण को प्राप्त होता है, इसमें कोई संदेह नहीं है। जिस प्रकार पतंगा दीपक की ज्योति को खाने के लोभ से ज्योति के ऊपर जाता है और जलकर मर जाता है, उसी प्रकार लोभी मनुष्य की दशा होती है।

पूजा-दान-धर्म को करने वाले सम्यग्दृष्टि मोक्षमार्गस्थ हैं

जिणपूजा मुणिदाणं करेइ जो देइ सतिरूवेण।
सम्माइट्ठी सावय धम्मी सो होइ मोक्खमग्गरओ।।13।।

अर्थ : जो भव्य जीव न्याय पूर्वक कमाए हुए धन से अनेक प्रकार से भगवान् जिनेन्द्र देव की गाजे बाजे नृत्यादि करता हुआ पंचामृत अभिषेक पूजा करता है, उत्सव मनाता है, और चतुर्विध संघ को आहार दानादि में द्रव्य खर्च करता है, शास्त्र प्रकाशन करता है, धर्म की प्रभावना आदि अनेक प्रकार के धर्मकार्य अपनी शक्ति के अनुसार करता है वह सम्यग्दृष्टि श्रावक धर्मात्मा मोक्षमार्ग में रत होता है, मोक्षमार्गस्थ है, मोक्ष अधिकारी है।

भावार्थ : मिथ्यात्व से शुभ भाव, शुभ क्रिया, शुभगति, सुकुल, सद्गुण, धर्माचरण, स्वर्ग मोक्ष आदि सभी दूर होते हैं।

सम्यग्दृष्टि ही धर्मज्ञ है

देवगुरूधम्मगुण चारित्तं तवायार मोक्खगइ भेयं।
जिणवयणसुदिट्ठिविणा दीसइ किह जाणए सम्मं।।49।।

अर्थ : मनुष्य सम्यग्दर्शन के बिना देव गुरू धर्म क्षमादि गुण चरित्र तप मोक्षमार्ग तथा श्री जिनेन्द्र भगवान के वचन को सही रूप से यथार्थरूप से नहीं जान सकते हैं।

मिथ्यादृष्टि की पहचान

एक्कु खणं ण विचिंतइ मोक्खणिमित्तं णियप्पसाहावं।
अणिसं विचित्तपावं बहुलालावं मणे विचिंतेइ।।50।।

अर्थ : मोही अज्ञानी संसारी प्राणी मिथ्यादृष्टि जीव एक क्षण मात्र की अपने लिए मोक्ष प्राप्ति के लिए मोक्ष सिद्धि के लिए अपने आत्म स्वरूप का विचार चिंतन मनन नहीं करता है, परन्तु दिन रात आरंभ परिग्रह आदि परवस्तु के पाप कार्यों का बारबार विचार व चिंता करता है।

साम्य भाव का घातक

मिच्छामइमय मोहासवमत्तो बोलए जहा भुल्लो।
तेण ण जाणइ अप्पा अप्पाणं सम्म भावाणं।।51।।

अर्थ : मिथ्यामति-मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्याबुद्धि के अभिमान से मदोन्मत्त होकर मदिरापान करने वाले मार्ग भ्रष्ट भुल्लड़ मनुष्य के समान यद्वा तद्वा मिथ्या प्रलाप करते हैं, और वे मोह के उदय से अपनी आत्मा को नहीं जानते हैं। तब अपनी आत्मा के समता भाव को कैसे जानेंगे? अर्थात् सर्वथा नहीं जानेंगे।

कर्मक्षय का हेतु सम्यक्त्व

मिहरो महंधयारं मरुदो मेहं महावणं दाहो।
वज्जो गिरिं जहाविय सिज्जइ सम्मे तहा कम्मं।।52।।

अर्थ : जिस प्रकार सूर्य अंधकार को तत्काल नष्ट करता है। वायु मेघ के समूह को नाश कर देती है। दावानल वन को जला देता है। वज्र पर्वतों का भेदन (पूर्ण) कर देता है। उसी प्रकार एक सम्यक्त्व भी समस्त कर्मों का नाश कर देने में समर्थ है।

सम्यग्दर्शन रूपी रत्न दीपक

मिच्छंधयाररहियं थियमज्झं मिव सम्मरयणदीव कलावं।
जो पज्जलइ स दीसइ सम्मं लोयत्तयं जिणुदिट्ठं।।53।।

अर्थ : जो धर्मात्मा अपने हृदय मंदिर में सम्यक्त्व रत्न रूपी दीपक प्रज्ज्वलित करता है उसको त्रिलोक के समस्त पदार्थ स्वयमेव प्रतिभासित होते हैं।

लोकपूज्य सम्यग्दर्शन

किं बहुणा दो दविंदाहिंद णरिंदगणहरिंदेहिं।
पुज्जा परमप्पा जे तं जाण पहाण सम्मगुणं।।151।।

अर्थ : बहुत कहने से क्या लाभ हैं, थोड़े से में इतना ही समझ लेना चाहिए

कि भगवान् अरिहंत परमात्मा और सिद्ध परमात्मा तथा जो देवेन्द्र धरणेंद्र चक्रवर्ती और गणधर देवादिक के पदों से पूज्य हुए हैं। वे सब सम्यग्दर्शन गुण की महिमा से प्रधानता से ही हुए हैं।

श्रावक की त्रेपन क्रिया

गुणवय तव सम पडिमा दाणं जलगालणं अणत्थमियं।
दंसण णाण चरित्तं किरिया तेवण्ण सावया अणिया।।153।।

अर्थ : आठ मूलगुण, बारह व्रत, बारह तप, समताभाव, ग्यारह प्रतिमा पालन, चार प्रकार का दान देना, पानी छानकर पीना, रात में भोजन नहीं करना तथा सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र का पालन करना ये श्रावकों की त्रेपन क्रियाऐं हैं, इनका यथारूप पालन करना यह शास्त्र में जिन भाषित है, जो पालन करता है वह श्रावक कहलाता है।

रात्रिभोजन में कुशीलता है

भुत्तो अयोगुलो सइयो तत्तो अग्गिसिखोपमोयज्जे।
भुंजइ जे दुस्सीला रत्तपिंड असंजंतो।।154।।

अर्थ : जिस प्रकार अग्नि शिखा में जो डालो सो जल कर भस्म हो जाता है, उसी प्रकार जो योग्य अयोग्य विचार नहीं करके सब कुछ भक्षण करता है, तथा जो शील रहित है, मूलगुण उत्तरगुणों का पालन नहीं करता है, रात में भोजन करता है भक्षण करता है, वह असंयमी है, उसे असंयमी समझना चाहिए।

ज्ञानाभ्यास से मोक्ष

णाणेण ज्झाणसिज्झी झाणादो सव्व कम्म णिज्जरणं।
णिज्जरयण फलं मोक्खं णाणब्भासं तदो कुज्जा।।155।।

अर्थ : आत्मज्ञान से ध्यान की सिद्धि होती है, ध्यान से समस्त कर्मों की निर्जरा होती है तथा समस्त कर्मों की निर्जरा हो जाने से मोक्ष की प्राप्ति होती है। इसलिए भव्य जीवात्माओं को मोक्ष प्राप्ति के लिए ज्ञान का अभ्यास करना आवश्यक है।

श्रुत की भावना से उपलब्धि

कुसलस्स तवो णिवुणस्स संजमो समपरस्स वेराग्गो।
सुदभावणेण तत्तिय तम्हा सुदभावणं कुणह।।156।।

अन्वयार्थ : (कुसलस्स तवो) कुशल व्यक्ति के तप (णिवुणस्स संजमो) निपुण व्यक्ति के संयम (सुमपरस्स) समता भावी के वैराग्य होता है (सुदभावणेण तत्तिय) ये तीनों श्रुत भावना वाले का होता है (तम्हा सुदभावणं) इसलिए श्रुताभ्यास (कुणह) करो।

कानपुर समेत सात शहरों की आबोहवा जानलेवा

प्रदूषण के मामले में दुनिया भर में अव्वल कानपुर समेत उत्तर प्रदेश के सात शहरों में वायु प्रदूषण की रफ्तार आमजन के लिए जानलेवा साबित हो रही है। सेंटर फॉर एन्वॉयरमेंट एंड एनर्जी डवलपमेंट (सीड) और आइआइटी-दिल्ली की रिसर्च रिपोर्ट नो व्हाट यू ब्रीथ (जानिए आप कैसी हवा में सांस ले रहे हैं) का निष्कर्ष है कि पिछले दो दशकों में खराब एयर क्वालिटी ही वह प्रधान कारण है, जिस वजह से उत्तर प्रदेश, बिहार और झारखंड के शहरी इलाकों में मृत्यु दर में बढ़ोतरी हुई है। रिपोर्ट के अनुसार प्रदेश के प्रमुख शहरों में गिने जाने वाले मेरठ, आगरा, लखनऊ, वाराणसी और गोरखपुर में पीएम 2.5 की बढ़ती रफ्तार अलार्मिंग स्तर पर आ चुकी है, वहीं कानपुर और इलाहाबाद में यह मोडरेट स्तर पर है।

बढ़ते प्रदूषण के कारण सालाना समय पूर्व मृत्युदर के मानक पर कानपुर में सर्वाधिक मौत यानी 4173 प्रति वर्ष होती है, वहीं इसके बाद लखनऊ में 4127 लोगों की मृत्यु हो जाती है। अगर सालाना समय पूर्व मृत्युदर की संख्या को प्रत्येक लाख की आबादी के मानक में परिवर्तित करें तो मेरठ और आगरा में सर्वाधिक यानी प्रतिलाख 290 लोगों की मृत्यु होती है। मेरठ में वायु प्रदूषण का सबसे ज्यादा दुष्प्रभाव बच्चों पर पड़ रहा है।

रिपोर्ट के मुख्य नतीजों को व्यापक परिप्रेक्ष्य में रखते हुए सीड के प्रोग्राम डायरेक्टर अभिषेक प्रताप ने कहा कि हम लोग अपने शहरों में जन स्वास्थ्य के दुःस्वप्न का सामना कर रहे हैं, क्योंकि प्रदूषित हवा फेफड़े खराब कर हमारा दम

घोंट रही है। केन्द्र व राज्य सरकारों को इस अलार्मिंग स्थिति को अविलंब नोटिस में लेना चाहिए।

भारत का हृदय स्थल कहे जाने वाले गंगा मैदानी क्षेत्र में बसे शहरों में वायु की गुणवत्ता सुधारने के लिए जरूरी कदमों के बारे में बताते हुए नो व्हाट यू ब्रीथ रिपोर्ट के लेखक डॉ. साझनिक डे ने कहा कि एयर क्वालिटी मैनेजमेंट प्लान का महत्त्वपूर्ण पहलू है।

83 प्रतिशत प्रजातियाँ विलुप्त हो गई सिर्फ 0.01 प्र. इंसानों के चलते

प्रकृति से छेड़छाड़ की अहम वजह

जैव समुदाय में सबसे अधिक हिस्सा पौधों का 82 पौधे

13 प्र. बैक्टीरिया 05 प्र. जीव-जंतु

0.01 प्र. इंसान इन्हीं 5 प्र. जीवों में (760 करोड़)

जीवन का अधिक हिस्सा धरती पर है

86 प्र. जमीन पर

13 प्र. बैक्टीरिया

1 प्र. समुद्रों में

स्तनधारियों में स्थिति उलट है

60 प्र. स्तनधारी मवेशी

36 प्र. इंसान

4 प्र. जंगली पशु

अब तक 83 प्र. वन्य स्तनधारी विलुप्त हो गए मानव सभ्यता के बाद से

83 प्र. जंगली स्तनधारी

80 प्र. समुद्री स्तनधारी

50 प्र. पेड़-पौधे

15 प्र. मछलियाँ

(स्रोत- प्रासिडिंग्स ऑफ द नेशनल एकेडमी ऑफ साइंसेज)

50 प्र. प्रजाति पिछले पचास वर्षों में विलुप्त हुई है

पक्षियों का एक बड़ा हिस्सा आहार के रूप में है

70 प्र. पक्षी पोल्ट्री

30 प्र. जंगली

आइआइटी की बड़ी खोज

डीजल से एलियन जैसे दिखने लगेंगे इंसान

नजर आने लगे हैं संरचनात्मक प्रभाव

कानपुर। पेट्रोल वाहनों की आबादी जबरदस्त रफ्तार से बढ़ती जा रही है तो 20 साल में इंसानों के शरीर में तमाम आश्चर्यजनक परिवर्तन देखने को मिलेंगे। लंबाई बेहद कम हो जाएगी, नाक-कान और आँख भी अजूबी किस्म की होगी। संभव है कि धरती के इंसान एलियन जैसे दिखेंगे। हृदय, किडनी, लीवर के साथ-साथ एंड्रोक्राइन सिस्टम में बदलाव हुआ है तो जिंदगी और सिकुड़ जाएगी। आइआइटी के शोध का दावा है कि डीजल व गैसोलाइन इंजन से निकलने वाले कणों के कारण डीएनए में परिवर्तन की आशंका बढ़ने लगी है। डीजल के प्रयोग पर अंकुश न लगाया तो भविष्य में इंसानों के डीएनए की संरचना प्रभावित होने लगेगी, जो कि स्वास्थ्य के लिए ठीक नहीं है।

सबकुछ डीएनए पर है निर्भर

मेडिकल कॉलेज एनाटॉमी विभाग के प्रो. ने बताया कि डी-ऑक्सीराइबोन्यूक्लिक अ ल यानी डीएनए के जरिए ही किसी व्यक्ति के पूर्वजों की आनुवांशिक स्थिति को जानना संभव है। डीएनए बदला तो शारीरिक संरचना में बदलाव संभव है।

तो सीएनजी पर भरोसा कीजिए

शोध से कानपुर जैसे प्रदूषित शहरों को चेताया है कि अच्छी और स्वस्थय जिंदगी चाहते हैं तो डीजल के बजाए सीएनजी पर भरोसा कीजिए। कानपुर की आबोहवा के लिए सीएनजी का प्रसार बेहद जरूरी है।

संवाद का स्वरूप व फल

(चाल : 1. आत्मशक्ति.... 2. क्या मिलिए...)

- आचार्य कनकनन्दीजी

तीर्थंकर से आचार्य तक तथाहि प्राचार्य से शिक्षक तक।
भाव सम्प्रेषण के हेतु करते, संवाद माता-पिता तक।।

भाषा के साथ संकेतों से करते संवाद विविध प्रकार।
इससे ज्ञान विज्ञान सभ्यता, संस्कृति आदि का होता प्रचार।।

संवाद हेतु संवादकर्त्ता में होना चाहिए विविध गुण।
शुद्ध स्पष्ट भाव से (ले) भाषा, संकेत, उद्देश्य, सुनना-सुनने के गुण।।

भाव जब शुद्ध व स्पष्ट होता है, भाषादि भी होते तदनुकुल,
तब ही होता है सुसंवाद, अन्यथा हो जाता है प्रतिकूल।।

तीर्थंकर है परम श्रेष्ठ उदाहरण, उनका आदर्श अनुकरणीय।
सम्पूर्ण तो असंभव उनके सम, किन्तु यथायोग्य अनुकरणीय।

तीर्थंकर होते सर्वज्ञ सर्वदर्शी, तथाहि अठारह दोषों से रिक्त।
सात सौ अठारह भाषाओं से करते वे विश्व को संबोधित।।

राग, द्वेष, मोह, काम, क्रोध रिक्त, भय-आशा व मद से रहित।
सम्पूर्ण स्वार्थ व लोभ से रहित, करते उपदेश पक्षपात रिक्त।।

परम सत्य व आत्महित हेतु करते, उपदेश द्रव्य-तत्त्व-पदार्थ।
अहिंसा सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह का देते उपदेश।।

आत्मविश्वास ज्ञान-चारित्र युक्त, क्षमा मार्दव आर्जव शौच संयम।
समता-शान्ति-आत्मविशुद्धि से करने हेतु आत्मविकास।।

प्रमाणिकता से सापेक्ष दृष्टि से, करते उपदेश अनेकान्तयुक्त।
अन्याय-अत्याचार-पापाचार परे, करने हेतु आध्यात्मिक हित।।

उक्त गुणायुक्त जो होते हैं संवाद, वे ही यथार्थ से सुसंवाद।
पर निन्दा, अपमान, वाद-विवाद परे, हित-मित-प्रिय कथन।।

कथंचित, गुरु शिष्यों के सुबोध हेतु करते अमित कथन।
अनुशासन व सुधार हेतु कहते कठोर, किन्तु हितकर वचन।।

अन्यथा हित-मित-प्रिय-मधुर, शान्त-शालीन संवाद विधेय।
नम्र संयमित, द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव उपयुक्त संवाद ही विधेय।।

असत्य-कलह-कर्कश-अनुचित-आक्षेप-विक्षेप अविधेय।

शारीरिक भाषा संकेत भी उपरोक्त गुणयुक्त होना विधेय।।

सुसंवाद हेतु श्रोता व वक्ता (दोनों) को उक्त गुणयुक्त होना विधेय।
सुनाना-सुनना-जिज्ञासा-समाधान, प्रोत्साहनादि गुण विधेय।।

इन गुणों से ही गुरु-शिष्य संबंध, तथाहि श्रोता-वक्ता भी।
श्रावक-आचार्य, शिक्षक-छात्र से ले व्यापारी-ग्राहक भी।।

गद्य-पद्य नाटक संगीत रेडियो, टीवी, सिनेमा आदि भी।
उक्त गुण युक्त होना विधेय इस हेतु काव्य रचा कनक सूरी श्री।।

सागवाड़ा 17.04.2018 रात्रि 08:53

वचन के अमृत एवं विषादि रूप

(वचन की समीक्षा तथा मेरा अनुभव)

वचन भाव से अनुप्रेरित एवं शब्द तरंग से संप्रेषित होने के कारण कथञ्चित् वचन भाव-द्रव्यात्मक शक्ति सम्पन्न है। अतः भाव के विभिन्न स्तर/आवेश तथा शब्द के विभिन्न कम्पन्न के कारण वचन की शक्ति में विभिन्नता आ जाती है। जैसा कि घी खाने से तथा घी शतधौत करके लगाने से शीतलता प्रदान करता है; परन्तु जलाने से उष्णता प्रदान करता है। सज्जन, परोपकारी, शांत स्वभावी, समताधारी, पवित्र हृदय वाले महानुभाव का वचन अमृत के समान है तो दुष्ट, स्वार्थी, क्रूर-कठोर स्वभावी, संक्लेशी, अपवित्र हृदय वाला क्षुद्र व्यक्ति का वचन हलाहल विष से भी अधिक घातक होता है। यथा-

जग सुहितकर सब अहितकर, श्रुति सुखद सब संशय हरे।
भ्रमरोगहर जिनके वचन, मुखचन्द्र से अमृत झरे।।(छह)
तुलसी मीठे वचन ते, सुख उपजत चहुँ ओर।
वशीकरण यह मंत्र है, तज देहु वचन कठोर।।
नरस्य चन्दनं चन्द्रश्चन्द्रकान्तमणिर्जलम्।
न तथा कुरुते सौख्यं, वचनं मधुरं यथा।।

वचन तो शब्दात्मक है और शब्द भौतिक की अवस्था/पर्याय विशेष है तथापि

वचन में उपर्युक्त अभौतिक (भावात्मक) गुणों का सम्मिश्रण होने का प्रमुख कारण है वक्ता। जैसा कि हिम प्रदेश से प्रवाहित होकर आने वाली हवा शीतल हो जाती है तो रेगिस्तान, दावानल क्षेत्र को पार करके आने वाली हवा गरम हो जाती है अथवा फ्रीज, कूलर, ए.सी. आदि के कारण वातावरण शीतल हो जाता है तो हीटर, अग्नि आदि के कारण गरम। यथा-

वदनं प्रसाद सदनं, सदय हृदयं, सुधामचो वाचः।
करणं परोपकरणं, येषां केषां न ते वन्द्या।।

जिनके मुख सुखप्रद, सुंदर गृह के समान, हृदय दया सहित, अमृतवर्षणी वाणी, परोपकारी कार्य या परोपकार के परिणाम ऐसे महानुभाव किसके द्वारा वंदनीय नहीं हो अर्थात् सब गुणग्राही सज्जनों के द्वारा अवश्य वंदनीय है। उपरोक्त महापुरुष से विपरीत मूर्ख-दुर्जन होता है। यथा-

मूर्खस्य पञ्च चिह्नानि गर्वी दुर्वचनी तथा।
हठी चाप्रियवादी च हितोक्तं नैव मन्यते।।

ऐसे पुरुष की वाणी तीक्ष्ण बाण के समान हृदयरूपी वृक्ष को सदाकाल के लिए काट डालता है। यथा-

रोहते शायकेर्विध्दं वन परशुनाहतम्।
वाच दुरूक्तं वीभत्सं नापि रोहति वाक् क्षतम्।।

हजारों-लाखों लालित्य-मधुर-सुंदर शब्दों के सद्भाव के साथ-साथ ब्रह्माण्ड में अनंत शब्द-वर्गणाओं का सर्वत्र, सदा-सर्वथा सद्भाव होने पर भी दुर्जन लोग वचन में भी दरिद्र होकर कठोर, अप्रिय, पापकारक, कटु, मर्मभेदी शब्द-बाणों का प्रयोग करते रहते हैं। नीतिकार कहते हैं ''वचने किं दरिद्रता'' परन्तु मेरा दुःखदायी अनुभव है कि अधिकांश लोग बहुशः वचन में ही अधिक दरिद्र होते हैं, भले वे किसी भी धर्म-सम्प्रदाय के हो, शिक्षित या अशिक्षित हो, धनी या गरीब हो, बालक से लेकर वृद्ध ही क्यों न हो, ग्रामीण या शहरी हो, गृहस्थ से लेकर पंडित, साधु-संत ही क्यों न हो। इसमें और भी विचित्र दुःखदायी मेरा कटु अनुभव है, सामान्यजन से भी अधिक वचन में दरिद्र वे पाये जाते हैं जो धर्म का आडम्बर/दिखावा करते हैं। ऐसा ही गरीब से अधिक धनी, अशिक्षित से अधिक शिक्षित, ग्रामीण से अधिक शहरी,

नौकर से अधिक साहूकार-मालिक-बाबू-अधिकारी-सत्ता-संपत्ति-शक्ति-बुद्धिधारी, कम आयु वाला से अधिक आयु वाला, गृहस्थ से अधिक पंडित-साधु-साध्वी-त्यागी- व्रती, श्रोता से अधिक वक्ता, शासित से अधिक शासक आदि-आदि वचन में अधिक से अधिक दरिद्र होते हैं। क्योंकि भले बाह्य से वे कुछ ओढ़े/लादे रहते हैं परन्तु अंतरंग से वे खाली रहने से ''रिक्त चना बाजे घना'', ''अधजल गगरी छलकत जाय-भरी गगरी चुपकत जाय'', ''बड़ा ढ़ोल में बड़ा पोल'' होने से अधिक ढाऊँ-ढाऊँ आवाज करता'' के न्यायानुसार वे अहित-अमित-अप्रिय वचन अधिक बोलते हैं।

इसीलिए तो महान् तार्किक, राजनीति-न्याय के विद्वान् दि. जैनाचार्य वादीभसिंह ने कहा है - ''वक्त्रं वक्ति हि मानसम्'' अर्थात् मुख की आकृति-प्रकृति-अभिव्यक्ति अंतरंग/भाव/मन को प्रगट करती है। यही सही है क्योंकि जो अंदर में होगा वही तो बाहर निकलेगा। पात्र के अंदर यदि पानी है तो पानी निकलेगा, दूध है तो दूध, मद्य है तो मद्य, विष है तो विष, गैस है तो गैस, अमृत है तो अमृत।

क्षुद्र, दुर्जन, क्रूर, अहंकारी व्यक्ति अपनी दुर्बलताओं को छिपाने के लिए स्वयं को श्रेष्ठ, ज्येष्ठ, प्रभावशाली सिद्ध करने के लिए कठोर, कटु, निन्दात्मक, विषाक्त वचनों का प्रयोग करते हैं। उनके लिए यह संगीत के सबसे प्रिय राग है, तो नाटक के नवरसों में से भी प्रिय रस और भोजन के षट्रसों में से भी प्रिय रस है। जिस प्रकार घरेलू मक्खी को फूल के मकरन्द से भी गंदगी अधिक प्रिय है, जौंक को दूध से अधिक प्रिय दूषित खून है उसी प्रकार इन्हें हित-मित-प्रिय वचनरूपी अमृत से भी अधिक प्रिय अहित-अमित-अप्रिय वचनरूपी विष है।

ब्रह्माण्ड में सर्वत्र, सदा-सर्वथा अनंतानंत (कर्मवर्गणाएँ) कर्म परमाणु ठसाठस भरी होने पर भी अज्ञानी, मोही, क्रूर, संक्लेशी व्यक्ति पाप का ही आस्रव-बंध के साथ-साथ ही पापत्मक कार्य करता है उसी प्रकार वह व्यक्ति ब्रह्माण्ड में सर्वत्र सदा सर्वथा अनंतानंत भाषा वर्गणायें भाषा रूप में परिणमन करने योग्य भौतिक परमाणुओं का समूह होने पर भी वह अशुभ-पापात्मक भाषा वर्गणाओं का ही प्रयोग करता है। क्योंकि जिस प्रकार की कर्म वर्गणाएँ सब एक ही प्रकार की होती है तथापि जीव के

शुभ-अशुभ योग एवं उपयोग के अनुसार शुभ अथवा अशुभ रूप परिणमन कर लेती है, उसी प्रकार सब भाषा-वर्गणाएँ एक समान होने पर भी शुभ या अशुभ भाषा रूप में प्रयोगकर्ता के शुभ-अशुभ योग एवं उपयोग के कारण परिणमन कर लेती है। इसलिए तो कहा गया है-''**भाग्यहीन को न मिलती है भली वस्तु का योग**'', ''**मन चंगा तो कठौति में गंगा**'', ''**जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि**'' आदि-आदि। समुद्र में प्रचुर जलराशि होते हुए भी जिसके पास जितना बड़ा पात्र है वह उतना ही पानी ग्रहण कर सकता है; उसी प्रकार **व्यक्ति अपनी पात्रता के अनुसार ही किसी भी विषय को ग्रहण या प्रयोग कर सकता है।** कोयल तथा कौआ एक ही उपवन में रहकर भी कोयल के समान कौआ नहीं बोल सकता तथा कौआ के समान कोयल भी नहीं बोल सकती है। ऐसा व्यक्ति-''**सद्वृत्तानां गुणगणकथा दोषवादे च मौनम्**'' के परिवर्तन में भी ''**असद्वृत्तानां दुगुणगणकथा गुणवादेच मौनम्**'' तथा ''सर्वस्यापिप्रिय हितवचो भावना चात्मतत्त्वे'' के परिवर्तन में ''सर्वस्यापि अप्रियाहित वचो भावना चानात्मतत्त्वे'' का ही प्रयोग करके स्व-पर-विश्व को हानियाँ पहुँचाते रहते हैं। इन सब विषम परिस्थितियों से वचन के लिए इस कृति का संकलन/संपादान/लेखन किया गया है। संक्षेप में कुछ दिग्दर्शन यहाँ प्रस्तुत है।

साचं बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जाके हिरदे सांच है, वाके हृदये आप।।

कण्टकाकीर्ण मार्ग से भी पादत्राण के सहयोग से जिस प्रकार यात्री सुरक्षित यात्रा संपन्न कर सकता है; उसी प्रकार विषमतापूर्ण संसार में मोक्ष के पथिक समता-सहिष्णुता-क्षमादि रूपी आत्मत्राण के सहयोग से यात्रा संपन्न कर लेता है। वह है आत्मत्राण के उपाय-

णाणाजीवा णाणाकम्मं णाणा विही हवे लद्धि।
तेण वयण विवादं सग-पर समयम्मि बज्जिदो।। आ.कुंदकुंददेव

अर्थात् ना जीव हैं, नाना प्रकार के कर्म हैं तथा विभिन्न प्रकार की उपलब्धि (योग-उपयोग-विचारादि) हैं। अतः प्रत्येक जीव में सूंपर्ण समानता नहीं हो सकती है। नवम् गुणस्थान से आगे वैचारिक समानता कुछ दृष्टि से संभव है परन्तु इसके पहले संभव नहीं है। क्योंकि प्रत्येक गुणस्थान में भी असंख्यात लोक प्रमाण उपयोग/

लब्धि स्थान होते हैं। इसलिए केवल एक पंचम गुणस्थान (देशव्रती गुणस्थान) में प्रथम प्रतिमा से लेकर क्षुल्लक, ऐलक, आर्यिका तक होते हैं। कहाँ एक पंचम गुणस्थान वाला व्रती (पहले से 6वीं प्रतिमा तक) विवाह, कृषि, वाणिज्य आदि आरंभ, सारंभ, परिग्रह संग्रह आदि करता और कहाँ छुल्लक, ऐलक, आर्यिका स्थानीय पंचम गुणस्थान व्रती उपरोक्त विवाहादि आरंभ आदि से सर्वथा निवृत्त है। इसी प्रकार निर्ग्रन्थ (मुनि) में भी ''पुलाक-बकुश-निर्ग्रन्थ-स्नातका निर्ग्रन्थाः'' भेद-प्रभेद होते हैं। यह भेद भी उनके विचार, व्यवहार के कारण है। कुछ साधु तो उत्तर गुणों के साथ-साथ मूल गुणों में भी दोष लगाते हैं तो कुछ उत्तर गुणों में। यह सब केवल पंचम काल में ही नहीं किन्तु चतुर्थ काल में भी होता था। इसी प्रकार चतुर्थ गुणस्थान में (1) उपशम, (2) क्षयोपशम और (3) क्षायिक की अपेक्षा तथा लेश्या एवं कषाय की अपेक्षा भी भेद-प्रभेद हो जाते हैं। मिथ्यात्व गुणस्थानवर्ती एक व्यक्ति जैन मुनि बनकर उपसर्ग तथा परीषह सहन करके स्वर्ग में (ग्रैवयक) देव बनता है और कोई एक मिथ्यादृष्टि व्यक्ति मुनि के ऊपर उपसर्ग करके सप्तम नरक जाता है। इतना ही नहीं अनेक (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) भद्र मिथ्यादृष्टि जैन मुनि को आहार देकर या ग्वाला आदि ठण्डी से साधुओं को बचाने के लिए रात को आग जलाकर सेवा करते हैं। जिससे वे आगे जाकर सम्यग्दृष्टि, भोगभूमिज, देव, राजा, महाराजा, चक्रवर्ती, गणधर, तीर्थंकर बनकर सिद्ध बनते हैं। इतना ही नहीं जो घोर मिथ्यादृष्टि, पापी, हिंसक, चोर, व्यसनी आदि हैं वे भी अंतर्मुहूर्त (48 मि.) में सम्यक्दृष्टि, मुनि, गणधर, अरिहंत से लेकर सिद्ध भगवान् बन जाते हैं। इसके लिए उदाहरण वर्द्धमान कुमार एवं उनके मित्र, विद्युत चोर, अंजन चोर, राजा श्रेणिक आदि-आदि। ऐसी परिस्थिति में मिथ्यादृष्टि, पापी, विधर्मी से भी घृणा, द्वेष आदि नहीं करना चाहिए तब तो जो सहधर्मी है, जैन हैं, मुनि, आर्यिका, श्रावक-श्राविका हैं उनसे कैसे घृणा, द्वेष, भेद-भावादि एक सच्चा जैनी कर सकता है? कदापि नहीं कर सकता है। यदि करता है तो वह प्रारंभिक जैन भी नहीं हो सकता है। एक प्राथमिक जैनी भी (1) उपगूहन, (2) स्थितिकरण, (3) वात्सल्य, (4) प्रभावना अंग के कारण (1) स्व के गुणों को बढ़ाता है, दूसरों के दोषों को ढाकता (दोषवादे च मौनं) है। (2) स्व-पर को धर्म मार्ग में प्रवृत्त करता है। (3) स्व-आत्मा में एवं दूसरों में वात्सल्य भाव रखता है। (4) स्व-पर में प्रकृष्ट

भावना (प्र+भावना=प्रभावना) करता है। इसके साथ-साथ निम्नोक्त भावना एवं व्यवहार से युक्त होता है।

सत्वेषु मैत्रीं गुणिषु प्रमोदं, क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम्।
माध्यस्थभावं विपरीत वृत्तौ, सदा ममात्मा विदधातु देव।।

हे भगवान्! मेरा प्रत्येक जीव के प्रति मैत्री भाव रहे, गुणीजनों में प्रमोद भाव रहे, दुःखीजनों के लिए करूणा भाव रहे, दुर्जनों के प्रति मेरा माध्यस्थ भाव (साम्य भाव) रहे।

आत्मवत्परत्र कुशलवृत्ति चिन्तनं शक्तिस्त्याग तपसी च
धर्माधिगमोपायाः (नीति वाक्या.)

अपने ही समान दूसरे प्राणियों का हित (कल्याण) चिन्तवन करना, शक्ति के अनुसार पात्रों को दान देना और तपश्चरण करना ये धर्म प्राप्ति के उपाय हैं।

''सर्वेऽपि सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वेभद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःखमाप्नुयात्।।''

संपूर्ण जीव-जगत् सुखी निरोगी, भद्र, विनयी, सदाचारी रहें। कोई भी थोड़े भी दुःख को प्राप्त न करें। जब विश्व के एकेन्द्रिय से लेकर पशु-पक्षी, नारकी, पापी से भी जो जैनी मित्रता का भाव रखता है तब वह चतुर्विध संघ से घृणा, भेदभाव कैसे रख सकता है? कदाचित् भी नहीं रख सकता है। जो रखता है वह जैनी नहीं है-वह छैनी है-जो स्वयं के गुणों को एवं चतुर्विध संघ को छिन्न-भिन्न (हत्या) करता है। गुण-गुणी से प्रमोद, वात्सल्य, बहुमान, विनय, समर्पण, सेवाभाव के परिवर्तन में जो ईर्ष्या, द्वेष, निन्दा भाव रखता एवं करता है वह घोर मिथ्यादृष्टि है, नीच गौत्र, असातावेदनीय आदि पापकर्म बांधता है। उपसर्ग-परीषह-रोग-तकलीफ से युक्त चतुर्विध संघ या किसी भी प्राणी के प्रति वात्सल्य, दया, करूणा या अभयदान गुण से युक्त होकर सेवा, वैयावृत्ति, दान, रक्षा करना जैनी का एक प्रमुख धर्म है। क्योंकि यह तो यथार्थ से विधिपरक प्रायोगिक अहिंसा है। परन्तु ऐसी परिस्थिति में भी जो सेवा दान आदि के परिवर्तन में निन्दा, आक्षेप करता है वे जैनी होना तो दूर है सामान्य मानवीय गुण से भी दूर है, लोभी है, हिंसक है।

हितोपदेशी दुर्लभ-

जना धनाश्च वाचालाः सुलभाः स्युर्वुयोत्थिताः।
दुलर्भा ह्यन्तरार्द्रास्ते जगदभ्युज्जिहीर्षवः।। (4)

जिसका उत्थान (उत्पत्ति एवं प्रयत्न) व्यर्थ है ऐसे वाचाल मनुष्य और मेघ दोनों ही सरलता से प्राप्त होते हैं। किन्तु जो भीतर से आर्द्र (दयालु और जल से पूर्ण) होकर जगत् का उद्धार करना चाहते हैं ऐसे वे मनुष्य और मेघ दोनों दुर्लभ हैं।

विशेषार्थ-जो मेघ गरजते तो हैं, किन्तु जलहीन होने से बरसते नहीं है, वे सरलता से पाये जाते हैं। परन्तु जो जल से परिपूर्ण होकर वर्षा करने के उन्मुख हैं, वे दुर्लभ ही होते है। ठीक इसी प्रकार से जो उपदेशक अर्थहीन अथवा अनर्थकारी उपदेश करते हैं वे तो अधिक मात्रा में प्राप्त होते हैं, किन्तु जो स्वयं मोक्षमार्ग में प्रवृत्त होकर दयार्द्रचित होते हुए अन्य उन्मार्गगामी प्रणियों को उससे उद्धार करने वाले सदुपदेश करते हैं वे कठिनता से ही प्राप्त होते हैं। ऐसे ही उपदेशक का प्रयत्न सफल होता है।

हितोपदेशी का स्वरूप-

प्राज्ञः प्राप्तसमस्तशास्त्रहृदयः प्रव्यक्तलोकस्थितिः।
प्रास्ताशः प्रतिभापरः प्रशमवान् प्रागेव दृष्टोत्तरः।।
प्रायः प्रश्नसहः प्रभुः परमनोहारी परानिन्दया।
ब्रुयाद्धर्मकथां गणी गुणनिधिः प्रस्पष्टमिष्टाक्षरः (5)

जो त्रिकालवर्ती पदार्थों को विषय करने वाली प्रज्ञा से सहित हैं, समस्त शास्त्रों के रहस्य को जान चुके हैं, लोक व्यवहार से परिचित हैं, अर्थ-लाभ और पूजा-प्रतिष्ठा आदि की ईच्छा से रहित हैं, नवीन-नवीन कल्पना की शक्तिरूप अथवा शीघ्र उत्तर देने की योग्यतारूप उत्कृष्ट प्रतिभा से सम्पन्न है, शांत है, प्रश्न करने से पूर्व में ही वैसे प्रश्न के उपस्थित होने की संभावना से उसके उत्तर को देख चुका है, प्रायः अनेक प्रकार के प्रश्नों के उपस्थित होने पर उनको सहन करने वाला है अर्थात् न तो घबराता है और न उत्तेजित ही होता है, श्रोताओं पर प्रभाव डालने वाला है, उनके

(श्रोताओं के) मन को आकर्षित करने वाला अथवा उनके मनोगत भाव को जानने वाला है, तथा उत्तमोत्तम अनेक गुणों का स्थानभूत है; ऐसा संघ का स्वामीं आचार्य दूसरों की निन्दा न करके स्पष्ट एवं मधुर शब्दों में धर्मोपदेश देने का अधिकार होता है।

सच्चे गुरु-(हितोपदेशी)

श्रुतमविकलं शुद्धाः वृत्ति परप्रतिबोधने।
परिणतिरूरूद्योगोमार्ग प्रवर्तनसद्धिधो।
बुधनुतिरनुत्सेकोलोकज्ञतामृदुताऽस्पृहा।
यतिपतिगुणा यस्मिन्नन्येचसोऽस्तुगुरुःसताम्।।

जिसके परिपूर्ण श्रुत है अर्थात् जो समस्त सिद्धान्त का जानकार है, जिसका चारित्र अथवा मन, वचन व कार्य की प्रवृत्ति पवित्र है; जो दूसरों को प्रतिबोधित करने में प्रवीण है, मोक्षमार्ग के प्रचार रूप समीचीन कार्य में अतिशय प्रयत्नशील है, जिसकी अन्य विद्वान् स्तुति करते है, तथा जो स्वयं भी विशिष्ट विद्वानों की प्रशंसा एवं उन्हें नमस्कारादि करता है, जो अभिमान से रहित है, लोक और लोकमर्यादा का जानकार है, सरल परिणामी है, इस लोक सम्बन्धी इच्छाओं से रहित है, तथा जिसमें और भी आचार्य पद के योग्य गुण विद्यमान है; वही हेयोपादेय-विवेक ज्ञान के अभिलाषी शिष्यों का गुरु हो सकता है।

सच्चे शिष्य-

भव्यः किं कुशलं ममेति विमृशन् दुःखाद् भृशं भीतवान्।
सौख्यैषीश्रवणदिबुद्धिविभवः श्रुत्वा विचार्य स्फुटम्।
धर्म शमकरं दयागुणमयं युक्तत्यागमाभ्यां स्थितं,
गृह्णन् धर्मकथां श्रुतावधिकृतः शास्यो निरस्ताग्रहः।। 7

जो भव्य है; मेरे लिए हितकारक मार्ग कौनसा है, इसका विचार करने वाला है; दुःख से अत्यंत डरा हुआ है, यथार्थ सुख का अभिलाषी है, श्रवण आदि रूप बुद्धि वैभव से संपन्न है, तथा उपदेश को सुखकारक और उसके विषय में स्पष्टता से विचार करके जो युक्ति व आगम से सिद्ध है ऐसे सुखकारक दयामय धर्म को ग्रहण

करने वाला है; ऐसा दुराग्रह से रहित शिष्य धर्मकथा के सुनने में अधिकारी माना गया है।

यहाँ धर्मोपदेश के सुनने का अधिकारी कौन है, इस प्रकार श्रोता के गुणों का विचार करते हुए सबसे पहले यह बतलाया है कि भव्य होना चाहिए। जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र को प्राप्त करके भविष्य मे अनंत चतुष्टय स्वरूप से परिणत होने वाला है भव्य कहलाता है। यदि श्रोता इस प्रकार का भव्य नहीं है तो उसे उपदेश देना व्यर्थ ही होगा। कारण कि जिस प्रकार पानी के सींचने से ही मिट्टी गीलेपन को प्राप्त हो सकती है उसी प्रकार पत्थर नहीं हो सकता, अथवा जिस प्रकार नवीन घट के ऊपर जल बिन्दुओं के डालने पर वह उन्हें आत्मसात् कर लेता है उस प्रकार घी आदि से चिक्कणता को प्राप्त हुआ घट उन्हें आत्मसात नहीं कर सकता-वे इधर-उधर बिखरकर नीचे गिर जाती हैं। ठीक यही स्थिति उस श्रोता की भी है-जिस श्रोता का हृदय सरल है वह सदुपदेश को ग्रहण करके तद्नुसार प्रवृत्ति करने में प्रत्यनशील होता है, किन्तु जिसका हृदय कठोर है उसके ऊपर सदुपयोग का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। अतएव सबसे पहले उसका भव्य होना आवश्यक है। दूसरी विशेषता उसकी यह निर्दिष्ट की गई है कि उसे हिताहित का विवेक होना चाहिए। कारण कि मेरा आत्मकल्याण किस प्रकार से हो सकता है, यह विचार यदि श्रोता के रहता है तब तो वह सदुपदेश को सुनकर तद्नुसार कल्याण मार्ग में चलने के लिए उद्यत हो सकता है। परन्तु यदि उसे आत्महित की चिंता अथवा हित और अहित का विवेक नहीं है तो मोक्ष मार्ग में प्रवृत्त नहीं हो सकेगा। किन्तु जब और जिस प्रकार का प्रतिकूल उपदेश उसे प्राप्त होगा तद्नुसार वह अस्थिर से आचरण करता रहेगा! इस प्रकार से वह दुःखी ही बना रहेगा। इसलिए उसमें आत्महित का विचार और उसके परीक्षण की योग्यता अवश्य होनी चाहिए। इसी प्रकार उसे दुःख का भय और सुख की अभिलाषा होनी चाहिए, अन्यथा यदि उसे दुःख से किसी प्रकार का भय नहीं है या सुख की अभिलाषा नहीं है तो फिर भला वह दुःख को दूर करने वाले सुख के मार्ग में प्रवृत्त ही क्यों होगा? नहीं होगा। अतएव उसे दुःख से भयभीत और सुखाभिलाषी भी अवश्य होना चाहिए। इसके अतिरिक्त उसमें निम्न प्रकार बुद्धि का वैभाव या श्रोता के आठ गुण भी होना चाहिए-

शुश्रुषा श्रवणं चैव ग्रहणं धारणं तथा।
स्मृत्यूहापोहनिर्णीतिः श्रोतुरष्टौ गुणान् विदुः।।

सबसे पहले उसे उपदेश सुनने की उत्कंठा (शुश्रुषा) होनी चाहिए, अन्यथा तद्नुसार आचरण करना तो दूर रहा किन्तु वह उसे रूचिपूर्वक सुनेगा भी नहीं। अथवा शुश्रुषा से अभिप्राय गुरु की सेवा का भी हो सकता है, क्योंकि वह भी ज्ञान प्रप्ति का साधन है। इसके अनन्तर श्रवण (सुनना), सुने हुए अर्थ को ग्रहण करना, ग्रहण किये हुए अर्थ को हृदय में धारण करना, उसका स्मरण करना (रखना) उसके योग्यायोग्य का युक्तिपूर्वक विचार करना, इस विचार से जो योग्य प्रमाणित हो उसे ग्रहण करके अयोग्य अर्थ को छोड़ना, तथा योग्य तत्त्व के विषय में दृढ़ता से रहना, ये श्रोता के आठ गुण है जो उसमें होने चाहिए। उपर्युक्त गुणों के अतिरिक्त श्रोता में हठाग्रह का अभाव भी होना चाहिए, क्योंकि वह यदि हठाग्रही है तो वह यथावत् वस्तु का स्वरूप का विचार नहीं कर सकेगा। कहा भी है-

आग्रहीवत् निनीषति युक्ति तत्र यत्र मतिरस्य निविष्टा।
पक्षपातरहितस्य तु युक्तिर्यत्र तत्र मतिरेति निवेशम्।।

अर्थात् दुराग्रही मनुष्य ने जो पक्ष निश्चित कर रखा है वह युक्ति को उसी ओर ले जाना चाहेगा। किन्तु जो आग्रह से रहित होकर निष्पक्ष दृष्टि से विचार करना चाहता है वह युक्ति का अनुसरण करके उसके ऊपर विचार करता और तद्नुसार वस्तु-स्वरूप का निश्चय करता है। इस प्रकार जिस श्रोता में ये गुण विद्यमान होंगे वह सरूचिपूर्वक धर्मोपदेश को सुन करके तद्नुसार आत्महित के मार्ग में अवश्य प्रवृत्त होगा।

गुरु के कठोर वचन भी हितकारी-

विकाशयन्ति भव्यस्य मनोमुकुलमंशवः।
रवेरिवारविन्दस्य कठोराश्च गुरुक्तयः।।142 (आत्मानुशासन)

जिस प्रकार सूर्य की किरणें भी कमल को प्रफुल्लित करती है उसी प्रकार गुरु की कठोर वाणी भी भव्य जीव के मन को प्रफुल्लित करती है।

श्री गुरु दोष छुड़ाने और गुण-ग्रहण कराने के लिए कदाचित् असुहावने कठोर वचन भी कहे तो भी भव्य जीव को मन उन वचनों को सुनकर प्रसन्न ही होता है, उसे चिन्ता या खेद नहीं होता। जिस प्रकार सूर्य की किरणें यद्यपि औरों को आताप उत्पन्न करने वाली उग्र और कठोर होती है, तथापि वे कमल की कली को प्रफुल्लित ही करती है, उसी प्रकार गुरु के वचन पापियों को स्वयं हीन होने के कारण यद्यपि दुःख उत्पन्न करने वाले कठोर होते हैं, तथापि वे धर्मात्मा के मन को आनंद ही उत्पन्न करते हैं। धर्मात्मा जीवों को श्री गुरु जब दबाकर (अत्यंत कठोरता के साथ) उपदेश देते हैं, तब वे अपने को धन्य मानते है।

प्रश्न-कठोर उपदेश से पापियों को तो दुःख ही होगा?

उत्तर-श्रीगुरु जिसे पापी या तीव्र कषायी समझते हैं, उसे कठोर उपदेश नहीं देते, वहां माध्यस्थ भाव रखते हैं।

यहाँ तो आचार्य शिष्य को शिक्षा देते हैं कि श्री गुरु तेरा भला करने के लिए कठोर वचन कहते हैं, उन्हें तुझसे ईर्ष्या का प्रयोजन नहीं है, अतः उन्हें इष्ट जानकर उनका आदर ही करना चाहिए।

धर्मात्माओं की दुर्लभता-

लोकद्वयहितं वक्तुं श्रोतुं च सुलभाःपुरा।
दुर्लभाः कर्तुमद्यत्वे वक्तुं श्रोतुं च दुर्लभाः। (143)

पूर्व काल में दोनों लोकों में हितकारी धर्म को कहने और सुनने वाले सुलभ थे, किन्तु करने वाले दुर्लभ थे, किन्तु इस काल में तो कहने और सुनने वाले भी दुर्लभ हो गये है।

इस लोक और परलोक में जीव का हित करने वाले धर्म को कहने वाले और सुनने वाले पहले चतुर्थ काल में बहुत होते थे, परन्तु अंगीकार करने वाले तो उस समय भी थोड़े ही थे, क्योंकि संसार में धर्मात्मा थोड़े ही होते हैं।

लेकिन अब यह पंचम काल ऐसा निकृष्ट है कि इसमें सच्चे धर्म को कहने वाले तो अपने लोभ और मान के अभिलाषी हो गये हैं, इसलिए वे यथार्थ नहीं कहते तथा सुनने वाले जड़ और वक्र हो गये हैं, इसलिए वे परीक्षा-रहित, हठग्राही होने से

यथार्थ बात नहीं सुनते। जब कहना सुनना ही दुर्लभ हो गया तो अंगीकार करने की बात ही क्या करना?

इस प्रकार इस काल में धर्म दुर्लभ हो गया है, सो ठीक ही है, क्योंकि यह पंचम काल ऐसा निकृष्ट है कि जिसमें सभी उत्तम वस्तुएँ अल्प होती जाती हैं और धर्म भी तो उत्तम है, अतः उसकी वृद्धि कैसे हो सकती है? इसलिए इस निकृष्ट काल में जिन्हें धर्म की प्राप्ति होती है, वे ही धन्य हैं।

तीन बंदर की मूर्तियाँ ही नही; चार चाहिए

तीन बंदर की मूर्तियाँ-(1) बुरा नहीं देखना, (2) बुरा नहीं सुनना, (3) बुरा नहीं बोलना के प्रतीक स्वरूप क्रमशः हाथों से दोनों आँख दोनों कान एवं मुख को बंद करती हुई बंदर 3 मूर्तियाँ पर्याप्त नहीं हैं। इसके साथ-साथ बुरा नहीं सोचने के भाव के प्रतीक स्वरूप छाती में हाथ रखती हुई चौथी बंदर की मूर्ति की भी नितान्त अनिवर्यता है। क्योंकि यदि कोई अंधा-बधिर-मुक भी है परन्तु बुरा सोच रहा है तो वह बुरा ही है परन्तु वितराग सर्वज्ञ भगवान् सब कुछ देखने-सुनने पर भी तथा 718 भाषा में बोलने पर भी बुरा नहीं है। अच्छा-बुरा का उद्‌गमस्रोत विचार ही है। विचार के अनुसार ही उच्चारण-श्रवण-दर्शन-आचरण होता है।

ईमानदारी का अर्थ है हर चीज़ में अखंडता। ईमानदारी का अर्थ है पूर्णता; इसका अर्थ है हर चीज़ में सच्चाई-हर कर्म में, हर शब्द में।

-ओरिसन स्वेट मार्डन

संवाद में यह महत्त्वपूर्ण है कि आप वही कहें, जो आपका अर्थ हो और जो आप कहते हैं, वहीं आपका अर्थ हो- और इस तरह कहें, ताकि सकारात्मक संबंध बनें। इसे ही हम प्रामाणिकता की कला कहते हैं। प्रामाणिकता की कला का अर्थ है अपने आस-पास के लोगों के साथ सच्चा बनने में निपुण होना। ईमानदारी की कमी से संबंध तनावपूर्ण बन सकते हैं, उन पर धब्बा लग सकता है, संवाद करना कठिन हो सकता है और भावानाओं व इरादों को तय करना कठिन हो सकता है। संवाद को स्पष्ट और ईमानदार रखना दूसरों से व्यवहार करने का महत्वपूर्ण सूत्र है। संप्रेषण

दुविधापूर्ण होने पर क्या होता है, इसके कुछ उदाहरण देखें।

ब्रैनिफ़ एयरलाइंस ने अपने यात्रियों को लुभाने के लिए नारा दिया, ''फ्लाई इन लेदर ।'' जबकि स्पेनिश भाषा में इसका अनुवाद है ''नंगे उड़ो।'' ईस्टर्न एयरलाइंस ने दावा किया, ''वी अर्न अवर विंग्स डेली।'' स्पेनिश में इसका अर्थ है कि हवाई जहाज़ की अतिंम मंज़िल स्वर्ग होगी। जनरल मोटर्स को बहुत समय बाद पता चला कि इसकी कॉम्पैक्ट कार ''नोवा'' का स्पेनिश भाषा में मतलब होता है ''नहीं चलती है।'' कूर्स ने अपने अँग्रेज़ी बोलने वाले ग्राहकों को प्रोत्साहित किया, ''टर्न इट लूज़।'' लेकिन स्पेनिश में इसका अर्थ होता है, ''दस्त से परेशान।'' बडवेज़र का स्लोगन ''किंग ऑफ बियर्स'' स्पेनिश भाषा में ''क्वीन ऑफ़ बियर्स'' हो गया, क्योंकि बियर का स्पेनिश शब्द ''सरवेज़ा'' स्त्रीलिंग है।

इन उदाहरणों से पता चलता है कि जो संदेश भेजा गया था, वह गड़बड़ हो गया और इसका कारण था, ख़राब संप्रेषण और ईमानदारी की कमी। जब हम अपने इरादों के बारे में स्पष्ट नहीं होते या किसी व्यक्ति से फा़यदा उठाने के लिए दाँव चलते हैं तो हमारे साथ भी यही होता है।

दृढ़ बनें

.क्या आप अजनबियों के साथ बातचीत करने में अजीब महसूस करते है?

.क्या आप किसी दुकान में सामान ख़रीदते समय दूसरों को कतार में अपने आगे लगने देते है?

. क्या आप रेस्त्राँ में ऐसा ख़राब भोजन भी खा लेते हैं, जिसे अच्छी तरह तैयार न किया गया हो?

.क्या आपको वह बात व्यक्त करने में मुश्किल आती है, जिसे आप सचमुच कहना चाहते हैं?

अगर आपने इनमें से कुछ सवालों का जवाब भी ''हाँ'' में दिया है, तो आपको संभवतः सकारात्मक दृढ़ता (assertiveness) खुराक़ की आवश्यकता है। याद रखें, हम जिन शब्दों का प्रयोग करते हैं, वे हमारे बारे में बहुत सी महत्वपूर्ण बातें

दशार्ते हैं। क्या आपके शब्दों और कामों से यह झलकता है कि आप आत्मविश्वासी हैं या फिर यह झलकता है कि आप डरे हुए हैं? उनसे सकारात्मक आत्म-छवि संप्रेषित होती है या फिर कमज़ोर भीतरी आवाज़? क्या आपके शब्द और काम दूसरों को यह बताते हैं कि आपको अपने उत्पाद पर विश्वास है या फिर यह बताते हैं कि आपकी दरअसल कोई राय ही नहीं है? क्या वे कहते हैं, ''मुझसे आगे निकल जाओ'' या फिर यह कहते हैं, ''मैं किसी महत्त्वपूर्ण जगह जा रहा हूँ?'' क्या आपके शब्द और काम सटीक ढंग से यह उजागर करते हैं कि आप भीतर से कैसा महसूस कर रहे हैं? अगर नहीं, तो आप अपने आस-पास के लोगों के साथ ईमानदार नहीं हैं। ईमानदारी के लिए कुछ हद तक दृढ़ता की आवश्यकता होती है।

पॉवर पॉइंट

आपके काम और शब्द इन तीन श्रेणियों में से किसी एक में आते हैं : निष्क्रियता, आक्रामकता या दृढ़ता।

निष्क्रियता आम तौर पर कम आत्म-गौरव से जुड़ी होती है। इसके चलते हम दूसरों को ''स्वयं को कुचलने'' की अनुमति देते हैं। इससे कमज़ोरी और कातरता उजागर होती है। इसमें वास्तविक नेतृत्व के आत्मविश्वास की कमी होती है। निष्क्रियता से उस बात को संप्रेषित करने की अक्षमता पता चलती है, जो आप सचमुच सोचते या महसूस करते हैं। निष्क्रिय कथनों के उदाहरण देखें :

- ''मुझे परवाह नहीं है कि हम आज रात को क्या करते हैं'' (जबकि आप सचमुच परवाह करते हो।)
- ''जो आपको अच्छा लगे...'' (जबकि आपकी कोई स्पष्ट राय हो)

आक्रामकता एकतरफ़ा होती है। इसमें सामने वाले की भावनाओं पर ध्यान ही नहीं दिया जाता। आक्रामकता आम तौर पर तानों या नीचा दिखाने वाले शब्दों का रूप ले लेती है। यह रक्षात्मकता और प्रतिरोध की ओर ले जाती है। लोगों को यह पसन्द नहीं होता कि उन्हें नियंत्रित करे। आक्रामक कथनों के कुछ उदाहरण देखें:

- ''यहाँ मदद करने के लिए कोई कुछ नहीं करता।''
- ''हम तुम्हारे लिए कितना कुछ करते हैं, लेकिन तुम बच्चे उस बात को

महत्त्व नहीं देते।''

दूसरी ओर, दृढ़ता से ईमानदारी व्यक्त होती है और यह लोगों को सशक्त बनाकर उनका दिल जीत लेती है। यह निष्क्रियता और आक्रामकता के बीच सम्मान पर आधारित संतुलन है। इससे आप महत्त्वपूर्ण संबंधों को चोट पहुँचाए बिना अपने वास्तविक विचार, भावनाएँ और विश्वास व्यक्त कर सकते हैं। इसमें सामने वाले के दृष्टिकोण पर भी ध्यान दिया जाता है और आम तौर पर यह रक्षात्मकता के स्थान पर सहयोग की ओर ले जाती है। दृढ़ता संबंधी अच्छी योग्यता विकसित करने की कुछ कुंजियाँ ये हैं :-

1. सामान्य के स्थान पर विशिष्ट बातों का प्रयोग करें।
2. उद्देश्यों के स्थान पर व्यवहार की ओर संकेत करें।
3. निर्णायक बनने के स्थान पर निष्पक्ष रहें।
4. सीधे मुद्दे पर आएँ।
5. सही व्यक्ति से बात करें।

1. सामान्य स्थान पर विशिष्ट बातों का प्रयोग करें

- ''इस प्रस्तुति को लेकर मुझे अच्छा महसूस नहीं हुआ।''
- ''आप जिस तरह से संवाद करते हैं, उसमें कोई चीज़ ऐसी है, जिससे मुझे परेशानी होती है।''
- ''मैं ये नहीं बता सकता कि मेरा क्या अर्थ है। बस मुझे यह पसन्द नहीं आया।''

क्या आपने कभी किसी को इस तरह गोल-मोल बातें कहते सुना है? इन बातों से आपको पता ही नहीं चलता कि सामने वाला किस बारे में बोल रहा है। अगर आप लोगों से स्पष्ट, विशिष्ट बातें कहते हैं, तो वे अधिक स्पष्टता से समझते हैं। गोल-मोल बातों से आम तौर पर सामने वाला रक्षात्मक हो जाता है और उसका खुलापन समाप्त हो जाता है। विशिष्ट बातों से, खेलने का एक अच्छा मैदान तैयार होता है, जिससे सामने वाला हमारी कही बात को ग्रहण कर लेता है। जब आप किसी विशेष मुद्दे के बारे में किसी व्यक्ति से बात करें, तो समस्या के समाधान के लिए महत्त्वपूर्ण चीज़ों के बारे में एकदम स्पष्ट रहें। व्यक्तियों (''किसी ने कहा था'' का उपयोग न

करें), मूर्त घटनाओं और तारीख़ों के संदर्भ में बात करें।

पॉवर पॉइंट :

कुछ लोग कम से कम के बारे में अधिक से अधिक कहते हैं और अंत में वे कुछ नहीं कह पाते हैं।

2. उद्देश्यों स्थान पर व्यवहार की ओर संकेत करें

किसी दूसरे के दिल के इरादों के बारे में सटीक ढंग से पता लगाना बहुत मुश्किल होता है। जब आप इरादों या उद्देश्यों पर सवालिया निशान लगाते हैं, तो आप उस व्यक्ति पर हमला बोल देते हैं। इसके स्थान पर, किसी विशेष व्यवहार के बारे में बात करें और इस बारे में भी कि वह व्यवहार उस मुद्दे के बारे में आपकी सोच को किस तरह प्रभावित करता है। व्यवहार परखे जा सकते हैं, जबकि इरादे व्यक्तिगत होते हैं और इनकी गलत व्याख्या की जा सकती है।

3. निर्णायक स्थान पर निष्पक्ष बनें

फ़ारस के राजा की पुरानी कहानी है। वे अपने चार बेटों को सिखाना चाहते थे कि कोई भी निर्णय जल्दबाज़ी में कभी नहीं लेना चाहिए। इसलिए उन्होंने सबसे बड़े बेटे से कहा कि वह आम का पेड़ देखने के लिए जाड़े में यात्रा करे। फिर उन्होंने दूसरे बेटे को वसंत में भेजा, तीसरे को गर्मी में और सबसे छोटे बेटे को शरद ऋतु में। जब अंतिम बेटा आम का पेड़ देखकर वापस आया, तो राजा ने चारों को बुलाया और आम के पेड़ का वर्णन करने को कहा। सबसे बड़े बेटे ने कहा, ''यह तो जले हुए पुराने ठूँठ जैसा दिखता है।'' दूसरे वाले ने कहा, ''नहीं, यह तो हरा-भरा है।'' तीसरे ने इसका वर्णन ''नहीं, इसका फल तो नाशपाती जैसा है।'' राजा ने कहा, ''तुम सभी सही हो, क्योंकि तुमने पेड़ को अलग-अलग मौसम में देखा है।''

इस कहानी की सीख स्पष्ट है। जल्दबाजी में एकाएक किसी नतीजे पर पहुँचने के स्थान पर बात को अच्छी तरह समझने के लिए समय निकालें। तथ्यों को ढंग से समझें और यह समझने की कोशिश करें कि सामने वाला उस स्थिति को किसी दृष्टिकोण से देख रहा है। निर्णायक या आलोचक बनने के स्थान पर निष्पक्ष बनें। बातचीत करते समय दिमाग खुला रखें। इससे सामने वाले आप पर ध्यान देंगे और

आपसे स्नेह करेंगे। यदा-कदा हम अगले आदमी की बात सुनने का समय निकालने के स्थान पर अपनी राय झाड़ने में ही जुटे रहते हैं। अंत में हम ''उस व्यक्ति का मुँह बंद'' करने में सफल हो जाते हैं और संभावित अवसर चुक जाते हैं।

आलोचक को कोई भी पसन्द नहीं करता। लोग उन लोगों के प्रति आकर्षित होते हैं, जो उन्हें पसन्द करते हैं और उनकी प्रशंसा करते हैं। लोग उनके प्रति आकर्षित नहीं होते, जो उनका मूल्यांकन और आलोचना करते हैं। इससे तो संवाद के दरवाज़े ही बन्द हो जाते हैं।

4. सीधे मुद्दे पर आएँ

विन्स्टन चर्चिल ने कहा था, ''अगर आपको कोई महत्त्वपूर्ण बात कहनी हो, तो उसे अप्रत्यक्ष ढंग या घुमा-फिराकर चतुराई से कहने की कोशिश न करें। हथौड़े का प्रयोग करें। कील को एक बार ठोंकें। फिर उस पर दोबारा प्रहार करें। फिर तीसरी बार-जबर्दस्त प्रहार''। जब दृढ़ता की बात आती है, तो उन्होंने सही कहा था। मुद्दे के चारों ओर न मँडराएँ। इससे आपका श्रोता दुविधा में पड़ सकता है। विषय की जड़ से निबटें। श्रोता आपकी ईमानदारी और स्पष्टवादिता की सराहना करेगा। अगर आप सेल्स कॉल कर रहे हैं, तो कूटनीति का प्रयोग कर मुद्दे पर आएँ। बहुत कम चीज़ें उस सेल्समैन जितना चिढ़ाने वाली होती हैं, जो असल मुद्दे के चारों ओर घूमता रहता है। सफल सेल्समैन संभावित ग्राहक के सामने उत्पाद या सेवा की संक्षिप्त, बिन्दुवार प्रस्तुति करेगा।

5. सही व्यक्ति से बात करें

बगीचे में में समय बिताने वाला हर व्यक्ति जानता है कि खरपतवार एक चालाक शत्रु है। खरपतवार से मुक्ति पाने के लिए पौधे की सतह से निपटने भर से काम नहीं चलता। इसके लिए तो आपको उसकी जड़ तक जाना होगा। लोगों के साथ निबटने के बारे में भी यही सही है। ''काम करवाने के लिए'' आपको सही स्रोत तक पहुँचना होगा। इसका अर्थ है कि जिस मुद्दे से आप निबट रहे हैं, उसके बारे में सही व्यक्ति से बात करना। किसी ऐसे व्यक्ति से बात करके अपना (या सामने वाला का) समय बर्बाद न करें, जो आपको कोई समाधान नहीं सुझा सकता।

जब आप सच्ची दृढ़ता का अभ्यास शुरू कर दें, तो यह ध्यान रखें कि प्रतिक्रिया स्वरूप आपसे थोड़ा आक्रामक व्यवहार किया जा सकता है। इस आलोचना और रक्षात्मकता से निबटने के लिए लोक व्यवहार की योग्यता का इस्तेमाल करें। लेकिन हर हाल में निष्क्रिय मुद्रा में फिसलने के प्रलोभन से बचें। क्योंकि इस तरह आप स्वयं को उन लाभों से वंचित कर देंगे, जो दृढ़ता से मिलते हैं। उचित दृढ़ता का एक उदाहरण देखें : ''जब आप देर से आते हैं, तो मैं कुंठित हो जाता हूँ, क्योंकि इससे मेरे दिन का शेष कार्यक्रम गड़बड़ा जाता है। अगर हम अपनी सोमवार की बैठक 8 के बजाय 9 बजे रख लें, तो क्या इससे आपको मदद मिलेगी?''

स्वयं के बारे में जागरूक बनें

सच्ची ईमानदारी की एक कुंजी स्वयं पर सटीक ढंग से दृष्टि डालता है और फिर लगातार बेहतर बनने का संकल्प करना है। हम स्वयं को जिस रोशनी में देखते हैं, बाकी लोग अक्सर हमें उससे अलग रोशनी में देखते हैं। आत्म-सुधार के सुझाव ग्रहण कैसे करें और अपने में परिवर्तन कैसे करें, यह सीखना जीवन में सफलता की महत्त्वपूर्ण कुंजी है। आप जितने अधिक खुले और ईमानदार होंगे, लोग आपके बारे में अपनी असल भावनाएँ बताने के लिए उतना ही अधिक स्वतंत्र महसूस करेंगे। अपनी रक्षा न करें। ये चीज़ें दूसरों को आपके विकास में मदद करने के लिए प्रोत्साहित करती है।

1. अपने दोस्तों की सच्चाई बताने की अनुमति दें

मैंने कहीं सुना था कि अगर आपको सबसे पहले सच्चाई का पता अपने दुश्मन से चले, तो दरअसल आपका कोई दोस्त नहीं है। अपने दोस्तों को अपने साथ ईमानदार होने की अनुमति दें और जब वे कटु सच्चाई बताएँ, तो उन्हें दंडित न करें। ईमानदार लोग वे होते हैं, जो ग़लती करने पर उसके बारे में सुनने से डरते नहीं हैं।

2. बहाने न बनाएँ

जीवन में हर दोष या ग़लती के लिए हम कोई न कोई बहाना खोज सकते हैं। किसी ने इसे इस तरह कहा था : ''बहाना ऐसा झूठ है, जिसमें तर्क भरा होता है।'' मैंने अक्सर यह कहावत सुनी हैं, ''पराजित लोग बहाने बनाते हैं, विजेता धन कमाते हैं।'' जब कोई आपके बारे में सृजनात्मक सुधार की सलाह दे, तो बहाने न

बनाने की चेतन कोशिश करें। इतिहास के महानतम लीडर्स जानते थे कि आलोचना कैसे ग्रहण की जाती है और फिर आवश्यक परिवर्तन कैसे किया जाता है। जब आप किसी ग़लती को तर्कसंगत साबित करने के बजाय उनकी ज़िम्मेदारी लेते हैं, तो आपकी ईमानदारी सबके सामने प्रकट हो जाती हैं।

3. दूसरों को दोष न दें

अपने कामों की ज़िम्मेदारी स्वीकार करें। ख़राब संप्रेषक और कमज़ोर लीडर्स अपनी स्वयं की गलतियों के लिए दूसरों को दोष देते हैं और इस कारण उन्हें जीवन में सच्ची सफलता कभी नहीं मिल पाती। जो लोग ज़िम्मेदारी स्वीकार करते हैं और अपने अंदर परिवर्तन की तलाश करते हैं, वही महान लीडर्स बनते हैं।

अमेरिका के शिकागो में स्थित 900 सदस्यों के व्यापारिक संगठन द नेशनल एसोसिएशन ऑफ़ सजेशन सिस्टम्स के अनुसार पिछले साल इसकी सदस्य कंपनियों को 13 लाख सुझाव मिले और उन्होंने एक चौथाई सुझावों पर अमल किया। परिणाम? कंपनियों ने 1.25 बिलियन डॉलर बचा लिए और उन्होंने कर्मचारियों को बेहतरीन विचारों के लिए 12.8 करोड़ डॉलर पुरस्कार में दिए।

पॉवर पॉइंट :

सृजनात्मक आलोचक का अपना स्थान है।

अब्राहम लिंकन ने कहा था, ''आलोचना करने का अधिकतर केवल उसे है, जिसके दिल में मदद करने की इच्छा है।'' केवल दोष खोजना एक बात है। और समस्याओं को सटीक ढँग से देखना तथा समाधान सुझाना बिल्कुल ही दूसरी बात है। जब कोई आपको सृजनात्मक सुझाव दे, तो आभारी रहें, बशर्ते उसकी इच्छा सचमुच आपकी मदद करने की हो।

आलोचना के बारे में अंतिम शब्द

अपने आस-पास के लोगों के साथ संवाद करते समय यह ध्यान रखें कि अगर आप अपने जीवन के साथ कुछ महत्त्वपूर्ण कर रहे हैं, तो आपकी आलोचना अवश्य होगी। जो लोग हर चीज़ में दोष खोजते हैं या हर व्यक्ति की आलोचना करते हैं, वे कई बार आप पर हमला करेंगे। दो चर्मप्रसाधकों (taxidermists) का एक हिस्सा है, जो एक नुमाइशी बक्से के सामने खड़े थे, जिसमें एक उल्लू प्रदर्शित किया

गया था। चर्मप्रसाधकों का काम जानवरों या पक्षियों की खाल में भूसा भरना था। वे तत्काल आलोचना करने लगे कि इसमें त्रुटिपूर्ण तरह से भूसा भरा गया है - इसकी आँखें प्राकृतिक नहीं है, इसके पंख इसके सिर के अनुपात में नहीं हैं। इसके पंख सफाई से नहीं लगाए गए हैं और इसके पैर यथार्थवादी नहीं थे। जब उनकी आलोचना खत्म हो गई, तो उल्लू ने धीरे से अपना सिर घुमाया और आँख मार दी।

यह जानना महत्त्वपूर्ण है कि आलोचना को कब अनदेखा करके अपने लक्ष्य पर ध्यान केन्द्रित करना है। महान अमेरिकी आलोचना राष्ट्रपति थियोडोर रूज़वेल्ट ने पेरिस में 1910 के भाषण में यह कहा था :

आलोचक महत्त्वपूर्ण नहीं होता। वह व्यक्ति भी महत्त्वपूर्ण नहीं होता, जो बताता है कि ताकतवर व्यक्ति कैसे गिरा या काम करने वाला और बेहतर कैसे कर सकता था। श्रेय तो उसी व्यक्ति को मिलता है, जो सचमुच मैदान में जाता है, जिसका चेहरा धूल, पसीने और रक्त से लथपथ होता है; जो बहादुरी से प्रयास करता है; जो ग़लती करता है और बार-बार अपने लक्ष्य से दूर रह जाता है, क्योंकि बिना ग़लती और असफलता के कोई प्रयास नहीं होता; लेकिन जो सचमुच काम करने का प्रयास करता है, जो महान उत्साह और महान निष्ठा से भरा होता है, जो स्वयं को सार्थक उद्देश्य पाने के प्रयास में लगता है, जो जानता है कि अंत में सबसे अच्छी स्थिति में उसे उच्च उपलब्धियों वाली विजय मिलेगी और सबसे बुरी स्थिति में वह असफल हो सकता है, लेकिन कम से कम उसमें महान साहस तो है, जिसके चलते वे उन साधारण और कातर लोगों में से कभी नहीं होंगे, जिन्होंने न तो कभी विजय का स्वाद चखा है, न ही पराजय का।

कभी भी किसी दूसरे व्यक्ति की राय के कारण अपना ध्यान उस चीज़ से न भटकने दें, जो आपको करनी चाहिए। कभी भी किसी की अलोचना से अपनी तय दिशा से न भटकें। आलोचकों की बातों पर विचार करें, लेकिन उनके हिसाब से अपना जीवन कभी न जिएँ।

पाँवर पॉइटः

जब आप भीड़ के ऊपर सिर उठाते हैं, तो
यह उम्मीद कर सकते हैं कि कुछ टमाटर आपकी
ओर फेके जाएँगे।

-ज्याँ पॉलं गेटी

संवाद की पाठशाला का विद्यार्थी होने के नाते आपको ईमानदारी की कला में भरपूर योग्यता विकसित करने की आवश्यकता होगी। ईमानदार संवाद की एक बहुत बड़ी चुनौती है *शोषण।* शोषण का मतलब है अपने स्वार्थ के लिए अनैतिक तरह से किसी स्थिति या व्यक्ति का प्रयोग करना। इसका मतलब है छिपे हुए उद्देश्य ''छिपे हुए'' है, इसका अर्थ है कि ईमानदारी की कमी है। लोग अक्सर खुलकर और ईमानदारी से संवाद करने के बजाय मनचाही चीज़ पाने के लिए बस खेल खेलते हैं।

योग्य गुरु के भी हो जाते अयोग्य शिष्य

(चाल : क्या मिलिए...)

- आचार्य कनकनन्दीजी

योग्य गुरु के भी होते अयोग्य शिष्य, इन में न होते गुरु दोषी।
यथा मारिची से ले पर्वत, वसुराजा, ईसा मसीह के एक शिष्य भी।।(1)
आदिनाथ तो सर्वज्ञ थे क्षीरकदम्ब थे योग्य गुरु तथाहि ईसा मसीह।
यथा दीपक के नीचे होता अन्धेरा, सूर्य न देखता यथा अन्धा।। (2)
अकम्पनाचार्य आदि सात सौ मुनियों को, राजाबली ने दिया कष्ट।
सुकरात मीराबाई आदि को विष पीलाया (गया) ऐसा है मानव दुष्ट।। (3)
अभव्य, मिथ्यादृष्टि स्वकर्म दोष से, ऐसा करते हैं दुष्ट भाव-व्यवहार।
अज्ञान-मोह-ईर्ष्या-द्वेष-घृणा-स्वार्थादि के कारण ऐसे करते भाव-व्यवहार।।(4)
जन्मान्ध यथा देख न पाता प्रकाशमय सूर्य को तथाहि होती ऊल्लू की दशा।
समवशरण में अभव्य मिथ्यादृष्टि की होती है ऐसी ही दुर्दशा।। (5)

ऐसी जीव सर्वज्ञ-हितोपदेशी की वाणी का भी नहीं करते श्रद्धान।
किन्तु असत्य अहितकर भी उपदिष्ट व अनुपदिष्ट भी करते श्रद्धान।। (6)
अभव्य जीव तो कभी न जायेंगे मोक्ष तथाहि दूरान्दूर-भव्य।
घोर मिथ्यादृष्टि भी पाचोंलब्धि बिना नहीं करते सत्य श्रद्धान।। (7)
ऐसे जीवों का तीर्थंकर से ले गणधर तक से न होता उद्धार।
अतएव ऐसे जीवों से अन्य आचार्य आदि रखते माध्यस्थ भाव।। (8)
अन्यथा रागद्वेष आदि होंगे उत्पन्न, होंगे वाद-विवाद आदि पाप कर्म।
इह परलोक में मिलेंगे कष्ट, अतएव समता ही उत्तम धर्म।। (9)
अतएव ऐसे शिष्यों को मोह के कारण, न कदापि ग्रहण करने योग्य।
'सूरी कनक' ने आगम-अनुभव-मनोविज्ञान से जाना ये सब।। (10)
सागवाडा-15/4/2018 मध्याह्न 11.47

संदर्भ-

मिच्छत्तं वेदंतो जीवो विवरीयदंसणो होदि।
ण य धम्मं रोचेदि हु महुरं खु रसं जहा जरिदो।।17।। गो.जी.
मिच्छाइट्ठी जीवो उवइट्ठं पवयणं ण सद्दहदि।
सद्दहदि असब्भावं उवइट्ठं वा अणुवइट्ठं।।18।।

आगे अतत्त्व श्रद्धान रूप मिथ्यात्वका कथन करते हैं-उदय में आये मिथ्यात्व का वेदन अर्थात् अनुभवन करनेवाला जीव विपरीत दर्शन अर्थात् अतत्त्वश्रद्धा से युक्त होता है। वह न केवल अतत्त्वकी ही श्रद्धा करता है, अपितु अनेकान्तात्मक धर्म अर्थात् वस्तु स्वभाव को अथवा मोक्ष के कारणभूत रत्नत्रयात्मक धर्मको भी पसन्द नही करता। इसमें दृष्टान्त देते हैं-जैसे पित्त ज्वर से ग्रस्त व्यक्ति मीठे दूध आदि रस को पसन्द नहीं करता उसी तरह मिथ्यादृष्टि को धर्म नहीं रुचता।।17।।

इसी वस्तुस्वभावके अश्रद्धानको स्पष्ट करते हैं-मिथ्यादृष्टि जीव 'उपदिष्ट' अर्थात् अर्हन्त आदि के द्वारा कह गये, 'प्रवचन' अर्थात् आप्त आगम और पदार्थ ये तीन, इनका श्रद्धान नहीं करता है। प्रवचन अर्थात् जिसका वचन प्रकृष्ट है ऐसा आप्त, प्रकृष्ट का वचन प्रवचन अर्थात् परमागम, प्रकृष्टरूपसे जो कहा जाता है

अर्थात् प्रमाण के द्वारा कहा जाता है, वह प्रवचन अर्थात् पदार्थ। इन निरुक्तियोंसे प्रवचन शब्दसे आप्त, आगम और पदार्थ तीनों कहे जाते हैं। तथा वह मिथ्यादृष्टि असद्भाव अर्थात् मिथ्यारूप प्रवचन यानी आप्त आगम पदार्थ का 'उपदष्टि' अर्थात् आप्तमभासों के द्वारा कथित अथवा अकथित का भी श्रद्धान करता है।

सिद्धान्त में कहा है-'घट, पट, स्तम्भ आदि पदार्थों में मिथ्यादृष्टि जानने के अनुसार श्रद्धान करते हुए भी अज्ञानी कहा जाता है, क्योंकि उसको जिनवचन में श्रद्धान नहीं है।' इस सिद्धान्त वाक्य में कहे मिथ्यादृष्टि के लक्षण को जानकर उस मिथ्यात्व को छोड़ना चाहिए। उस मिथ्यादर्शन परिणाम के भेद भी इसी सिद्धान्त वाक्य से जानने चाहिए। जो इस प्रकार है-आत्मा में अवस्थित कोई मिथ्यादर्शनरूप परिणाम रूपादि की उपलब्धि होने पर भी कारण विपर्यास, भेदाभेद विपर्यास और स्वरूपविपर्यास को पैदा करता है। उनमें-से कारण विपर्यास, इस प्रकार है-कोई मानते हैं कि रूपादि का कारण एक अमूर्त नित्य तत्त्व है। दूसरे (नैयायिक आदि) कहते हैं कि परमाणु पृथिवी आदि जाति के भेद से भेद वाले हैं। पृथिवी जाति के परमाणुओंमें रूप-रस-गन्ध-स्पर्श चारों गुण होते हैं। जल जाति के परमाणुओंमें रस रूप.स्पर्श तीन गुण होते है। तेजो जातिके परमाणुओं में रूप और स्पर्श दो गुण होते हैं। वायु जाति के परमाणुओंमें केवल एक स्पर्श गुण होता है। तथा पृथ्वी जाति के परमाणुओं से पृथ्वी ही बनती है, जलजातिके परमाणुओंसे जल ही बनता है। इस तरह वे परमाणु समान जातीय कार्योंको ही उत्पन्न करते हैं। दूसरा भेदाभेदविपर्यास इस प्रकार है। कारण से कार्य भिन्न ही या अभिन्न ही होता है, ऐसी कल्पना भेदाभेद विपर्यास है। स्वरूप विपर्यास इस प्रकार है-रूप आदि निर्विकल्प हैं अथवा नहीं है अथवा उनके आकार रूपसे परिणत ज्ञान ही है, उसका आलम्बन बाह्य वस्तु नहीं है। इस प्रकार कुमतिज्ञान के सहाय्यसे कुश्रुतज्ञान के विकल्प होते हैं। इन सबका मूल कारण मिथ्यात्व कर्मका उदय ही है, ऐसा निश्चय करना चाहिए।।18।।

सम्माइट्ठी जीवो उवइट्ठं पवयणं तु सद्दहदि।
सद्दहदि असब्भावं अजाणमाणो गुरुणियोगा।।27।।
सुत्तादो तं सम्मं दरिसिज्जंतं जदा ण सद्दहदि।
सो चेव हवइ मिच्छाइट्ठी जीवो तदो पहुडि।।28।।

जो जीव अर्हन्त आदि के द्वारा उपदिष्ट प्रवचन अर्थात् आप्त, आगम और पदार्थ इनकी श्रद्धा रखता है, साथ ही उनके विषय में असद्भाव अर्थात् अतत्त्व भी स्वयंके विशेष ज्ञानसे शून्य होने से, केवल गुरु के नियोग से कि जो गुरुने कहा, वही अर्हन्त भगवान् की आज्ञा है, श्रद्धान करता है वह भी सम्यग्दृष्टि ही है अर्थात् अपने को विशेष ज्ञान न होने से और गुरु भी अल्पज्ञानी होने से वस्तुस्वरूप अन्यथा कहे और यह सम्यग्दृष्टि उसे ही जिनाज्ञा मानकर अतत्त्व का श्रद्धान कर ले, तब भी वह सम्यग्दृष्टि ही है; क्योंकि उसने जिनाज्ञाका उल्लंघन नहीं किया।।27।।

उक्त प्रकार से असत् अर्थका श्रद्धान करता हुआ आज्ञासम्यग्दृष्टि जीव अन्य कुशल आचार्यों के द्वारा पूर्व में उसके द्वारा गृहीत असत्यार्थसे विपरीत तत्त्व गणधर आदि के द्वारा कथित सूत्रों को दिखाकर सम्यक् रूप से बतलाया जावे और फिर भी वह दुराग्रह वश उस सत्यार्थ का श्रद्धान न करे, तो उस समय से वह जीव मिथ्यादृष्टि होता है; क्योंकि गणधर आदि के द्वारा कथित सूत्रका श्रद्धान न करने से जिनआज्ञा का उल्लंघन सुप्रसिद्ध है। इसी कारण वह मिथ्यादृष्टि है।।28।।

णो इंदिएसु विरदो णो जीवे थावरे तसे वापि।
जो सद्दहदि जिणुत्तं सम्माइट्ठी अविरदो सो।।29।।
पच्चक्खाणुदयादो संजमभावो ण होदि णवरिं तु।
थोववदो होदि तदो देसवदो होदि पंचमओ।।30।।

जो इन्द्रियों के विषयों में 'नोविरत' अर्थात् विरतिरहित है, तथा स्थावर और त्रस जीव की हिंसामें भी नोविरत अर्थात् त्रस-स्थावर जीव की हिंसा का त्यागी नहीं हैं; केवल जिन भगवान्के द्वारा कहे हुए प्रवचनका श्रद्धान करता है, वह जीव अविरत सम्यग्दृष्टि होता है। इससे जो असंयत है, वही सम्यग्दृष्टि इस प्रकार सामानाधिकरण्य का समर्थन किया है। 'अपि' शब्द से संवेग आदि सम्यक्त्व के गुणों को सूचित किया है। उससे अनुकम्पा भी सूचित होती है। यहाँ जो अविरत विशेषण है, वह अन्त्यदीपक होन से नीचेके गुणस्थानों में भी लगाना चाहिए। यहाँ तक सब अविरत होते हैं।

अनन्तानुबन्धी तथा अप्रत्याख्यानावरणरूप आठ कषायोंके उपशमसे, और प्रत्याख्यानावरण कषायोंके देशघाती स्पर्धकोंके उदय होते हुए सर्वघाती स्पर्धकोंके

उदयाभावरूप क्षयसे सकल संयमरूप भाव नहीं होता। किन्तु इतना विशेष है कि स्तोकव्रतरूप देश संयम होता है अर्थात् प्रत्याख्यानावरण कषाय के उदय में सकल चारित्ररूप परिणाम नहीं होता है।

जो तसवहाओ विरदो अविरदओ तह य थावरवहाओ।
एक्कसमयम्मि जीओ विरदाविरदो जिणेक्कमई।।31।।
संजलणणोकसायाणुदयादो संजमो हवे जम्हा।
मलजणणपमादो वि य तम्हा हु पमत्तविरदो सो।।32।।

क्योंकि प्रत्याख्यान अर्थात् सकल संयमको जो आवरण करती है, उस कषायको प्रत्यख्यानावरण कहते है। देशसंयमसे युक्त जीव पंचम गुणस्थानवर्ती होता है।।31।।

वही देशसंयत विरताविरत भी कहा जाता है; क्योंकि एक ही कालमें जो जीव त्रसहिंसा से विरत है, वही जीव स्थावरहिंसा से अवरित है। इस तरह जो विरत है, वही अविरत है। विषयभेद की अपेक्षा कोई विरोध न होने से 'विरताविरत' व्यपदेश के योग्य होता है। तथा 'च' शब्द से प्रयोजन के बिना स्थावर हिंसा भी नहीं करता है, ऐसा व्याखान करना योग्य है। उसकी रुचि एकमात्र जिन भगवान्में होने से वह जिनैकमति होता है। इससे देशसंयत के सम्यग्दृष्टित्व विशेषण कथन किया है। यह विशेषण आदि दीपक है अतः आगेके भी गुणस्थानों में विशेष रूप से इसका सम्बन्ध करना चाहिए।।32।।

ज्ञान का अहंकार एवं अज्ञानता का कारण

ज्ञानावरणे प्रज्ञाज्ञाने।(13)स्वतन्त्रता के सूत्र

conceit and; अज्ञान Lack of knowledge, suffeings are caused by the operation of ज्ञानावरणीय, knoweledge-obscuring karmas.

ज्ञानावरण के सद्भाव में प्रज्ञा और अज्ञान परीषह होती हैं प्रज्ञा क्षायोपशमिकी है, अर्थात् ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से होती है, अन्य ज्ञानावरण के उदय के सद्भाव में प्रज्ञा का सद्भाव है अतः क्षायोपशमिकी प्रज्ञा ज्ञानावरण के उदय में मद उत्पन्न होती हैं सर्व ज्ञानावरण कर्म का क्षय हो जाने पर मद नहीं होता। अतः प्रज्ञा और अज्ञान परीषह ज्ञानावरण कर्म के उदय से उत्पन्न होती हैं। अर्थात् इन दोनों परिषहों की

उत्पत्ति में ज्ञानावरण कर्म का उदय ही कारण है।

केवल ज्ञानावरणीय कर्म के क्षय होने पर केवल-ज्ञान होता है केवल-ज्ञान होने पर किसी भी प्रकार अहंकार नहीं होता। जो अत्यंत अज्ञानी हैं, जैसे-एकेन्द्रिय आदि जीव, इनके विशिष्ट क्षयोपशम नहीं होने से तथा तीव्र ज्ञानावरणीय का उदय होने पर विशेष ज्ञान न होने के कारण इनके भी प्रज्ञा और अज्ञान परीषह विशेष नहीं होती है। लोकोक्ति भी है। 'रिक्त चना बाजे घना'

भर्तहरि ने कहा भी है-

अज्ञः सुखमाराध्यः सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञः।

ज्ञानत्यवदूविदग्धं ब्रह्मपि तं नरं न रंजयति।(13)-नीति शतक

नासमझ को सहज में प्रसन्न किया जा सकता है। समझदार को उससे भी सहज में प्रसन्न किया जा सकता परन्तु जो न समझदार है, न नासमझ है, ऐसे श्रेणी के मनुष्य को बह्मा भी संतुष्ट नहीं कर सकते। इसीलिये इंग्लिस में कहावत है-

जो अल्पज्ञ होते हैं वे भयंकर होते हैं। A half mind is always dangerous.

The little mind is proud of own condition

संकीर्ण मन एवं काम बुद्धि वाले अधिक अहंकारी होते हैं। अल्पज्ञ लोग अहंकार से स्वयं को सर्वज्ञ मानकर सत्य को इंकार करते हैं।

मूर्खो के निम्नलिखित पाँच चिन्ह हैं-

मूर्खस्य पंच चिन्हानि गर्वी दुर्वचनी तथा।

हठी चाप्रियवादी च परोक्तं नैव मन्यते।

(1) अहंकारी होना (2) अपशब्द बोलना (3) हठग्राही (4) अप्रिय बोलना (5) दूसरों के द्वारा कहा हुआ हित सत्य नहीं मानना।

विद्यार्थी-परीषद् लक्षण

(सा समासओ तिविहा पण्णत्ता तं जहा- 1. जाणिया 2. अजाणिया 3. दुव्वियड्ढां)

वह (परिषद्) संक्षेप से तीन प्रकार की कही गई है। यथा-1.ज्ञायिका परिषद्=जिनमत, परमत और गुण-दोष की जानकर परिषद्। 2. अज्ञायिका परिषद्=जिनमत परमत और गुण दोष की अनजान परिषद्। 3. दुर्विदग्ध

परिषद्=पण्डितमन्य परिषद्। जिस प्रकार कोई रोटी आधी कच्ची और जली होती है तो अखाद्य होती है उसी प्रकार जिनमें कुछ तो ज्ञान की कमी होती है और कुछ विकृत ज्ञान होता है, तिस पर भी अपने आपको पूरा पण्ड़ित मानते फिरते हैं, उन्हें 'दुर्विदग्ध'-पण्डित्मन्य कहते हैं।

अब क्रमशः इन तीनों परिषदों के लक्षण बतलाते हैं।

(1) ज्ञानी शिष्य-समूह-

खीरमिव जहा हंसा, जे घुट्टंति इह गुरुगुणसमिद्धा।

दोसे य विवज्जंती, तं जाणसु जाणियं परिसं।(52)(नन्दीसूत्र)

पहली जानकार परिषद् के लक्षण इस प्रकार हैं-जिस प्रकार जातिवान श्रेष्ठ हंस, जल मिश्रित दूध में से, मात्र दूध ग्रहण करता है और जल को त्याग देता है, उसी प्रकार आचार्य आदि के प्रवचन तथा जीवनगत सद्‌गुणों को जीवन में ग्रहण कर, गुण समृद्ध बनती है और दोषों का त्याग करती है, उसे 'जानकार परिषद्' समझना चाहिए।

जो जैन धर्म मान्य षड् द्रव्य, नव तत्व आदि के तथा परमत के जानकार हैं जिनमत पर श्रद्धा रखते हैं, सद्‌गुण और दुर्गुण के पारखी हैं, परन्तु दूसरों के मात्र सद्‌गुणों की प्रशंसा करते हैं, और जीवन में उतारते हैं किन्तु दुर्गणों की अनावश्यक, निरर्थक निन्दा नहीं करते, न जीवन में दुर्गुणों को स्थान देते हैं, वे जानकार परिषद् में आते हैं। ऐसे लोगों को समझाना अत्यन्त सुगम होता है। इन्हें 'पात्र परिषद्' के अन्तर्गत समझना चाहिए।

(2) अज्ञानी शिष्य-समूह-

जा होई पगइमहुरा, मियछावयसीहकुक्कुडयभूआ।

रयणमिव असंठविया, अजाणिया सा भवे परिसा।(53)

दूसरी अनजान परिषद् के लक्षण इस प्रकार हैं-जो प्रकृति से मधुर हो=अन्यमति, नास्तिक या अनार्य होकर भी स्वभाव से सरल एवं नम्र हो, मृग के बच्चे, सिंह के बच्चे, या कुकडे के बच्चे के समान हों=जैन कुल के होकर भी जैनधर्म से अनजान हो, असंस्थापित=असंस्कृत अधित रत्न की भाँति जिसके गुण अब तक छुपे पड़े हो, वह 'अजानकार परिषद्' होती है।

1. चाहे व्यक्ति अन्यमत का या नास्तिक हो, पर यदि वह सरल अन्तःकरण वाला हो, नम्र हो, सत्य मत के सामने आने पर अपने मत का आग्रह करने वाला नहीं हो, सत्य का समादर करने वाला हो, तो उसे समझाना सरल है। इसी प्रकार यदि कोई शिकारी, कसाई आदि अनार्य, पापाचरण करने वाले हों, पर वे भी स्वभाव से सरल हों, तो उन्हें समझाना सरल है।
2. अथवा जो मृग के बच्चे के समान कभी बहक सकते हैं, परन्तु अब तक किसी के बहकावे में नहीं आये हैं, ऐसे जैनकुल के मन्दबुद्धि बच्चों को भी समझाना सरल है।
3. जो कुकड़े के बच्चे या सिंह के बच्चे के समान युद्ध-धर्मी और क्रुर बन सकते हैं, पर तब तक पापमति और पापाचारी नहीं बने हैं ऐसे अन्यमति के या नास्तिकों के या नीच जाति के बालकों को, बाल्यावस्था के रहते हुए अच्छे संस्कार देना सरल है।
4. अथवा जैसे अघटित रत्न में गुण छुपे रहते हैं और ज्यों ही उन्हें घर्षण और संस्कार मिलता है, उनके गुण प्रकट हो जाते हैं, उसी प्रकार जिस बालक में बुद्धि आदि छुपी पड़ी हैं, जिसे केवल थोड़े से शिक्षण और मार्गदर्शन की आवश्यकता है, वह मिलते ही जो जानकर बन सकता हो, उसे समझाना सरल है।
5. अथवा प्रौढ़ होकर भी जिन्हें जिनधर्म श्रवण का योग नहीं मिलने से जिनकी बुद्धि अभी तक सत्य प्राप्त नहीं कर सकी हैं, उन्हें भी समझाना सरल है।

ऐसे सभी प्राणी 'अजान परिषद्' के अन्तर्गत हैं। जानकार परिषद् की अपेक्षा इन्हें समझाने में विलम्ब और प्रयत्न लगता है, पर ये समझ जाते हैं। अतः ये भी पात्र परिषद् हैं।

3. पंडितमन्य-शिष्य-समूह

न य कत्थइ निम्माओ, न च पुच्छइ परिभवस्स दोसेणं।
वत्थिव्व वायपुण्णो, फुट्टइ गामिल्लय रियड्डो।। (54)

तीसरी दुर्विदग्ध परिषद् के लक्षण इस प्रकार हैं -

जो न स्वयं किसी विषय या शास्त्र में विद्वता रखते हैं, न परिभव दोष से

किसी से कुछ पूछते हैं (हार या लघुता के भय से किसी विद्वान से ज्ञान ग्रहण नहीं करते हैं) परन्तु जैसे वायु से भरी मसक, केवल वायु से फूली हुई होती है, उसमें प्रवाही या धन कोई पदार्थ नहीं होता, उसी प्रकार जो किसी ठोस ज्ञान के बिना ही, वायु के समान कुछ दो चार पद, गाथाएँ, युक्तियाँ, उदाहरण आदि को सुनकर अपने आपको महान-पण्डित मानकर फूले फिरते हैं, ऐसे ग्रामीण दुर्विदग्धों (= लाल बुझक्कड़ों) के झुण्ड को 'दुर्विदग्ध परिषद्' समझना चाहिए। ऐसे लोगों को यदि समझना प्रारम्भ किया जाये, तो ये लोग उपदेशक के ही आगे-आगे, शीघ्र-शीघ्र विषयपूर्ति करने का प्रयास करते हैं, और कहते हैं - 'बस। बस। यह विषय तो हम स्वयं भलीभाँति जानते हैं' ऐसे लोगों को समझना कठिन है। ये लोग अपात्र परिषद् हैं।

अयोग्य विद्यार्थियों के 14 दृष्टान्त

1. सेल-घण 2. कुडग 3. चालणि 4. परिपूणग 5. हंस 6. महिस 7. मेसेय 8. मसग 9. जलूग, 10. बिराली, 11. जाहग 12. गो 13. भेरी 14. अभीरी

1. मुद्गशैल और घन-मेघ, 2. कूट-घड़ा, 3. चालनी, 4. परिपूणक सुधरी नामक पक्षी का घोंसला, जिसमें घी छाना जाता था, 5. हंस 6. महिष-भैंसा, 7. मेष-मेढ़ा, 8. मशक-मच्छर 9. जलौका-विकृत रक्त चूसनेवाला एक जलचर जन्तु 10. बिल्ली 11. जाहक-सेल्हक, चूहे की जाति का तिर्यंच विशेष 12. गाय 13. भेरी और 14. अहीर।

जो 1. मुद्गशैल के समान अपरिणामी हो या 2. दुर्गन्धित घट की भाँति दुष्परिणामी हो, 3. चालनी के समान अग्राही हो या 4. परिपूणक के समान दोष-ग्राही हो, 5. भैंसे के समान अन्तराय करने वाला हो या, 6. मच्छर के समान असमाधि करने वाला हो, 7. बिल्ली के समान विनय नहीं करने वाला हो, या 8. गाय-असेवक ब्राह्मणों के समान वैयावृत्य नहीं करने वाला हो, 9. भेरी नाशक के समान भक्ति न करने वाला हो, या ज्ञान का प्रत्यनीक-शत्रु हो, और 10. स्वदोष नहीं देखने वाले अहीर के समान भक्ति न करने वाला हो, या ज्ञान का प्रत्यनीक-शत्रु हो, और 10. स्वदोष नहीं दिखने वाले अहीर की भाँति आशातना करने वाला, या ज्ञान का विसंवादी हो, वह ज्ञान का अपात्र है। उसे ज्ञान देना अयोग्य है।

जो काली मिट्टी की भाँति परिणामी हो, 2. सुगन्धित घट के समान सुपरिणामी

हो, 3. कमण्डलू के समान ग्राही हो, 4. हंस के समान गुणग्राही हो, 5. मेष के समान अन्तराय नहीं करने वाला हो, 6. जलौका के समान समाधि उपजाने वाला हो, 7. जाहक के समान विनय करने वाला हो, 8. गाय-सेवक ब्राह्मणों के समान वैयावृत्य करने वाला हो, 9. भेरी रक्षक के समान भक्ति करने वाला हो, या ज्ञान का अप्रत्यनीक हो और 10. स्वदोष देखने वाले अहीर की भाँति आशातना नहीं करने वाला हो, या विसंवाद नहीं करने वाला हो, वह ज्ञान का पात्र है। उसे ज्ञान दिया जावे।

भारत के 90 से 95 प्रतिशत बच्चों की हड्डियाँ कमजोर क्यों?

- आचार्य कनकनन्दी

(चाल : आत्मशक्ति)

सुनो! सुनो! हे! इण्डियावाले तुम्हारी दुर्दशा की सच्ची कहानी
आधुनिकता की अन्धी-दौड़ के कारण हो रही तुम्हारी यह कहानी
आधुनिकता के अन्धानुकरण के कारण कर रहे हो तुम फैशन-व्यसन
आडम्बर-दिखावा-आलस्य-प्रमाद-पढ़ाई-प्रसिद्धि के होकर गुलाम। (1)

अभी शोध हुआ है भारत के नबे प्रतिशत 90 छात्रों की हड्डियाँ दुर्बल
दिल्ली में इस का प्रतिशत तो पंचानब्वे (95) हुआ शुमार।
अति बाल्यकाल में ही बच्चों को पहनाते हो पूर्ण पोशाक।
आपादमस्तक तक सुट-पैंट-टाई-शुज-मौजा-टोपी लक-दक। (2)

धुली-मिट्टी व सूर्य रश्मि में खेल-कुद हेतु माँ-बाप आदि करते मना।
मानते-तथा कहते इससे बच्चे होयेंगे आवारा व गन्दा।
इससे पढ़ाई नहीं होयेगी बच्चे हो जायेंगे पीछड़े व रोगी।
सामाजिक प्रतिष्ठा नहीं मिलेगी लोग कहेंगे पीछड़ों के बच्चे।। (3)

स्कूल के ड्रेस भी अंग्रेजो सम, जो शीतप्रधान देशों के योग्य।
भारत देश तो ग्रीष्म-प्रधान तथापि अन्धानुकरण करते इडियट लोग।
छोटे गाँवों में भी पास के प्रायवेट स्कूल हेतु होती गाडी की व्यवस्था।
जिससे धन शोषण के साथ बच्चे हो जाते हैं आलसी व रुग्ण।।(4)

शरीरिक श्रम नहीं हो पाता सूर्य किरण भी नहीं मिल पाता।
प्राकृतिक दृश्य भी नहीं देख पाते मेल-मिलाप भी नहीं हो पाता।
टी.वी. मोबाइल व इंटरनेट के कारण, बच्चे न खेलते बाहर जाकर।
पढ़ाई-होमवर्क-ट्यूशन-कोचिंग-परीक्षा से हो जाते संत्रस्त।।(5)

इससे बच्चों की हड्डी केवल न होती दुर्बल विटामिन डी कमी से।
किन्तु बच्चे हो जाते दुर्बल व रोगी तन-मन व आत्मा से।।
सेवा-दान-परोपकार से ले व्यवहार ज्ञान से आध्यात्मिक ज्ञान से।
हो रहे हैं बच्चे वंचित व हो रहे फैशन-व्यसनों से संयुक्त।। (6)

अतएव अभी विश्वगुरु देश बन रहा रोगों की राजधानी।
भ्रष्टाचार-शोषण-मिलावट से ले प्रदूषणों की राजधानी।।
अतः भारतीय सत्य को जानो, स्व-आत्मशक्ति को भी पहचानो।
आधुनिक बनो विकास करो इस हेतु 'कनक' के आह्वान सुनो।। (7)

सागवाड़ा 11/04/2018 रात्रि 09:12

विटामिन डी की कमी से बच्चे होंगे मोटे

ऐसी महिलाएं, जो गर्भावस्था के दौरान विटामिन-डी की कमी से पीड़ित होती है, उनके बच्चों में जन्मजात और वयस्क होने पर मोटापा बढ़ने की अधिक आशंका रहती है। एक शोध के अनुसार ऐसी मां की कोख से जन्म लेने वाले बच्चे, जिनमें विटामिन-डी का स्तर बहुत कम है, उनकी कमर चौड़ी होने या छह बर्ष की आयु में मोटा होने की आशंका ज्यादा होती है। यह रिपोर्ट हाल ही 'पेडिएट्रिक ओबेसिटी' में छपी है।

हर 5वें छात्र को है इंटरनेट की लत

19 प्रतिशत छात्रों को दिल्ली के स्कूलों में पाया गया प्रॉब्लमेटिक इंटरनेट यूजर (पीआइयू)

67 प्रतिशत से अधिक पर्सनल डिवाइस के माध्यम से हुए आनलाइन

37 प्रतिशत ने बताया मूड बदलने के लिए इंटरनेट का प्रयोग

ऐसे बीतता है समय

48 प्रतिशत दोस्तों संग चैटिंग

31 प्रतिशत ऑनलाइन गेम

50 प्रतिशत सूचना पाने के लिए

समय की बर्बादी!

27 प्रतिशत बच्चे करीब 1-2 घंटे समय बिताते है इंटरनेट पर

12 प्रतिशत स्कूली छात्र 2-3 घंटे बिताते ऑनलाइन

आसानी से पहुंच

घर पर लैपटॉप/कंप्यूटर 12 प्रतिशत

पर्सनल कंप्यूटर 21 प्रतिशत

मोबाइल/टैबलेट (खुद का) 54 प्रतिशत

मोबाइल/टैबलेट (घर पर) 21 प्रतिशत

इंडियन जर्नल ऑफ मेडिकल रिसर्च (आईजेएमआर में छपी एक रिपोर्ट के अनुसार भारत में शहरी इलाके के 9 प्रतिशत लोग ऑस्टियोपोरोसिस और 60 प्रतिशत लोग ऑस्टियोपोरोसिस की पूर्व स्थिति ऑस्टियोपीनिया से पीड़ित है। इसका कारण अव्यवस्थित दिनचर्या के अलावा रोग की फैमिली हिस्ट्री और खानपान की चीजों की गुणवत्ता कमजोर होना और लंबे समय तक ऑफिस में बंद रहने से धूप की किरणों का अभाव होना सामने आया है।

हैल्थ जर्नल 'पेडियाट्रिक्स' में प्रकाशित रिपोर्ट के मुताबिक जो बच्चे कम सोते हैं उनमें टाइप 2 डायबिटीज होने का रिस्क अधिक हो जाता है। ब्रिटेन के सेहत विज्ञानियों ने 9 और 10 वर्ष के 4525 बच्चों पर अध्ययन किया। ये बच्चे रात को औसतन 10 घंटे सोते थे। इनके सोने की अवधि 8 घंटों से 12 घंटों तक थी। जो बच्चे कम सोते थे उनका बॉडी मास इंडेक्स (बीएमआई) अधिक था, रेजिस्टेंस ज्यादा था और ग्लूकोज लेवल भी अधिक था।

हँसने पर शरीर से एंडोफिन हार्मोन निकलता है जो दिल को मजबूत बनाता है। हँसने से दिल की एक्सरसाइज भी होती है।

कभी-कभी हँस भी लिया करो जी

'लाफ्टर इज द बेस्ट मेडिसिन' यानी हँसी लाख मर्ज की एक दवा होती है। लेकिन क्या आप जानते हैं कि खुद पर हँसना स्वास्थ्य के लिए ज्यादा फायदेमंद होता है। स्पेन के ग्रनादा युनिवर्सिटी में हुई एक स्टडी में यह बात सामने आई है। पर्सनेलिटी एंड इंडिविजुअल डिफरेंसेज जर्नल में प्रकाशित इस अध्ययन में बताया गया है कि खुद पर चुटकुले कहने वाले या खुद पर हँसने वालों के मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य का स्तर काफी अच्छा होता है। इसके अलावा इस बात पर भी जोर दिया गया है कि खुद पर हँसना एक तरह से गुस्सा दबाने या नियन्त्रण करने की कोशिश का संकेत होता है। गुस्सा न करना भी सेहत के लिए लाभकारी होता है।

ब्लड प्रेशर पर नियंत्रण

हाई ब्लड प्रेशर वालों को ज्यादा हँसना चाहिए। अध्ययन के मुताबिक हँसने से शुरुआत में वाहिनियों में रक्त का दबाव बढ़ जाता है लेकिन यह बढ़ा हुआ स्तर तुरंत ही सामान्य स्तर पर पहुँच जाता है। इससे यह भी साबित होता है कि हँसने से रक्त का संचार बढ़ने के साथ ही ब्लड प्रेशर भी कम होता है।

नैचुरल एक्सरसाइज

हँसने से शरीर के विभिन्न मसल्स की एक्सरसाइज होती है। हँसने में डायफ्राम और पेट की मसल्स पर असर पड़ता है जो बार-बार फैलती और सिकुड़ती है। चेहरे की मसल्स की भी एक्सरसाइज होती है जो हँसने के तरीके पर निर्भर करता है।

हँसना तनाव दर्द और बीमारियों को दूर करने का प्रभावी एंटीडोट है। शरीर और दिमाग को संतुलित रखने के लिए हँसी से कारगर और जल्द असरकारी दवा नहीं हो सकती है। क्या आप जानते हैं कि खुद पर हँसना सेहत के लिए ज्यादा फायदेमंद है। एक शोध में यह बात सामने आई है।

हँसने के है कई फायदे

हँसने से आँखें, जबड़े और दिल की माँसपेशियों को आराम भी मिलता है और रक्त संचार भी ठीक रहता है। जब हम खुलकर हँसते हैं तो दिल तक पहुँचने

वाला रक्त संचार बढ़ जाता है और रक्त वाहिनियों की गतिविधियाँ भी बेहतर होती है। हँसने से अस्थाई तौर पर हार्ट रेट बढ़ जाता है जिससे दिमाग तक ऑक्सीजन का फ्लो भी बढ़ जाता है। इसके अलावा हँसने से दिल की एक्सरसाइज भी होती है। हँसने पर शरीर से एंडोफिन हार्मोन निकलता है जो दिल को मजबूत बनाता है।

स्किन पर असर

हँसी को नेचुरल कॉस्मैटिक भी कहा जा सकता है। इसका असर प्राकृतिक एंटी-एजिंग के तौर पर दिखाई देता है। हँसने से चेहरे की माँसपेशियों की भी एक्सरसाइज होती है, जिससे झुर्रियाँ नहीं पड़ती है। साथ ही मोटापा पर भी नियंत्रण रहता है। रोजाना एक घंटा हँसने से 400 कैलोरी ऊर्जा की खपत होती है। यही वजह है कि इन दिनों हास्य क्लब की संख्या लगातार बढ़ती जा रही है।

बढ़ती है इम्यूनिटी

हँसी से इम्यूनिटी भी बढ़ती है। हँसने से एंटीबॉडी कोशिकाएँ ऐसे हॉर्मोन को स्राव करने के लिए उत्तेजित करती है जो शरीर में होने वाले बदलाव का सामना कर सके। एक रिसर्च में यह भी सामने आया है कि हँसी से कैंसर वाली कोशिकाएँ और अन्य प्रकार के हानिकारक बैक्टीरिया व वायरस को भी नष्ट किया जा सकता है, क्योंकि हँसने से ऑक्सीजन की मात्रा बढ़ जाती है। इसके अलावा यह दर्द निवारक थैरेपी की तरह भी कार्य करता है। हँसने से अच्छा महसूस होने वाले हॉर्मोन का स्राव होता है जो प्राकृतिक दर्द निवारक के तौर पर कार्य करता है।

पॉजीटिव एनर्जी

हँसने से हमारे अंदर सकारात्मक ऊर्जा का प्रवाह भी होता है। कुछ देर खुलकर हँसने से माँसपेशियाँ कम से कम 4 मिनट तक रिलैक्स हो जाती है। साथ ही खुलकर हँसने से सारा तनाव बाहर निकल जाता है, जिससे तनाव से होने वाली मानसिक व शारीरिक समस्याओं से बचाव होता है।

कैंसर से भी बचाव

हँसी के जरिए कैंसर से बचाव की संभावना बढ़ जाती है क्योंकि इससे शरीर में इंटरफेरोन गामा यानी आईएफएन का स्तर बढ़ जाता है। आईएफएन बी-सेल्स, टी-सेल्स, एनके सेल्स और इम्यूनोग्लोबिन को उत्तेजित करता है जो कोशिकाओं की

वृद्धि को नियंत्रित करते हैं। यह सभी तत्व स्वस्थ प्रतिरोधक क्षमता के लिए भी लाभकारी होते हैं।

कम होता है वजन

शोध के अनुसार डिप्रेशन या तनाव में रहने पर व्यक्ति ज्यादा खाने के अलावा जंक फूड का सेवन ज्यादा करता है। इसका असर सीधा वजन पर पड़ता है। लेकिन हँसने से दिमाग से एक रसायन सेरोटोनिन निकलता है जो प्राकृतिक तौर पर भूख पर नियंत्रण रखने का कार्य करता है। इससे व्यक्ति को न तो जल्दी-जल्दी भूख लगती है और न ही बिना भूख के कुछ खाने की इच्छा होती है। ऐसे में वजन पर पूरी तरह नियंत्रण रहता है।

हँसने के हैं लाख बहाने

जिस तरह फिजिकली फिट रहने के लिए रोजाना योग और एक्सरसाइज करते हैं वैसे ही हँसने के लिए भी लाफ्टर क्लब से जुड़ सकते हैं। लाफ्टर योगा भी अच्छा विकल्प है। अच्छा और ऊर्जा से भर देने वाला संगीत सुनें और कॉमेडी फिल्में देखें। अच्छी और मनोरंजक किताबें पढ़ें। बच्चे-पेट्स के साथ वक्त बिताएँ।

हँसने के फायदे

याददाश्त और मूड को बेहतर करने में हँसी सहायक होती है। शरीर में स्ट्रेस पैदा करने वाले हॉमोन का स्तर कम होता है।

स्वास्थ्य को सुधारने वाले हॉर्मोन को बढ़ाता है।

रक्त का संचार और ऑक्सीजन की मात्रा शरीर में बढ़ती है। हाई ब्लड प्रेशर को कम करने में मदद मिलती है।

कैंसर से भी बचाता है विटामिन डी

विटामिन डी हड्डियों की सेहत का साथी तो लंबे समय से बताया जाता रहा है। इसके अलावा कुछ रिसर्च में इसकी कमी से डिप्रेशन व एंग्जायटी जैसी मानसिक समस्यओं हो होना भी बताया गया है। लेकिन अब एक और पुख्ता व महत्वूपर्ण वजह सामने आई है कि जिसके लिए आपको हर रोज थोड़ी देर कुदरती रोशनी यानी सुबह की धूप में कुछ समय जरूर रहना चाहिए।

जोखिम कम

'ब्रिटिश मेडिकल जर्नल' में प्रकाशित ताजा अध्ययन में बताया गया है कि जो व्यक्ति अपने शरीर में विटामिन डी की कमी नहीं होने देते उनमें कैंसर का जोखिम कम हो सकता है। टोक्यो के 'नेशनल कैंसर सेंटर' के वैज्ञानिकों ने एक अध्ययन किया जिसमें विटामिन डी के एक प्रकार और कैंसर के खतरे के बीच संपर्क जानने की कोशिश की गई। शोधकर्त्ताओं ने पाया कि जिन लोगों में विटामिन डी का लेवल निम्नतम था, उनकी तुलना में उच्चतम लेवल वाले लोगों में कैंसर का जोखिम 20 फीसदी कम था। इन वैज्ञानिकों ने यह भी पाया कि विटामिन डी का उच्च स्तर लिवर कैंसर का जोखिम भी 30-50 फीसदी तक कम करता है।

वायु प्रदूषण से बौद्धिक क्षमता पर असर

वायु प्रदूषण से श्वसन संबंधी समस्याएँ तो होती ही हैं, लेकिन वैज्ञानिकों ने पता लगाया है कि इससे बच्चों में आई क्यू लेवल कम होने और बौद्धिक क्षमता पर विपरीत असर पड़ने की भी आशंका होती है। जो महिलाएँ गर्भधारण या पहले या गर्भधारण के एक महीने तक प्रदूषण में रहती हैं, उनके बच्चों में क्लेफ्ट लिप और एब्नॉर्मल हार्ट का जोखिम तो रहता ही हैं, उनके मंदबुद्धि होने का भी खतरा रहता है। बच्चों में आईक्यू लेवल कम होता है।

हड्डियों की सेहत कितनी जरूरी

हड्डियाँ हमारे शरीर में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। शरीर को आकार देती हैं, अंगों की रक्षा करती हैं, माँसपेशियों का स्थिरण करती हैं और कैल्शियम का संग्रहण करती हैं। अगर शुरू से ही हड्डियों के स्वास्थ्य पर ध्यान दिया जाए तो उम्र बढ़ने के साथ हड्डियाँ कमजोर नहीं होगी, लेकिन आज हड्डियों की कमजोरी एक आम समस्या बन गई है।

हड्डियों के कमजोर होने के कारण

शरीर में कैल्शियम और विटामिन डी की कमी।

हारमोन्स की कमी विशेषकर महिलाओं में एस्ट्रोजन और पुरुषों में टेस्टोस्टेरॉन।

थायॅराइड की समस्या।

बढ़ती उम्र और अत्यधिक भार।

दवाओं का अधिक सेवन और आनुवांशिकता।

शारीरिक सक्रियता में कमी या अधिक दिनों तक बेड रेस्ट करना।

धूम्रपान करने और शराब का अधिक सेवन करने से भी हड्डियाँ कमजोर हो जाती है।

कई बीमारियाँ जैसे ऑटोइम्यून डिसआडर्स, मल्टीपल स्क्लेरोसिस, स्पोनडायलिटिस, डायजेस्टिव एंड गैस्ट्रोइनटेस्टीनल डिस्आर्डर और भार कम करने वाली सर्जरी जैसे गैस्ट्रिक बायपास सर्जरी।

महिलाओं में बोन टिशू पुरुषों की तुलना में कम होता है इसलिए उनकी हड्डियाँ कमजोर होने का खतरा अधिक होता है।

कैफीन हड्डियों के कमजोर होने का रिस्क फैक्टर माना जाता रहा है लेकिन आधुनिक शोधों ने इसे गलत सिद्ध कर दिया है।

हड्डियों के लिए जरूरी पोषक तत्व

एक वयस्क व्यक्ति को उसकी उम्र, लिंग, शारीरिक गठन, शारीरिक सक्रियता के अनुसार निम्न पोषक तत्वों की आवश्यकता होती हैं :-

कैल्शियम

1000 - 1,300 मिलिग्राम

प्रोटीन

40-60 ग्राम

विटामिन डी

600-800 इंटरनेशनल यूनिट्स

हड्डियाँ बाहर से कठोर लेकिन अंदर से हल्की और मुलायम होती हैं। इनमें करीब 75 प्रतिशत पानी होता है। बिगड़ी जीवन शैली से युवाओं की हड्डियाँ भी कमजोर हो रही हैं।

हड्डियों की बनावट

अधिकतर लोग सोचते हैं कि हड्डियाँ कड़ी और निर्जीव होती हैं, लेकिन ये जीवित, विकासशील उत्तक होती हैं। हड्डियाँ तीन मुख्य तत्वों-कोलेजन, कैल्शियम-

फॉस्फेट मिनरल कॉप्लेक्सेस और लिविंग बोन सेल्स से बनी होती हैं जो इन्हें लचीला और मजबूत बनाते हैं। हड्डियाँ बाहर से कठोर होती हैं लेकिन अंदर से हल्की और मुलायम होती हैं । इनमें करीब 75 प्रतिशत पानी होता है। आधुनिक जीवन शैली ने हमारी आदतों में ऐसा बदलाव किया है कि उम्रदराज लोगों की ही नहीं युवाओं और किशोरों की हड्डियाँ भी कमजोर हो रही है।

स्टेरॉयड से हड्डियाँ कमजोर

गर्भनिरोधक गोलियाँ, मोटापा कम करने, बालों को झड़ने से रोकने और त्वचा को झुर्रियों से बचाने के लिए कई लोग विशेषकर महिलाएँ स्टेरॉयड युक्त दवा का सेवन करती हैं। इंटरनेशनल ऑस्टियोपोरोसिस एसोसिएशन के अध्ययन की मानें तो यही स्टेरॉयड दवाइयाँ मोनोपॉज के बाद महिलाओं की हड्डियों को कमजोर कर रही हैं, जिसके लक्षण पचास साल की उम्र के बाद दिखाई देते हैं। यदि स्टेरॉयड युक्त दवाओं का सेवन आवश्यक हो तो अल्होकल और सिगरेट का उपयोग बंद कर दें और भोजन में कैल्शियम तथा विटामिन डी की मात्रा बढ़ा दें।

ऐसे बनाएँ हड्डियों को शक्तिशाली

जीवनशैली में बदलाव लाएँ, पोषक भोजन खाएँ विशेषकर ऐसा भोजन जो कैल्शियम और विटामिन डी से भरपूर हो जिनमें हरी पत्तेदार सब्जियाँ, दुग्ध उत्पाद प्रमुख हैं।

कम से कम 1,500 मिलिग्राम कैल्शियम का प्रतिदिन सेवन करें। शरीर का भार औसत रखें।

प्रतिदिन एक मील पैदल चलने की कोशिश करें, पैदल चलना बोन मास को बढ़ाने में सहायक है।

सक्रिय रहें। नियमित एक्सरसाइज करें।

प्रोसेस्ड फूड और नमक का सेवन कम करें।

साबुत अनाज खाएँ ये उन पोषक तत्वों से समृद्ध होते हैं जो हड्डियों के लिए आवश्यक हैं।

शमीम खान

(हड्डी रोग विशेषज्ञ डॉ. शील वर्मा से बातचीत के आधार पर)

12 साल से पूर्व जिमिंग नहीं, खेलकूद है सही

फिटनेस के नाम पर हर किसी के मन में एक धारणा आती है जिमिंग केवल वयस्कों और अधिक उम्र के लोग ही कर सकते हैं। लेकिन स्पष्ट जवाब की बात करें तो बच्चों के लिए एक्सरसाइज जरूरी है। हालांकि बड़े और बच्चों के वर्कआउट में अंतर होता है।

मकसद हो सही

बच्चों को वर्कआउट कराने से पहले यह जानना जरूरी है कि पेरेंट्स का मकसद क्या है। जैसे वचन घटाना या बढ़ाना है, लंबाई बढ़ानी है, बॉडी बिल्डिंग या इस उम्र में ही सिक्स पैक एब्स बनाने या फिर केवल फिट रखने के लिए। क्योंकि शारीरिक संरचना के अनुसार वर्कआउट तय की जाती है।

फिजिकल एक्टिविटी है ज्यादा सही

वैसे तो व्यक्ति को हर उम्र में फिजिकल वर्कआउट की जरूरत होती है। लेकिन बात यदि बच्चों की करें तो 12 साल से कम उम्र के बच्चों की हड्डियाँ और माँसपेशियाँ तुलनात्मक रूप से इतनी मजबूत नहीं होती जितनी होनी चाहिए। ऐसे में इस दौरान शारीरिक फिटनेस के साथ बच्चों को ऐसी गतिविधियों में शामिल करें जिससे मानसिक स्वास्थ्य भी बेहतर बना रहे। इस उम्र में उसे फ्री रनिंग, हाथों से किए जाने वाले काम, एरोबिक्स, साइक्लिंग, स्कीपिंग, डांस, खेलकूद आदि में व्यस्त रखें। इंडोर और आउटडोर गेम्स बच्चे को हर तरह से एक्टिव रखते हैं।

यकीन मानिए थोड़ी सी दौड़ आपको बनाएगी फिट एंड स्लिम

कई शोधों में यह बात साबित हो चुकी है कि जो व्यक्ति सुबह-सुबह दौड़ लगाता है, उसके शरीर का हर एक अंग स्फूर्ति से भरा होता है। कुछ को लगता है कि दौड़ लगाने से वे थक जाएंगे और दिनभर कुछ काम नहीं कर पाएँगे। यह गलत धारणा है। दौड़ लगाने से व्यक्ति में एक ऊर्जा का संचार होता है, जो उसे दिनभर एक्टिव रखती है। अगर आप सुबह-सवेरे दौड़ नहीं लगाते हैं तो आप आज से ही दौड़ लगाने

का प्रण लेना चाहिए। दौड़ लगाने में उम्र बाधा नहीं बनती, आप किसी भी उम्र में दौड़ लगा सकते हैं।

दौड़ के हैं फायदे अनेक

दौड़ते समय शरीर में एंडोफिन जैसे हार्मोन स्रावित होते हैं, जिनसे खुशी का अहसास होता है। दौड़ से फेफड़े मजबूत होते हैं और धीरे-धीरे श्वसन प्रक्रिया में सुधार होता है। धमनियों का व्यायाम होता है, रक्तचाप नियंत्रित रहता है। यदि आप नियमित दौड़ते हैं तो आपकी रोग प्रतिरोधक क्षमता मजबूत होती है और आप बीमार नहीं पड़ते। प्रतिदिन एक घंटा दौड़ने पर 705 से 865 कैलोरी बर्न होती है और शरीर से चर्बी कम होती है। दौड़ लगाने से इंसुलिन बनने की प्रक्रिया में सुधार होता है और शरीर में रक्त शर्करा का स्तर नियंत्रित करता है।

सुनें सांसों की आवाज

दौड़ लगाते समय आपको अपनी साँसों पर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए। दौड़ शुरू करने से पहले गहरी साँस लें और धीरे-धीरे छोड़ें। दौड़ के दौरान आपको आस-पास की बातों पर ध्यान देने के बजाय अपने पैरों की आवाज सुनने की कोशिश करनी चाहिए। अगर पैर जमीन पर पड़ने की आवाज काफी तेज आ रही है तो आप जमीन पर थोड़ा धीमी पैर पटकना चाहिए। पैरों की आवाज सुनने से आप दौड़ के आनंद को महसूस कर पाएँगे। दौड़ लगाने के शुरुआती एक या दो हफ्तों तक तेज कदमों से चलने का प्रयास करें। इसके बाद हल्की दौड़ लगाएँ। फिर चलने और दौड़ने का सम्मिलित प्रयास करें। आप धीरे-धीरे सीमा बढ़ा सकते हैं। इससे स्टेमिना बढ़ता है और माँसपेशियाँ भी मजबूत होती हैं। एक साथ लंबी दौड़ पर जाने पर आपको परेशानी हो सकती है।

धीरे-धीरे बढ़ाएँ गति

दौड़ लगाते समय आपको चौकन्ना रहना चाहिए। आपको जहाँ दौड़ रहे हैं, वहाँ नीचे भी देखना है और सामने भी। अगर आप ऐसा नहीं करेंगे तो किसी चीज से टकराकर गिर भी सकते हैं। जब आप तेजी से दौड़ते हैं तो पैरों का संतुलन बनाएँ रखें। आदर्श रूप में आपको शूज पहनकर ही दौड़ना चाहिए। अगर समय कम है तो कुछ देर के लिए ही दौड़ना चाहिए, पर अपनी आदत को बनाए रखना चाहिए। दौड़

लगाने के दौरान कभी भी जमीन पर जोर से पैर न पटके। इससे शरीर पर दबाव बढ़ता है। इससे आपकी जोड़ और हड्डियाँ चोटिल हो सकती है। कभी भी बहुत तेज न दौड़ें। इससे आप जल्दी थक जाएँगे। बहुत तेज दौड़ने पर आपका शरीर भी दुखेगा और दिन भर आलस्य हावी रहेगा।

दौड़ को बनाएँ जीवन का हिस्सा

शुरुआत में आपका शरीर दौड़ने का प्रतिरोध करेगा। आपको तनाव होगा, आप हाँफने लगेंगे, आप थक जाएँगे, क्योंकि आपके शरीर को आराम की आदत पड़ चुकी है। इस स्थिति से बचने का एकमात्र तरीका है कि आप अपने शरीर को दौड़ के प्रति अभ्यस्त करें। दौड़ को कोई काम न समझें। इसे जीवन का एक हिस्सा बनाने की कोशिश करें, तभी आप इसका पूरी तरह से मजा ले पाएँगे। दौड़ लगाने से पहले थोड़ा वार्मअप जरूर कर लें। इससे आपके शरीर की अकड़न खत्म होगी और मसल्स में लचीलापन आएगा। आप दौड़ को लेकर बहुत ज्यादा गंभीर है तो दौड़ की तकनीक के बारे में विशेषज्ञों से सलाह लें।

प्रतिदिन एक घंटा दौड़ने पर 705 से 865 कैलोरी बर्न होती है और शरीर से चर्बी कम होती है।

क्षमता के अनुसार दौड़े

आपको खुद की क्षमता को परखना चाहिए। इसी के अनुरूप स्पीड बढ़ानी चाहिए। जीवन की हर स्टेज में शारीरिक क्षमता में काफी फर्क होता है। इसलिए खुद को अच्छी तरह से परखें और उसी के मुताबिक दौड़ लगाएँ। दौड़ लगाते वक्त आपको रिलेक्स रहना चाहिए। बिना तनाव के दौड़ लगानी चाहिए। आपको चारों ओर के वातावरण का आनंद लेना चाहिए। सुबह-सुबह की ताजी हवा में दौड़ लगाना काफी फायदेमंद रहता है। दौड़ अपने आप में एक महत्त्वपूर्ण व्यायाम है। आपको दूरी और गति पर ज्यादा ध्यान नहीं देना चाहिए। गति धीरे-धीरे बनती है। ज्यादातर लोग दौड़ करने से पहले ही तय करने लग जाते हैं कि उन्हें कितना दौड़ना है, कितने कदम चलने हैं आदि। इसके बजाय आप दौड़ को आदत बनाने की कोशिश करें।

मेरे सभी में मैं ही हूँ ('मैं' 'अहं' का विश्व रूप)

(मेरे अस्तित्व बिना मेरा कुछ भी असंभव)

- आचार्य कनकनन्दी

(चाल : 1.क्या मिलिए.... 2.आत्मशक्ति....)

'मैं' ही मेरा परम सत्य हूँ....व्यवहार सत्य भी मैं ही हूँ।
'अक्षर' से 'सत्य' तक हूँ 'संसार' से 'मुक्त' तक मैं ही हूँ।।
संस्कृत में मुझे कहते है 'अहं' 'अ' स्वर से व्यंजन 'ह' तक व्याप्त
मैं हूँ सत्य रूप जीव हूँ 'संसार' से 'मोक्ष' तक मैं ही हूँ।। (1)
व्याकरण में 'मैं' हूँ उत्तम पुरुष वचन में एक वचन हूँ।
मेरी सत्ता से ही मैं आस्रव-बन्ध-संवर-निर्जरा-मोक्ष-मैं हूँ।।
मेरे पंचपरिवर्तन में 'मैं' ही प्रमुख, द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव-भव-सम्भव,
चौरासी लक्ष्य योनि व चतुर्गति में ऐसे में मेरे हेतु 'मैं' ही प्रमुख।। (2)
मेरे द्रव्य-भाव-नोकर्म हेतु 'मैं' ही प्रमुख रूप होता हूँ।
मार्गणा-गुणस्थान में भी ऐसा मेरे हेतु 'मैं' ही होता हूँ।।
मेरे जन्म-मरण-सुख-दुःख आदि मेरे बिना न संभव है।
मेरे रत्नत्रय व दशधा धर्म भी मेरे बिना न संभव है।। (3)
मेरी सोलहकारण भावना व द्वादशअनुप्रेक्षा मम बिना न संभव।
श्रावक धर्म या मुनिधर्म भी मेरे हेतु मेरे बिना न संभव।।
मेरे अस्तित्व के अभाव से पंचपरमेष्ठी भी मेरे हेतु न उपकारी हूँ।
'मोक्षमार्ग' व 'मोक्षतक' भी मेरे लिए अकिंचित्कर है।। (4)
मेरे ध्यान-अध्ययन-तप-त्याग भी मेरे हेतु न संभव है।
मेरे अनन्त-ज्ञान दर्शन-सुख-वीर्यादि भी मेरे हेतु न संभव है।।
मेरे क्रोध-मान-माया-लोभ-ईर्ष्या-द्वेष-घृणा मेरे विभाव के रूप है।
मेरे उत्तम-क्षमा-मार्दव-शौच-संयम-ब्रह्मचर्य मेरे स्वभाव के रूप हैं।। (5)
संसार में भी मेरे कारण ही हुए हैं मेरे माता-पिता-भाई-बन्धु।
तथाहि शत्रु-मित्र, छोटा-बड़ा, अपना-पराया आदि सम्बद्द/सम्बन्ध।।

अतएव ही मेरे कर्त्ता-धर्त्ता-भोक्ता-विधाता 'मैं' ही हूँ।
भले इस हेतु बाह्य निमित्त अनेक होते किन्तु प्रमुख मैं ही हूँ।। (6)
स्व-शुद्ध भाव ही है 'स्वभाव', इससे भिन्न है 'विभाव'/(परभाव)।
स्व-अध्ययन होता है 'स्वाध्याय', स्व-ध्यान ही है 'आत्मध्यान'
स्व-कल्याण ही है 'आत्मकल्याण', स्व-विकास ही है 'आत्मविकास'।
स्व-विश्वास ही है 'आत्मविश्वास' स्व-ज्ञान ही है 'आत्मज्ञान'।। (7)
स्व-परिणति ही 'आत्मपरिणती', स्व-आचरण ही 'आत्मानुचरण'।
स्व-उपलब्धि ही है मोक्ष की प्राप्ति, अतः मुझ में ही मेरी व्याप्ति।।
यह है मेरा आत्मसम्बोधन तथाहि शोध-बोध-ध्यान है।
स्व-विभाव त्याग से स्व-स्वभाव, प्राप्त करना 'कनक' का लक्ष्य है।। (8)

सागवाडा दि. 29/04/2018 अपराह्न 07:02

सन्दर्भः-

जीव के नौ विशेष गुण

जीवो उवओगमओ अमुत्ति कत्ता सदेह परिमाणो।
भोत्ता संसारत्थो सिद्धो सो विस्ससोड्ढगई।। (2) द्रव्यसं.

Jiva is characterised by upayoga, is formless and an agent, has the same extent as its own body, is the enjoyer (of the fruits of karma), exists is Samsara, is Sidhha and has a characteristic up ward motion.

जो जीता है, उपयोगमय है, अमूर्त है, कर्त्ता है, निज शरीर के बराबर है, भोक्ता है, संसार में स्थित हैं, सिद्ध है और स्वभाव में ऊर्ध्वगमन करने वाला है, वह जीव है।

छहों द्रव्यों में से जीव द्रव्य सर्वश्रेष्ठ एवं उपादेय द्रव्य होने के कारण तथा प्रथम गाथा में जीव द्रव्य प्रथम निर्देश होने से इस दूसरी गाथा में आचार्य श्री ने जीव द्रव्य के नौ विशेष गुणों के नाम निर्देशपूर्वक नौ अधिकारों का संक्षेप में दिग्दर्शन किया है। स्वयं आचार्य श्री ने इसी ग्रथं में नौ अधिकारों का विशेष वर्णन अग्रिम गाथासूत्र में

किया है इसलिए यहाँ केवल सामान्य जानकारी के लिए नौ अधिकारों का संक्षिप्त वर्णन निम्न प्रकार से कर रहे हैः

1.जीव-जो शुद्ध निश्चय नय से चैतन्य रूप भाव प्राण से जीता है एवं व्यवहार से अशुद्ध जो द्रव्य प्राण एवं भाव प्राण से जीता है उसे जीव कहते हैं।

2.उपयोगमय-शुद्ध द्रव्यार्थिक नय से संपूर्ण निर्मल केवल ज्ञान एवं केवल दर्शन रूप उपयोग से रहित है एवं व्यवहार नय से क्षायोपशमिक ज्ञान एवं दर्शन से युक्त है उसे उपयोगमय कहते हैं।

3. अमूर्तिक-संसारी जीव व्यवहार नय से मूर्तिक कर्मों से युक्त होने के कारण मूर्तिक होते हुए भी निश्चय नय से जीव कर्म निरपेक्ष है इसलिए अमूर्तिक हैं।

4. कर्त्ता-शुद्ध नय से जीव, कर्म का कर्त्ता नहीं है तथापि व्यवहार नय से जीव योग एवम् उपयोग से कर्मों का आस्रव एवं बंध करता है इसलिए कर्त्ता भी है।

5. स्वदेह परिमाण-निश्चय नय से जीव, लोकाकाश के बराबर असंख्यात प्रदेशी होते हुए भी शरीर नाम कर्म के उदय से उत्पन्न संकोच तथा विस्तार के कारण जीव संसारी अवस्था में जिस शरीर को प्राप्त करता है उस शरीर के बराबर हो जाता है।

6. भोक्ता-शुद्ध निश्चय नय से जीव स्व अनंत सुख को भोगता है तथापि अशुद्ध नय से कर्म परतंत्र जीव, शुभ कर्म से उत्पन्न शुभ एवं अशुभ कर्म से उत्पन्न अशुभ कर्मों को भी भोगता है।

7. संसार में स्थित-यद्यपि जीव शुद्ध निश्चय नय से संसार से रहित है तथापि अशुद्ध नय से द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और भव रूपी पंचविध संसार में रहता है।

8. सिद्ध-यद्यपि जीव अनादि काल से कर्म से युक्त होने के कारण असिद्ध है तथापि शुद्ध निश्चय नय से कर्म से रहित होने के कारण सिद्ध है।

9. स्वभाव से उर्ध्वगमन करने वाला-यद्यपि कर्म परतंत्र जीव संसार में ऊँचा, नीचा, सीधा, तिरछा गमन करता है तथापि निश्चय नय से स्वभाव रूप से इसमें उर्ध्वगमन शक्ति है इसलिए जीव मोक्षगमन के समय ऊर्ध्वगमन ही करता है।

उपर्युक्त गुणों से युक्त प्रत्येक जीव होता है। कुछ दार्शनिक उनमें से कुछ गुण

को तो मानते हैं और कुछ गुणों को नहीं मानते जैसे-चार्वाक आदि भौतिक जड़वादी दार्शनिक चैतन्य से युक्त शाश्वतिक जीव द्रव्य को नहीं मानते हैं। नैयायिक दर्शन में मुक्त जीव को ज्ञान, दर्शन से रहित मानते हैं, भट्ट तथा चार्वाक दर्शन जीव को मूर्तिक ही मानते हैं। सांख्य दार्शनिक आत्मा (पुरुष) को कर्त्ता नहीं मानता है। नैयायिक, मीमांसक और सांख्य दर्शन आत्मा को प्राप्त शरीर प्रमाण न मानकर आत्मा को हृदय कमल में स्थित बट बीज आदि के बराबर मानते हैं। बौद्ध दर्शन क्षणिकवादी होने के कारण इस दर्शन की अपेक्षा जीव स्वपूर्वोपार्जित कर्म का भोक्ता है यह सिद्ध नहीं होता। सदाशिव मत वाले आत्मा को सदा सर्वदा मुक्त मानते हैं। भट्ट एवं चार्वाक दार्शनिक आत्मा को सिद्ध नहीं मानते हैं। उपर्युक्त दार्शनिक जीव को स्वभाविक ऊर्ध्वगमन वाला नहीं मानते हैं। उपर्युक्त असम्यक् मतों का निरसन करने के लिए इस गाथा में जीव के उपरोक्त गुणों का वर्णन किया गया है।

जीव का स्वरूप

तिक्काले चदुपाणा इंदियबलमाउआणपाणो य।
ववहारा सो जीवो णिच्छयणयदो दु चेदण जस्स।। (3) द्र.सं.

According to Vyavahara Naya, That is called Jiva, which is possessed of four Pramas.. viz. indriya (the senses), Bal (Force), Ayu (Life) And Ana-prana (respiration) in the three periods of time viz, the present, the past and future and according to Nischaya Naya that which has consciouness is called Jiva.

तीन काल में इन्द्रिय, बल, आयु और आनपान इन चारों प्राणों को जो धारण करता है वह व्यवहार नय से जीव है और निश्चय नय से जिसके चेतना है, वह जीव है।

आचार्य श्री ने गाथा में व्यवहार नय से एवं निश्चय नय से जीव की परिभाषा दी है। संसारी जीव अनादिकाल से कर्म संतति की अपेक्षा कर्म से युक्त है। इसलिए कर्म परतंत्र जीव यथायोग्य कर्म के उदय से प्राप्त यथा योग्य द्रव्य प्राण एवं भाव प्राण से जीता है। इसलिए व्यवहार नय से चार द्रव्य प्राणों से और भाव प्राणों से जो जाता है, जीवेगा वा पहले जीया है उसे जीव कहते है, अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नय

से द्रव्येन्द्रिय आदि द्रव्य प्राण है और भावेन्द्रिय आदि क्षायोपशमिक भाव प्राण अशुद्ध निश्चय नय से है तथा निश्चय नय से शुद्ध चैतन्य ज्ञान आदि शुद्ध भाव प्राण है।

रूवरसगंधफासा सद्दवियप्पा वि णत्थि जीवस्य।
णो संठाणं किरिया तेण अमुत्तो हवे जीवो।।119 नयचक्र

जीव में न रूप है, न रस है, न गंध है, न स्पर्श है, न शब्द के विकल्प है, न आकार है न क्रिया है इस कारण से जीव अमूर्तिक है।

जो हु अमुत्तो भणिओ जीव सहावो जिणेहि परमत्थो।
उदयरियसहावादो अचेयणो मुत्तिसंजुत्तो।।120

जिनेन्द्र देव ने जो जीव को अमूर्तिक कहा है वह जीव का परमार्थ स्वभाव है। उपचारित स्वभाव से तो मूर्तिक और अचेतन है।

कर्त्ता के विभिन्न रूप

पुग्गलकम्मादीणं कत्ता ववहारदो दु णिच्छयदो।
चेदणकम्माणादा सुद्धणया सुद्धभावाणं।।(8) द्र.सं.

According to Vyavhara Naya is the doer performer of the Pudgala Karmas. According to Nischaya Naya (Jiva is the doer perfomer of) Thought Karmas. According to Shuddha Naya (Jiva is the doer) of Shuddha Bhavas.

आत्मा व्यवहार से पुद्गल कर्म आदि का कर्त्ता है, निश्चय से चेतन कर्म का कर्त्ता और शुद्ध नय से शुद्ध भावों का कर्त्ता है।

इस गाथा में जीव के विभिन्न कर्तृत्वभावों का वर्णन किया गया है। व्याकरण की दृष्टि से ''स्वतंत्र कर्त्ता'' अर्थात् जो कर्म को स्वतंत्र रूप से करता है उसे कर्त्ता कहते हैं। जीव भी विभिन्न अवस्था में विभिन्न कर्मों का कर्त्ता बनता है। उपचरित असद्भूत व्यवहार नय से ज्ञानावरणादि द्रव्य कर्म का तथा आदि शब्द से औदारिक, वैक्रियक और आहारक रूप तीन शरीर तथा आहार आदि छह पर्याप्तियों के योग्य जो पुद्गल पिण्ड रूप नो/ईषत् कर्म उसका कर्त्ता है। स्थूल व्यावहारिक दृष्टि से अर्थात् उपचरित असद्भूत व्यवहार नय से घट, पट, कुर्सी, टेबल, घर, चटाई, विभिन्न

वैज्ञानिक उपकरण, ईंट मूर्ति आदि का भी जीव कर्त्ता है। निश्चय नय की अपेक्षा अशुद्ध निश्चय नय से जीव चेतन कर्म अर्थात् मिथ्यात्व भाव, ईर्ष्या भाव, घृणा, द्वेष, लोभ, काम प्रवृत्ति, अहं प्रवृत्ति का कर्त्ता है परन्तु परम शुद्ध निश्चय नय से जीव शुद्ध-बुद्ध, नित्य-निरंजन, सच्चिदानंद स्वरूप स्वभाव में परिणमन करता है तब अनंत ज्ञान, अनंत अतीन्द्रिय सुखादि भावों का कर्त्ता होता है। छद्मस्थ अवस्था में भावना रूप विवक्षित एक देश शुद्ध निश्चय नय से स्वभाव का कर्त्ता भी होता है परन्तु केवली एवं मुक्त अवस्था में तो शुद्ध निश्चय नय से पूर्णरूप से अनंत ज्ञानादि भावों का कर्त्ता होता है। वस्तुतः यहाँ जो आध्यात्मिक दृष्टि है उसकी अपेक्षा अशुभ, शुभ भावों का जो परिमणन है, उसी का कर्त्तत्ववपना यहाँ कहा गया है, न कि हस्तपादादि से जो कार्य किया जाता है उसे यहाँ कर्त्तापने में स्वीकार किया गया है और एक विशेष आध्यात्मिक दृष्टि यह है कि शुद्ध निश्चय नय से जो शुद्ध भावों का कर्त्ता कहा गया है उसका अर्थ यह है कि उन शुद्ध भावों का जीव वेदन करता है न कि उन शुद्ध भावों का निर्माण करता है या बनाता है। प्राचीन आचार्यों ने भी जीव के विभिन्न कर्त्तापने का वर्णन विभिन्न दृष्टिकोण से किया है। यथा-

जीव परिणामहेदुं कम्मत्तं पुग्गल परिणमदि।
पुग्गल कम्मणिमित्तं तहेव जीवो वि परिणमदे।। 18 समयसार

जीव परिणाम को निमित्त मात्र करके पुद्गल कर्मभाव से परिणमन करते हैं। इसी प्रकार देव (कर्म) को शक्ति प्रदान करने वाला पुरुष परम पुरुषार्थ से हीन पुरुषार्थ है और उस शक्ति के अनुशासन में शासित होने वाला पुरुष है। जब पुरुष उसको शक्ति प्रदान करता है, तब दैव विभिन्न रूप धारण करके विभिन्न कार्य करता है।

जह पुरिसेणाहारो गहिदो परिणमदि सो अणेय विहं।
मंसवसारुहिरादिभावे उदराग्गे संजुत्तो।।

जैसे पुरुष द्वारा ग्रहण किया गया आहार उदराग्नि से युक्त हुआ अनेक प्रकार माँस, रुधिर आदि भावों रूप परिणमता है, उसी प्रकार कर्म पुद्गल भी जीवों के समादि भावों को प्राप्त करके 8 प्रकार अथवा अनेक प्रकार दैव रूप में परिणमन करता है।

भावों कम्म णिमित्तो कम्मं पुण भाव कारणं हवदि।
ण दु तेसिं खलु कत्ता ण विणा भूदा दु कत्तारं।। 60 पंचास्तिकाय

निर्मल चैतन्यमई ज्योति स्वभाव रूप शुद्ध जीवास्तिकाय से प्रतिपक्षी भाव जो मिथ्यात्व व रागादि परिणाम है वह कर्मों के उदय से रहित चैतन्य का चमत्कार मात्र जो परमात्मा स्वभाव है, उससे उल्टे जो हृदय में प्राप्त कर्म है, उनके निमित्त से होता है तथा ज्ञानावरण आदि कर्मों से रेहित जो शुद्धात्म तत्त्व है, उससे विलक्षण जो नवीन द्रव्यकर्म है सो निर्विकार शुद्ध आत्मा की अनुभूति से विरुद्ध जो रागादि भाव हैं उनके निमित्त से बँधते हैं। ऐसा होने पर भी जीव संबंधी रागादिभावों का और द्रव्य कर्मों का परस्पर उपादान कर्ता जीव ही है तथा द्रव्यकर्मों का उपादानकर्त्ता कर्मवर्गणा योग्य पुद्गल ही है। दूसरे व्याख्यान से यह तात्पर्य है कि यद्यपि शुद्ध निश्चय नय से विचार किए जाने पर जीव रागादि भावों का कर्त्ता है यह बात सिद्ध है।

आदा कम्म मिलिमसो परिणामं लहदि कम्म संजुत्तं।

तत्तो सिलिसदि कम्मं तम्हा कम्मं तु परिणामे।। 121 प्रवचन सार

''संसार'' नामक जो यह आत्मा का तथाविध उस प्रकार का परिणाम है वही द्रव्यकर्म के चिपकने का बंध हेतु है, अब उस प्रकार के परिणाम का हेतु कौन है? इसके उत्तर में कहते हैं कि द्रव्यकर्म उसका हेतु है क्योंकि द्रव्य कर्म की संयुक्तता से ही वह बंध है।

ऐसा होने से इतरेतराश्रय दोष आएगा क्योंकि अनादिसिद्ध द्रव्यकर्म के साथ संबद्ध आत्मा का जो पूर्व का द्रव्यकर्म है उसका वहाँ हेतु रूप से ग्रहण किया गया है।

इस प्रकार नवीन द्रव्यकर्म जिसका कार्यभूत है और पुराना द्रव्यकर्म जिसका कारणभूत है, ऐसा आत्मा का तथाविध परिणाम का कर्त्ता भी उपचार से द्रव्य कर्म ही है और आत्मा भी अपने परिणाम का कर्त्ता भी उपचार से है।

जीव परिणाम हेदुं कम्मत्तं पुग्गला परिणमंति।

पुग्गल कम्मणिमित्तं तहेव जीवो वि परिणमदि।।86

ण वि कुव्वदि कम्मगुणे जीवो कम्मं तहेव जीवगुणे।

अण्णोण्ण णिमित्तेण दु परिणामं जाण दोण्हंपि।।87

यद्यपि जीव के रागद्वेष के परिणामों का निमित्त पाकर पुद्गल द्रव्य कर्मत्व रूप परिणमन करता है। वैसे ही पौद्गलिक कर्मों के उदय का निमित्त पाकर जीव रागादि रूप परिणमन करता है। तथापि जीवकर्म के गुण रूपादिक को स्वीकार नहीं करता, उसी

भाँति कर्म भी जीव के चेतनादिक गुणों को स्वीकार नहीं करता किन्तु मात्र इन दोनों का परस्पर एक दूसरे के निमित्त से उपर्युक्त विकारी परिणमन होता है।

एदेण कारणेण दु कत्ता आदा सकेण भावेण।

पुग्गल कम्मकदाणं ण दु कत्ता सव्वभावाणं।। गा. 88 समयसार

इस प्रकार जीव और पुद्गल के परस्पर में निमित्त कारणपना है इसका व्याख्यान किया गया है।

व्यवहार नय से भिन्न षट्कारक के अनुसार जीव के रागद्वेष निमित्त पाकर कर्मपरमाणु, द्रव्यकर्म रूप में परिणमन करता है। द्रव्य कर्म के उदय से भाव कर्म उत्पन्न होते हैं परन्तु निश्चयनय से एक द्रव्य अन्य द्रव्य का कर्त्ता नहीं होने से जीव के परिणाम का हेतु पुद्गल नहीं है एवं पुद्गल के परिणाम का हेतु जीव नहीं है। पंचास्तिकाय में कहा है -

''निश्चयनयेनाभिन्नकारकत्वाकर्मणो

जीवस्य च स्वयं स्वरूप कर्तृत्वमुक्तम्।''

निश्चय से अभिन्न कारक होने से कर्म और जीव स्वयं स्वरूप के अपने-अपने रूप के कर्त्ता हैं। निश्चय से जीव, पुद्गल का कर्त्ता नहीं होने पर भी व्यवहार नय से कर्त्ता है।

यदि एकान्ततः निश्चयनय के समान व्यवहारनय से भी जीव, कर्म का कर्त्ता नहीं है तब अनेक अनर्थ उत्पन्न हो जायेंगे। व्यवहार से भी जीव कर्म का कर्त्ता नहीं होने पर कर्मबंधन नहीं होगा, कर्मबंध के अभाव से संसार का अभाव हो जाएगा। संसार के अभाव से मोक्ष का भी अभाव हो जाएगा, जो कि आगम, तर्क, प्रत्यक्ष एवं अनुभव विरुद्ध है। निश्चयनय का विषय व्यवहार से संयोजना करके शिष्य, गुरुवर्य कुन्दकुन्दाचार्य से निम्न प्रकार प्रश्न करता है।

कम्मं कम्मं कुव्वदि जदि सो अप्पा करेदि अप्पाणं।

किध तस्स फलं भुञ्जदि अप्पा कम्मं च देदि फलं।। 63 पंचास्तिकाय

आगे पूर्वोक्त प्रकार के अभेद छह कारक का व्याख्यान करते हुए निश्चनय से यह व्याख्यान किया गया है। इसे सुनकर 'नयो' के विचारों को न जानता हुआ शिष्य एकांत का ग्रहण करके पूर्व पक्ष करता है।

यदि द्रव्यकर्म एकांत से बिना जीव के परिणाम की अपेक्षा करता है और वह आत्मा अपने को ही करता है - द्रव्यकर्म को नहीं करता है तो किस तरह आत्मा का उस बिना किए हुए कर्म के फल को भोगता है और यह जीव से बिना किया हुआ कर्म आत्मा को फल कैसे देता है? इस प्रश्न का आगमोक्त यथार्थ प्रत्युत्तर देते हुए कुन्दकुन्द स्वामी बताते हैं :-

''निश्चयेन जीवकर्मणोश्चैककर्तत्वेऽपि व्यवहारेण कर्मदत्तफलोपलंभो जीवस्य न विरुद्ध्यत इत्यत्रोक्तम्।''

जीवा पुग्गलकाया अण्णोण्णागाढ़गहणपडिबद्धा।
काले विभुज्जमाणा सुहदुक्खं दिंति भुंजन्ति।।67

आगे शिष्य ने जो पूर्वपक्ष किया था कि बिना किए हुए कर्मों का फल जीव किस तरह भोगता है उसी का उत्तर नय विभाग से जीव फल को भोगता है ऐसा युक्तिपूर्वक दिखाते हैं।

संसारी जीवों के अपने-अपने रागादि परिणामों के निमित्त से तथा पुद्गलों में स्निग्ध-रुक्ष गुण के कारण द्रव्य-कर्मवर्गणयें जीव के प्रदेशों में जो पहले से ही बंधी हुई होती हैं वे ही अपनी स्थिति के पूरे होते हुए उदय में आती हैं तब अपने अपने फल को प्रगट कर झड़ जाती हैं, उसी समय वे कर्म अनाकुलता लक्षण जो पारमार्थिक सुख है उससे विपरीत परम आकुलता को उत्पन्न करने वाले सुख तथा दुःख उन जीवों को मुख्यता से देती है, जो मिथ्यादृष्टि है अर्थात् जो निर्विकार चिदानंदमयी एकस्वरूपभाव जीव को और मिथ्यात्व रागादि भावों को एक रूप ही मानते हैं और जो मिथ्याज्ञानी हैं अर्थात् जिनको यह ज्ञान है कि जीव रागद्वेष-मोहादि रूप ही होते हैं तथा जो मिथ्याचारित्री हैं अर्थात् जो अपने को रागादि के परिणमन करते हुए जीव अभ्यंतर में अशुद्ध निश्चय से ही हर्ष या विषाद रूप तथा व्यवहार से बाहरी पदार्थों में नाना प्रकार इष्ट-अनिष्ट इन्द्रियों के विषयों के प्राप्ति रूप मधुर या कटुक विष के रस के आस्वादन रूप सांसारिक सुख या दुःख की वीतराग परमानन्दमयी सुखामृत के रसास्वाद के भोग को न पाते हुए भोगते हैं, ऐसा अभिप्राय जानना।

एवं कत्ता भोत्ता होज्जं अप्पा सगेहिं कम्मेहिं।
हिंडदि पारमपारं संसारं मोहसंच्छण्णो।। 69

इस प्रकार अपने कर्मों से कर्त्ता भोक्ता होता हुआ आत्मा मोहाच्छादित वर्तता हुआ अनंत संसार में परिभ्रमण करता है।

इस प्रकार प्रगट प्रभुत्व शक्ति के कारण जिसने अपने कर्मों द्वारा कर्त्तत्व एवं भोक्तृत्व का अधिकार ग्रहण किया है ऐसे इस आत्मा को अनादि मोहाच्छादितपने के कारण विपरीत अभिनिवेश की उत्पत्ति होने से सम्यग्ज्ञान ज्योति अस्त हो गई है, इसलिए यह सान्त अथवा अनंत संसार में परिभ्रमण करता है।

जं जं जे जे जीवा पज्जाणं परिणमंति संसारे।
रायस्स य दोसस्स य मोहस्स वसा मुणेयव्वा।। 988

संसार में जो जो जीव जिस जिस पर्याय में परिणमन करते हैं वे सब रागद्वेष और मोह के वशीभूत होकर ही परिणमते हैं, ऐसा जानना।

भोक्ता के विभिन्न रूप

ववहारा सुहदुक्खं पुग्गलकम्मफलं पभुंजेदि।
आदा णिच्छयणयदो चेदणभावं खु आदस्स।। (9)

According to Vyavahara Naya, Jiva enjoys happiness and misery as fruits of Pudgala karmas, According to Nischaya Naya, Jiva has conscious Bhavas only.

आत्मा व्यवहार से सुख-दुःख रूप पुद्गल कर्मों को भोगता है और निश्चय नय से आत्मा चेतन स्वभाव को भोगता है।

क्रिया की प्रतिक्रिया होती है। न्यूटन के तृतीय गति सिद्धांतानुसार-

To every action, there is an equal and opposite reaction.

अर्थात् जहाँ क्रिया है, वहाँ पर उसकी प्रतिक्रिया होती है। एवं प्रतिक्रिया उस क्रिया की विपरीत समानुपाती क्रिया होती है। जो जैसा करता है, वह उसी प्रकार उसका भोक्ता भी होता है। जैसे बबूल के वृक्ष बोने पर बबूल का वृक्ष उत्पन्न होगा और उसमें बबूल की ही फलियाँ लगेंगी, आम के बीज बोने पर आम के वृक्ष ऊगेंगे एवं उसमें आम के फल लगेंगे। इसलिए कहते हैं "As you sow sow you reap" अर्थात् जैसा बोयेंगे वैसा काटेंगे व पायेंगे। आत्मानुशासन में गुणभद्र स्वामी ने कहा भी है।

यत्प्राग्जन्मनि संचितं तनुभृतां कर्माशुभं व शुभं।

यद्दैव यदुदीरणादनुभवन् दुःख सुख वागतम्।।

जीव ने पूर्व भव में जिस अशुभ भाव रूप कर्त्तापने से पाप कर्म का एक शुभभाव रूप कर्त्तापने से पुण्य कर्म का संचय किया है वह दैव है उसकी उदीरणा उदय से यथाक्रम से दुःख एवं सुख का अनुभव करता है।

गोस्वामी तुलसीदास ने भी कहा है -

कर्म प्रधान विश्व करिराखा।

जो जस करहि फलहि तस चाखा।।

अमितगति आचार्य ने कहा भी है -

स्वयं कृतं कर्म यदात्मना पुरा, फलं तदीयं लभते शुभाशुभम्।

परेण दत्तं यदि लभ्यते स्फुटं, स्वयं कृतं कर्म निरर्थक तदां।। (30)

पहले जो जीव पुण्य एवं पाप कर्म करता है उसका ही फल शुभ एवं अशुभ रूप से प्राप्त करता है। यदि कोई दूसरे के द्वारा किए गए शुभ एवं अशुभ फल को प्राप्त होने लगे तो स्वयं किया हुआ कर्म निरर्थक हो जाएगा।

निजार्जितं कर्म विहाय देहिनो, न कोऽपि कस्याऽपि ददापि किंचन्।

विचार यन्नेवमनन्य मानसः परो ददातीति विमुञ्च शेमुषीम्।।3

अपने उपार्जित कर्म छोड़कर कोई भी प्राणी किसी भी प्राणी को कुछ भी सुख या दुःख नहीं देता है ऐसा विचार करते हुए हे आत्मन्। तू एकाग्रचित हो और दूसरा देता है इस बुद्धि को छोड़।

जीव उपचरित असद्भूत व्यवहार नय से इष्ट तथा अनिष्ट पाँचों इन्द्रियों के विषयों से उत्पन्न सुख एवं दुःख को भोगता है। अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नय के। अंतरंग में सुख तथा दुःख को उत्पन्न करने वाला द्रव्य कर्म रूप पुण्य एवं पाप का उदय है उसको भोगता है। अशुद्ध निश्चयनय से हर्ष तथा विषाद रूप सुख-दुःख को भोगता है और शुद्ध निश्चनय से रत्नत्रय से उत्पन्न अविनाशी अतीन्द्रिय अक्षय आनंद रूप सुखामृत को भोगता है।

जीव का प्रदेशत्व स्वभाव

अणुगुरुदेहपमाणो उवसंहारप्पसप्पदो चेदा।

असमुहदो ववहारा णिच्छयणदो असंखदेसो वा।। (10)

According to Vyavahara Naya, the conscious Jiva, being with Samudghata, becomes equal in extent to a small or a large body, by contraction and expansion; but according to Nischaya Niya (it) exist in innumerable Pradesas.

व्यवहार नय से समुद्घात अवस्था के बिना यह जीव, संकोच तथा विस्तार से छोटे और बड़े शरीर के प्रमाण रहता है और निश्चयनय से जीव असंख्यात प्रदेशों का धारक है।

जीव में संकोच-विस्तार करने की शक्ति है, जिस प्रकार रबड़, प्लास्टिक आदि में संकोच-विस्तार की शक्ति होती है। इस संकोच-विस्तार की शक्ति के कारण ही जीव संसार अवस्था में शरीर-नाम-कर्म के उदय से जिस छोटे-बड़े शरीर को प्राप्त करता है उस शरीर के आकार रूप यह जीव हो जाता है। जिस प्रकार दीपक का प्रकाश छोटे-बड़े कमरे के कारण संकोच-विस्तार को प्राप्त हो जाता है।

आचार्य उमास्वामी ने कहा भी है -

प्रदेशसंहार विसर्पाभ्याम् प्रदीपवत्।। अ. 2 (16 स्वतंत्रता के सूत्र पृ. 289)

प्रदेश संहारविसर्पाभ्यां प्रदीपवत् लोकाकाशे असंख्येयभागादिषु जीवानामवगाहो भवति।

मैं स्वतंत्र हूँ

जितनी ही ज्यादा हमें आत्म-श्लाघा (स्वयं से घृणा) या अपराध-बोध की भावना होगी उतना ही हम जीवन में कम काम कर पाते हैं, जितनी ही हमें कम आत्म-श्लाघा या अपराध-बोध कम होगा, हमारा जीवन अति उत्तम ढंग से चलेगा : हर स्तर पर।

मैं शुद्ध आत्मा, प्रकाश और ऊर्जा हूँ। मैं स्वयं को स्वतंत्र देखता हूँ। मैं अपने मस्तिष्क से स्वतंत्र हूँ और अपनी भावनाओं से भी स्वतंत्र हूँ। मैं अपने संबंधों में

स्वतंत्र अनुभव करता हूँ। मैं अपने शरीर से स्वतंत्र-आजाद हूँ।

मैं अपने जीवन में स्वतंत्र अनुभव करता हूँ। मैं स्वयं को अपनी शुद्ध आत्मा, जो पूर्णतया स्वतंत्र है, उसके साथ संबंध जोड़ता हूँ। मैं अपनी सीमाओं और जो मानवीय भय हैं, उनको भी मुक्त करता हूँ। अब मैं कहीं भी रुका हुआ या ठहरा हुआ नहीं महसूस करता। जैसे ही मैं अंतरात्मा के साथ संबंध जोड़ता हूँ, जो शुद्ध आत्मा है, मैं यह समझ पा रहा हूँ कि मैं अपने व्यक्तित्व से कहीं ज्यादा हूँ या अपनी समस्याओं अथवा अपनी बीमारी से। जितना ही मैं अपने इस हिस्से से जुड़ पाता हूँ उतना ही मैं जीवन के हर क्षेत्र में स्वतंत्र हो पाता हूँ। मैं अपनी आत्मा का वह हिस्सा बन सकता हूँ, जो कि पूर्णतया स्वतंत्र है। यदि मैं एक क्षेत्र में स्वतंत्र हो सकता हूँ तो मैं कई क्षेत्र में भी स्वतंत्र हो सकता हूँ। मैं स्वतंत्र होने के लिए इच्छुक हूँ। मेरा वह हिस्सा जो शुद्ध आत्मा है, वह जानता है कि कैसे मुझे नेतृत्व करे और गाइड करे, जो मेरे लिए सबसे ज्यादा लाभदायी हों। मैं अपनी आत्मा पर विश्वास करता हूँ और जानता हूँ कि स्वतंत्र होना सुरक्षित है। मैं अपने को प्रेम करने के लिए स्वतंत्र हूँ। मैं अपने प्रति प्रेम को स्वतंत्र रूप से बहने देता हूँ। स्वतंत्र होना सुरक्षित है। मैं आत्मा हूँ और स्वतंत्र हूँ और ऐसा ही है।

मैं जो करना चाहता हूँ, कर सकता हूँ

प्रसन्नता अपने बारे में अच्छा अनुभव करना है।

मैं अब बढ़ चुका हूँ। मैं जो चाहूँ, वह कर सकता हूँ। जब भी मैं वह करना चाहता हूँ, जो कर सकता हूँ, मेरे साथ कुछ आश्चर्यजनक होता है। किसी को 'न' कहना मेरे लिए पोषण करने वाला हो सकता है। जैसे ही मैं अपने को पोषित करता हूँ, मुझे अपने जीवन में ज्यादा आनंद आता है। जितना ही मैं आनन्दित होता हूँ, मौज-मस्ती करता हूँ उतना ही दूसरे लोग मुझे प्यार करते हैं। मैं अपने को प्रेम करता हूँ और उसका अनुमोदन करता हूँ। मैं अपने बारे में अच्छा अनुभव करता हूँ। मेरे प्रफुल्लित संसार में सबकुछ अच्छा है। **(खुद को Heal करने के 111 मंत्र)**

❑❑❑